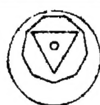
पिव पिव लागी प्यास



भगवान् श्री रजनीश का नव-प्रकाशित साहित्य

एक ओंकार सतनाम

दिया तले अंधेरा

ताओ उपनिषद् भाग : ३

तत्त्वमसि

कस्तूरी कुंडल बसै

बिन घन परत फुहार

अकथ कहानी प्रेम की

भक्ति-सूत्र खंड : १

भक्ति-सूत्र खंड : २

साधना-सूत्र

जिन-सूत्र खंड : १

महावीर-वाणी भाग : ३

सहज समाधि भली

गीता दर्शन अध्याय : १८

एस धम्मो सनंतनो खंड : १

मेरा मुझमे कुछ नही

भज गोविंदम्



पिव पिव लागी प्यास

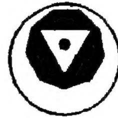
भगवान श्री रजनीश

संकलन

स्वामी चैतन्य कीर्ति

संपादक

मा अमृत साधना



रजनीश फाउन्डेशन प्रकाशन, पूना
१९७६

प्रकाशक

मा योग लक्ष्मी

सचिव, रजनीश फाउंडेशन

१७, कोरेगांव पार्क,

पूना–४११००१ (महाराष्ट्र)

आवरण-सज्जा

स्वामी आनंद अर्हत

प्रथम संस्करण : ११ जुलाई, १९७६

प्रतिया : ३०००

मूल्य :

राज संस्करण : पचास रुपये

सामान्य संस्करण : तीस रुपये

मुद्रक :

अक्षर प्रतिरुप प्राइव्हेट लिमिटेड,

द्वारा : ग्राफिक युनिट, कुरला, बम्बई–४०० ०७०

पिव पिव लागी प्यास

दादू-वाणी पर

भगवान श्री रजनीश द्वारा दि. ११ से २० जुलाई, १९७५ तक
श्री रजनीश आश्रम, पूना में दिए गए
दस प्रवचनों का संकलन

अनुक्रमणिका

गैब मांहि गुरुदेव मिल्या

प्रवचन १, दिनांक ११.७.१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना.

(दादू) गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्या देखा अगम अगाध॥

(दादू) सत्गुरु यूं सहजै मिला लीया कंठि लगाई।
दाया भली दयाल की, तब दीपक दिया जगाई॥

(दादू) सत्गुरु मारे सबद सों निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीत न आवे और॥

सबद दूध घृत राम रस कोइ साध विलोवण हार।
दादू अमृत काढिलै गुरुमुख गहै विचार॥

देवै किनका दरद का टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को सो गुरु पीर हमार॥

सद्गुरु मिलै तो पाइये भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजैं देखिये, साहिब का दीदार॥



एक खजाने हो तुम, जिसकी चाबी खो गई है। या कि एक बीज हो जिसे अपनी भूमि नही मिल पाई है। एक ऐसे सम्राट हो, जिसने अपने को भिखारी ममझ रखा है।

और गहरी नींद है। और उस नींद मे तुम स्वयं जाग सकोगे इसकी सभावना नहीं है। तुम चाहो भी, कि तुम अपने ही हाथ से जग जाओ, तो भी यह घट न सकेगा। घट इसलिए न सकेगा, कि जो सोया है स्वयं, वह स्वयं को कैसे जगायेगा? जगाने के लिए जागा होना जरूरी है।

और तुम अगर अपने अस्मिता और अहकार से भरे हुए सोचते रहे कि क्यो किसी से कहें, कि जगाओ। अपने को ही जगा लेंगे, तो ज्यादा से ज्यादा इसी बात की संभावना है, कि तुम एक सपना देखो, जिसमें कि तुम मान लो, कि तुम जाग गए हो। सोया हुआ आदमी जागने का सपना देख सकता है; सोये हुए आदमी की ज्यादा से ज्यादा सभावना यही है कि वह सपने में देख ले, कि जाग गया है। नींद को तोड़ने के लिए बाहर से कोई—तुमसे बाहर से कोई चाहिए जो तुम्हे चौका दे।

गुरु का कोई और अर्थ नही है; गुरु का इतना ही अर्थ है, कि जो जागा हुआ है और जो तुम्हारी नींद को तोड़ सकता है। कुछ और करना भी नहीं है। कुछ पाना नहीं है, क्योंकि जो भी पाने योग्य है, वह तुम अपने साथ ही ले कर आये हो। कुछ खोना भी नहीं है सिवाय निद्रा के; सिवाय मूर्च्छा के, सिवाय एक बेहोशी के।

इसलिए गुरु तुम्हें आचरण नहीं देता और जो गुरु तुम्हे आचरण दे, समझना कि वह गुरु नहीं है। गुरु तुम्हें सिर्फ जागरण देता है। और जागरण

के पीछे चला आता है आचरण अपने आप। वह जागे हुए आदमी की जीवन-प्रक्रिया है आचरण। और सोया हुआ आदमी लाख उपाय करे आचरण को साधने के, साध भी ले, तो भी सब सपना ही है। सब पानी पर उठा हुआ बबूला है। उसकी कोई सार्थकता नहीं है।

तुम सपने में साधु भी हो जाओ तो क्या फर्क पड़ता है? तुम सपने में चोर थे, तुम सपने में साधु हो गये; पर दोनों ही सपने हैं। जाग कर तुम पाओगे, न तो सपने का चोर सच था, न सपने का साधु सच था।

इसलिए असली सवाल चोर से साधु होने का नही है; न बेईमान से ईमानदार होने का है; न बुरे से भला होने का है, न पापी से पुण्यात्मा होने का है; असली सवाल जागे हुए होने का है। सोये से जागे हुए होने का है।

आचरण तो शास्त्र से भी मिल सकता है। आचरण तो समाज भी दे देता है। आखिर समाज भी बिना आचरण के तो जी नही सकता। इतने लोग हैं वहां, बिना आचरण के बहुत कशमकश होगी, बहुत सघर्ष होगा, बहुत बेचैनी, परेशानी होगी। जीना मुश्किल हो जायेगा। समाज भी आचरण थोप देता है। परिवार भी आचरण देता है। शास्त्र भी आचरण देते है। गुरु जागरण देता है।

और जब गुरु भी आचरण देने लगें, तो समझना कि वे समाज के ही हिस्से हो गए हैं। धर्म से उनका नाता टूट गया। जब वे भी तुम्हे समझाने लगें कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो, तब उनकी उपयोगिता नैतिक हो गई; धार्मिक न रही।

धर्म और नीति मे बडा भेद है। नीति साधी जा सकती है, सोये हुए; जागना जरूरी नही है। सिर्फ सपना बदलना पडता है। कठिन है सपने को बदलना भी; लेकिन बदला जा सकता है। तुम क्रोध कर सकते हो, तो तुम अक्रोध भी कर सकते हो। तुम हिंसा कर सकते हो, तो तुम अहिंसा का व्रत भी ले सकते हो। तुम कामवासना से भरे हो, तुम ब्रह्मचर्य का आचरण साध सकते हो।

हम सबके लिए जागना जरूरी नही है। तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे; सिर्फ तुम्हारे ऊपर की खोल बदल जाती है। तुम वस्त्र बदल लेते हो; तुम नही बदलते। गुरु का सबध तुम्हें बदल देने से है। और जब तुम बदल जाओगे तो एक आचरण पैदा होता है। वह आचरण नैतिक नही है, धार्मिक है।

नैतिक आचरण में सुगध होती ही नहीं। वह ऐसा है जैसे प्लास्टिक के फूल ऊपर से लगा दिए गये है। धार्मिक आचरण की एक सुगंध है, एक

सौरभ है। जैसे फूल वृक्ष मे लगे हों, जैसे फूलों की जड़ें जमीन में फैली हो और फूल सूरज से रोशनी लेते हों, जमीन से हरियाली लेते हों, हवाओ से ताजगी लेते हों, जीवित हों। धार्मिक व्यक्ति इस विराट अस्तित्व का एक हिस्सा हो जाता है। नैतिक व्यक्ति अपने आसपास नीति का आचरण बना लेता है, लेकिन अस्तित्व का हिस्सा नही हो पाता।

इसलिए नैतिक व्यक्ति तो नैतिक हो सकता है बिना ईश्वर की खोज किए। ईश्वर आवश्यक नहीं है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति बिना ईश्वर की खोज किए धार्मिक नहीं हो सकता। और ऊपर से देखने से कभी-कभी यह भी हो सकता है, कि प्लास्टिक का फूल दूर से ज्यादा सुन्दर मालूम पड़े; असली फूल से भी ज्यादा सुन्दर मालूम पड़े। और यह तो निश्चित ही साफ है कि असली फूल सुबह खिलेगा, सांझ मुरझा जायेगा। नकली फूल मुरझाता ही नही; बड़ा मजबूत है।

आचरण जीवन्त हो, तो प्रतिपल बदलता है। जीवन का लक्षण बदलाहट है। आचरण जड़ हो, प्लास्टिक का हो, बदलता ही नहीं। एक दफा पकड लिया, पकड लिया। झूठे आचरण में एक सगति होती है। सच्चे आचरण मे एक जीवन्त क्रांति होती है। सच्चा आचरण एक सतत धार है—गगा की धार। बहती जाती है, प्रतिपल बहती है।

सच्चे आचरण का एक ही लक्षण है, कि वह धार सदा सागर की तरफ बहती है। घाट बदलते, जमीन बदलती, पहाड़ बदलते, लोग बदलते, लेकिन धार मे एक ही गहरी सगति है। सब बदल जाता है, लेकिन सागर की तरफ यात्रा नहीं बदलती।

नैतिक आचरण तो पोखर की तरह है, सरोवर की तरह है। वह बदलता नही, वह कहीं जाता नही। वह अपने में बंद, केवल सड़ता है।

अगर तुम नैतिक बनने आये हो, तो तुम गलत आदमी के पास आ गये। अगर तुम्हें धार्मिक बनने की हिम्मत है, तो तुम्हें अनायास ही मुझसे मिलन हो गया है। तुम किस कारण आये हो, वह मुझे पता नहीं; मैं किस कारण यहां हूँ, वह मुझे पता है। इसलिए तुम्हे पहले ही सचेत कर देना जरूरी है, कि मैं कम से राजी नहीं हूँ, मै सिर्फ पूरे से राजी हूँ।

भिखारी जब तक सम्राट ही न हो जाय, तब तक—तब तक कुछ हुआ नहीं। जब तक यह मृतवत् जीवन परिपूर्ण अमृत को उपलब्ध न हो जाय, तब तक कुछ हुआ नहीं। जब तक तुम्हें ऐसा खजाना न मिल जाय, जिसे चुकाना संभव नहीं है, जिसे तुम लुटाओ भी तो बढ़ता चला जाता है, तब तक तुम कुछ छोटी-मोटी सपदा पा भी लो, तो उसका कोई मूल्य नहीं है।

और यह घटना तो तभी घट सकती है जब कोई आघात करे तुम्हारी नींद पर। यह घटना तभी घट सकती है, जब कोई तुम्हें मार ही डाले। तभी तुम्हारे भीतर जो अमृत का स्वर है, वह बजेगा।

दादू इसी अद्‌भुत कहानी की बात कर रहे हैं। उनका एक-एक शब्द समझने जैसा है।

"दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।"

यह शब्द "गैब"–पहली बात समझ लेने जैसी है। इसका अर्थ होता है रास्ते में, लेकिन अनायास।

गुरु अनायास ही मिलता है क्योंकि तुम तो उसे खोजोगे कैसे? अगर इतनी ही तुम्हारे पास रोशनी होती कि तुम गुरु को खोज लो, तो उसी रोशनी में तो तुम अपने को ही खोज लेते। गुरु को खोजने की जरूरत ही न थी। अगर तुम इतने ही जागे हुए होते कि गुरु को पहचान लेते, तो उतने जागरण से तो तुम अपने को पहचान लेते, गुरु को पहचानने का सवाल ही न उठता था। अगर तुम इतने ही समझदार थे, कि तुम परख लेते कि कौन गुरु है और कौन गुरु नहीं है, तो उतना विवेक तो पर्याप्त है। उससे तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाती।

गुरु को तुम खोज नहीं सकते। सोया हुआ आदमी कैसे उसको खोजेगा, जो उसे जगाये? और अगर सोया हुआ आदमी उसको खोज ले जो उसको जगाये, तो जगाने की जरूरत कहा है? वह आदमी जागा ही हुआ है।

इसलिए गुरु अनायास मिलता है। यह बात तो पहली समझ लेने जैसी है। अनायास का अर्थ है, कि तुम्हे पता भी नही होता और मिल जाता है–आकस्मिक! तुम्हे अनायास लगता है। एक बहुत पुरानी इजिप्त में प्रचलित लोकोक्ति है, कि जब शिष्य तैयार होता है, तब गुरु उपलब्ध हो जाता है। ऐसा नही है, कि शिष्य उसे खोजता है, गुरु ही उसे खोज लेता है।

ऊपर से देखने पर ऐसा ही लगता हो कि तुम यहाँ चले आये हो, भीतर से देखने पर तुम पाओगे, कि मैं तुम्हारे पास आया हूँ। इसके पहले कि तुम यहाँ आये, मै तुम्हारे पास पहुँच गया था, अन्यथा तुम यहाँ आते कैसे? कोई दूसरा तो उपाय नही है आने का। तुम यहाँ हो–तुम्हारे कारण नहीं; तुम यहाँ खींच लिए गये हो। शायद तुम्हें आज साफ भी न हो, लेकिन जब भी तुम्हें थोड़ा सा होश आयेगा और आंखें खुलेंगी, तब तुम समझ पाओगे।

दादू उसी क्षण की बात कह रहे है। "दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या।"

खोजा भी न था। अपने तरफ से खोजने के लिए कोई क्षमता भी न थी। मिल भी जाता, तो पहचानने का कोई मापदंड न था। सामने भी खड़ा होता, तो आंखें बंद थीं। गले से भी लगा लेता, तो स्वयं का हृदय तो धड़कता ही न था। पहचानते कैसे? प्रत्यभिज्ञा कैसे होती, कि यही गुरु है? नहीं, शिष्य गुरु को नहीं खोजता; गुरु ही शिष्य को खोजता है। भला गुरु रत्ती भर न चलता हो और शिष्य हजार मील चल कर आता हो, लेकिन गुरु ही शिष्य को खोजता है। शिष्य गुरु को खोज ही नहीं सकता।

शिष्य इतना ही कर सकता है, कि उपलब्ध रहे; कि जब गुरु पुकारे तो पुकार सुन ले, इतना ही काफी है; कि जब गुरु खींचे तो खिंच जाय, अड़चन न डाले, इतना ही काफी है। बाधा न खड़ी करे; जब बुलावा आये, तो बुलावे के अनुसार चल पड़े।

तिब्बत मे कहावत है, कि हजार बुलाये जाते हैं, एक पहुंचता है। वह भी ठीक है। क्योंकि नौ सौ निन्यानबे तो हर तरह की बाधा डालते हैं। वे आना नही चाहते। वे नहीं चाहते कि कोई उन्हे खीच ले। क्योंकि जब कोई उन्हें खींचता है तो उन्हे लगता है, यह तो हम परवश हुए। यह तो अपनी सामर्थ्य गई। यह तो हम एक तरह की गुलामी में पडे, कि कोई खींचे और हम खिंच जाये; कोई जगाये और हम जग जायें; कोई उठाये और हम उठ जायें। अहंकार बडी बाधायें खड़ी करता है।

बस, शिष्य इतना ही कर सकता है कि बाधायें खड़ी न करे। कुछ और करने की जरूरत नही है। सिर्फ तुम बहने को राजी हो जाओ। तो जब भी तुम बहने को राजी हो, अचानक तुम पाओगे, कि गुरु द्वार पर खड़ा है: या तुम गुरु के द्वार पहुँच गये हो।

जीवन बड़े रहस्यपूर्ण नियमो से बना है। जहाँ जरूरत होती है, वहाँ घटना घट जाती है।

गर्मी पड़ती है, धूप उतरती है आकाश से, आग जलती है जैसे, फिर वर्षा आ जाती है। गर्मी के पीछे वर्षा का आना एक नैसर्गिक नियम है। जब इतनी गर्मी पड़ जाती है, सब उत्तप्त हो जाता है, जल सूख जाता है, पृथ्वी सूखी हो जाती है, वृक्ष दीन दिखाई पड़ने लगते है, इस उत्तप्त अवस्था के कारण ही बादलों को निमंत्रण पहुँच जाता है। बादल भागे चले आते है।

वैज्ञानिक कहता है कि जब बहुत गर्मी पड़ती है, तो हवा विरल हो जाती है। जब हवा विरल हो जाती है, तो आसपास की हवायें दौड़ कर उस गड्ढे को भरने के लिए आती हैं। उन्हीं हवाओं के साथ बादल भी भागे चले आते

हैं। इसलिए जिस वर्ष जितनी ज्यादा गर्मी पड़ती है, उस वर्ष उतने ही बादलों का आगमन हो जाता है।

जीवन में एक गहरी व्यवस्था है। यहाँ कुछ भी अनियमपूर्ण नहीं है। कुछ भी अराजक नहीं है। जब हृदय उत्तप्त होता है शिष्य का, जलता है, रोता है, पीड़ित होता है जीवन के दुखों से –अचानक, कोई बदली चली आती है खिंची हुई। वह बदली ही गुरु है। और मिलन आकस्मिक है। गुरु की तरफ से नहीं, शिष्य की तरफ से आकस्मिक है।

"दादू गैब माहि गुरुदेव मिल्या"–और गैब का दूसरा अर्थ राह भी होता है। एक अर्थ होता है, अनायास आकस्मिक ; और दूसरा अर्थ होता है, मार्ग, राह।

यह भी समझ लेने जैसा है, कि जब तक तुम राह पर नहीं हो, गुरु नहीं मिलेगा। थोड़ा सा तो तुम्हे राह पर होना ही पड़ेगा। राह का मतलब है कि तुम्हें थोड़ी सी तो खोज करनी ही पड़ेगी ; यह भी जानते हुए, कि तुम्हारी खोज से कुछ होने वाला नही है, तुम पहुँचोगे नहीं। तुम्हारी सब खोज अंधेरे में टटोलने जैसी है। लेकिन तुम टटोलते रहोगे तो ही गुरु मिलेगा। जिन्होंने टटोला ही नही है, उनको गुरु नहीं मिल सकता।

तुम्हारी थोड़ी सी खोज तो चाहिए। वही तो तुम्हारी प्यास को प्रकट करेगी। तुम्हारा थोड़ा प्रयत्न तो चाहिए। माना कि तुम नीद में हो, चल नहीं सकते, करवट तो बदल ही सकते हो। माना कि तुम नींद में हो, तुम ठीक-ठीक गुरु को पुकार नहीं सकते, लेकिन सपने में भी तो आदमी बुदबुदाता है, अनर्गल बोलता है। उस अनर्गल बोलने के पीछे भी आकांक्षा तो होगी ही बुलाने की। गहरी से गहरी नींद में भी अगर तुम गुरु को खोज रहे हो, यह जानते हुए भलीभांति, कि तुम गुरु को खोज नही सकते क्योंकि तुम्हारे पास कोई कसौटी नहीं है, जिस पर तुम कस लोगे कि कौन सोना है, कौन सोना नहीं है। लेकिन तुम खोज रहे हो, आकांक्षा है, अभीप्सा है; तुम्हारी अभीप्सा के आधार पर ही गुरु का आगमन हो सकता है। इसलिए राह पर तुम्हारा होना जरूरी है।

ससार में करोड़ो लोग है, सभी को गुरु नही मिलता। उनकी आकांक्षा ही नहीं है। वे तो हैरान होते हैं। अगर तुम्हे गुरु मिल जाय, तो वे हैरान होते हैं, कि तुम किस पागलपन में पड़े हो। भले-चगे आदमी थे, सब ठीक-ठीक चल रहा था, यह क्या गड़बड़ में उलझ गये हो। वे तुम्हे बचाने की भी कोशिश करते हैं।

क्योंकि गुरु के मिलने का अर्थ है, तुम उनकी भीड़ के हिस्से न रहे। गुरु के मिलने का अर्थ है, कि अब तुम उस राज-मार्ग पर न चलोगे, जहाँ

सारी दुनियाँ चल रही है। अब तुमने एक पगडंडी चुन ली है। तुम खतरनाक हो गये। तुम राह से उतर कर चल रहे हो। तुमने बीहड़ में प्रवेश किया, तुमने अनजान से प्रेम बना लिया, तुम अपरिचित के आकर्षण में पड़ गये। तुम दुस्साहस कर रहे हो।

भीड़ तुम्हें कहेगी, मत करो पागलपन! यहीं चलो, जहाँ सब चलते हैं। यहाँ रास्ता साफ-सुथरा है, सीमेंट से पटा है, आगे-पीछे का सब पता है, किनारे पर मील के पत्थर लगे हैं, नक्शा उपलब्ध है। कहाँ हम जा रहे हैं, इसका हमें ठीक-ठीक बोध है। और फिर सारे लोग साथ हैं, हम अकेले नहीं हैं। तुम अकेले उतर रहे हो। किसके पीछे जा रहे हो? क्या पक्का है, कि वह तुम्हें पहुँचायेगा और भटका न देगा?

गुरु का हाथ पकड़ना इस संसार में सबसे बड़ा दुस्साहस है। इसलिए थोड़े से हिम्मतवर लोग ही कर पाते हैं। हिमालय पर चढ़ जाना इतना बडा दुस्साहस नही है। चाद पर पहुँच जाना इतना बड़ा दुस्साहस नहीं है। क्योंकि चाद पर पहुँचने के पहले सारी व्यवस्था कर ली गई होती है। खतरे का कम से कम उपाय है। लेकिन जब तुम गुरु के साथ चलना शुरू करते हो, तब तो वहाँ श्रद्धा के अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं है। सिर्फ भरोसा है। और भरोसा तो बहुत ही नाजुक चीज है। फिर भरोसा, भरोसा ही है। वैसा होगा ही, इसका कोई ठिकाना नही है।

तो जब भी कोई किसी गुरु को पा लेता है, तब सारा समाज उसे खींचने की कोशिश करता है। और तब समाज ने उपाय भी किया है; ऐसे खतरनाक लोगो को खतरे से बचाने के लिए, समाज ने झूठे गुरु भी पैदा किए हैं। वे समाज का हिस्सा है। वे पगडडी पर नही ले जाते, वे राजमार्ग पर ही चलाते हैं। ईसाई पादरी है, पुरोहित है; हिंदू मदिर का पुजारी है, पडित है, जैन साधु है, मुनि है, अब वे गुरु नहीं हैं। क्योकि वे भी उसी मार्ग पर चलाते हैं, जिस मार्ग पर भीड़ चल रही है।

महावीर गुरु थे। जो महावीर के साथ चले, वे हिम्मतवर लोग रहे होंगे; लेकिन जैन मुनि गुरु नही है। वस्तुतः अगर तुम गौर से देखोगे, तो तुम पाओगे, कि जैन मुनि अपने अनुयायियो के पीछे चलता है; आगे नही चलता। तुम जाकर गौर से निरीक्षण करो—

एक जैन मुनि मुझे मिलने आना चाहते थे। उन्होने खबर भेजी, लेकिन उन्होंने कहा, मैं बड़ी मुसीबत में हूँ; अनुयायी आने नहीं देते। अब यह बड़े मजे की बात है। गुरु आना चाहता है, शिष्य आने नहीं देते; तब तो शिष्य गुरु है, और गुरु शिष्य है। वे नहीं आ पाये क्योंकि अनुयायी खिलाफ हैं।

वे कहते हैं, वहाँ जाने की जरूरत नहीं। गुरु मोहताज है क्योंकि अगर वह जाये, तो अनुयायी पीछे से हट जायेंगे। वह उनके सहारे जी रहा है। वह समाज का हिस्सा है।

ध्यान रखना, गुरु समाज का हिस्सा कभी भी नहीं है। गुरु सदा ही विद्रोही है। वह परमात्मा का हिस्सा है, समाज का नहीं। और समाज परमात्म-विरोधी है। अन्यथा सभी पहुँच जाते। बहुत थोड़े पहुँच पाते है। विरले पहुँच पाते है, कभी-कभी पहुँच पाते हैं। क्योंकि जाने के लिए अकेला होना जरूरी है।

तो पहले तो गुरु तुम्हें अपने साथ ले लेता है, एक पगडंडी पर ले चलता है, जो तुम्हारे लिए बिलकुल अनजानी है; जिसका कोई नक्शा भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। कोई कुंजी, कोई गाईड भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। और गुरु भी कुछ कह नहीं सकता क्योंकि वह बार-बार यही कहता है, कि जो मैंने जाना है, वह तुम्हें भी जना दूगा, लेकिन बता नहीं सकता हूँ। क्योंकि वह शब्द में आता नहीं है। भरोसे पर तुम चलते हो। प्रेम का पतला सा धागा ही एकमात्र सहारा है।

और एक घड़ी ऐसी आती है जब गुरु तुम्हें बिलकुल अकेला भी छोड़ देगा उस बीहड़ में। क्योंकि गुरु भी तो समाज तो ही है। जब तक दो है, तब तक थोड़ा सा समाज तो है ही। परमात्मा से मिलन तो बिलकुल अकेले में होगा। तो पहले तो गुरु समाज से छीन लेगा, भीड़ से छीन लेगा, राजपथों से मुक्त कर देगा। और एक दिन तुम पाओगे, कि वह भी विलीन हो गया है बीहड़ में तुम्हें छोड़ कर। वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता। उसका भी हट जाना जरूरी है। तभी तो परमात्मा दिखाई पड़ेगा। अन्यथा गुरु बीच में खड़ा रहे, तो गुरु की पीठ ही तुम देखते रहोगे। गुरु के हटते ही परमात्मा के सन्मुख हो जाओगे। बड़े से बड़ा दुस्साहस है।

लेकिन जो राह पर हैं, उन्हीं को गुरु मिल सकता है। राह का मतलब यह है; कि जिनके मन में बेचैनी है, खोज की आकाक्षा है, प्यास है, जो तड़फ रहे है, नहीं जानते कहाँ जायें, लेकिन जाना चाहते है। नहीं जानते कैसे पैर उठायें, लेकिन उठाना चाहते है। ऐसे व्यक्ति को ही तो सिखाया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को ही तो जगाया जा सकता है। क्योंकि अगर तुम किसी की आकांक्षा के विपरीत उसे जगाना चाहो, तो कैसे जगा पाओगे? अगर वह जगने को राजी ही न हो और नींद के मधुर सपनों में खोया हो और सपनों में रस ले रहा हो, तुम उसे कैसे जगाओगे? जगाने के लिए बाहर का हाथ चाहिए, लेकिन भीतरवाले का भी सहारा चाहिए। भीतरवाला भी साथ दे, बाधा न दे।

"गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।"

तो गैब के दो अर्थ हैं, अनायास मिलता है गुरु, लेकिन केवल उन्हीं को मिलता है, जो किसी तरह की खोज कर रहे थे। अंधी खोज भला, अनजानी! गलत जा रहे थे, कुछ भी कर रहे थे जिससे उन्हें कुछ भी पता नहीं था, कि क्या होगा, क्या नहीं होगा; लेकिन टटोलते थे। जब भी गुरु का हाथ मिला है किसी को, तो वह तभी मिला है, जब वह टटोल रहा था अंधेरे में। टटोलते हाथ को ही गुरु का हाथ मिला है। जिसने टटोलना ही शुरू नहीं किया था उसे गुरु का हाथ कैसे मिल सकता है?

"पाया हम परसाद"–और दादू कहते हैं, कि फिर गुरु ने जो दिया, वह प्रसाद है। वह कोई सौदा नहीं है।

प्रसाद के अर्थ को ठीक से समझ लें। जो तुम्हें दिया जाता है, तुम्हारी किसी योग्यता के कारण नहीं, देनेवाले के पास इतना ज्यादा है, इसलिए देता है। तुम योग्य हो पाने के, इसलिए नहीं।

इस फर्क को ठीक से समझ लेना। अगर तुम्हारी योग्यता से दिया जाय, तो वह प्रसाद नहीं है। तुमने उसे अर्जित किया। वह तुम्हारे श्रम का फल है। तुम उसको पाने के हकदार थे। अगर तुमने अपने ही श्रम से पाया है, तो वह प्रसाद नहीं है। तुम उसके हकदार हो गये थे। तुम्हें धन्यवाद भी देने की जरूरत नहीं है क्योंकि तुमने श्रम किया था, तुम्हें मिला; बात खत्म हो गई। कोई अनुग्रह का सवाल भी नहीं है।

प्रसाद का अर्थ है, जिसे पाने की तुम्हारी योग्यता तो न थी, आकांक्षा भला रही हो, श्रम तुमने कुछ भी न किया था क्योंकि तुम्हें पता ही न था कैसे करें। उपाय तुमने कुछ भी न किया था, यत्न तुमने कुछ भी न किया था, अभीप्सा गहरी थी, प्यास गहरी थी। बस, वही तुम्हारी योग्यता थी। गुरु देता है अपने आधिक्य से।

जीसस की बड़ी पुरानी कथा है; वह प्रसाद की कथा है। एक बहुत बड़े बगीचे के मालिक ने कुछ मजदूरों को बुलाने के लिए अपने मैनेजर को भेजा। सुबह थी, सूरज उगता था, वह कुछ मजदूरों को लेकर आया। लेकिन काम ज्यादा था और मालिक शाम तक काम पूरा कर लेना चाहता था। तो दोपहर उसने मैनेजर को फिर भेजा। फिर वह और मजदूरों को लाया, लेकिन फिर भी काम ज्यादा था और मजदूर फिर भी कम थे। उसने फिर मैनेजर को भेजा। जब तक वह मजदूरों को खोज कर लाया, तब तक सूरज ढलने के करीब ही हो गया था। दिन जा चुका था।

फिर उस मालिक ने सभी मजदूरों का इकट्ठा किया, जो सुबह आये थे, जो दुपहर आये थे और जो अभी-अभी आ कर खड़े हुए थे, जिन्होंने कुछ भी न किया था और सभी को समान वेतन दे दिया।

सुबह जो मजदूर आये थे, निश्चित नाराज हो गये, शिकायत से भर गये। उन्होंने कहा, "यह तो हद अन्याय है। हम सुबह से आये हैं और दिन भर हमने हड्डी तोड़ कर श्रम किया है। खून पसीने की तरह बहाया है और हमें भी उतना ही मिल रहा है। फिर कुछ लोग दुपहर आये हैं, इन्हें आधा मिलना चाहिए—इनको भी उतना ही मिल रहा है। और अन्याय की तो सीमा टूट गई, जो लोग अभी-अभी आकर खड़े हुए हैं; जिन्होंने कुछ किया ही नहीं हैं, सिर्फ आये हैं और जाने का वक्त आ गया है, उनको भी उतना ही मिल रहा है।"

उस मालिक ने कहा, "तुम इसकी फिक्र मत करो, कि मैं किसको क्या दे रहा हूँ। तुम इसकी फिक्र करो, कि तुम्हें जो मिल रहा है वह तुम्हारे मजदूरी के लिए पर्याप्त है या नहीं? तुमने जितना श्रम किया है, उतना तुम्हें मिल गया है?"

उन मजदूरों ने कहा, "उतना हमें मिल गया है।"

तो उसने कहा, "फिर तुम फिक्र छोड़ दो। इनको मैं इनके श्रम करने के कारण नहीं देता, मेरे पास बहुत है ज्यादा इसलिए देता हूँ। मेरे पास इतना ज्यादा है, कि मैं क्या करूं, इसलिए देता हूँ। जो सांझ आये है, अभी-अभी आये हैं, उनको भी देता हूँ। तुम्हें शिकायत का कोई कारण न होना चाहिए।"

इसे थोड़ा समझें। प्रसाद तो उनको मिला, जो सांझ आये थे। जो सुबह आये थे, उन्हें प्रसाद नहीं मिला। उन्होंने तो श्रम किया, अर्जित किया।

भारत में दो संस्कृतियां हैं। एक संस्कृति का नाम है—जैन और बौद्धों की जो संस्कृति है, उसका नाम है, श्रमण संस्कृति। उसका जोर है, श्रम करो तो मिलेगा। तुम जितना करोगे, उतना मिलेगा। उनकी जीवन के प्रति दृष्टि गणितज्ञ की दृष्टि है।

फिर उनसे बिलकुल भिन्न हिंदुओ की संस्कृति है; वह प्रसाद की संस्कृति है। किसी ने कभी उसे प्रसाद नाम दिया नहीं, लेकिन देना चाहिए। जैन और बौद्ध तो अपनी संस्कृति को "श्रमण" कहते है। ब्राह्मण की संस्कृति को, हिंदू की संस्कृति को "प्रसाद" कहना चाहिए। क्योंकि उसका कहना यह है कि तुम कुछ भी कितनी ही योग्यता अर्जित कर लो, तुम परमात्मा को पाने के

हकदार कभी भी नहीं हो सकते। वह इतना बड़ा है—तुम्हारी योग्यता सदा छोटी रहेगी। अगर योग्यता से ही उसे पाना है, तो पाने की बात ही छोड़ दो। फिर यह मिलना होने ही वाला नहीं है। वह तो मिलता प्रसाद से है।

इसका यह अर्थ नहीं है, कि तुम कुछ मत करो। मिलेगा तो राह पर। तुम कुछ करो; लेकिन तुम्हारे करने से नहीं मिलता है। तुम्हारे करने से मिलने की संभावना बढ़ती है। जैसे सांझ आये मजदूर थे, कम से कम आये तो थे। किया कुछ भी न था। तुम राह पर पाये जाने चाहिए, खोजते हुए तुम मिलने चाहिए, परमात्मा प्रसाद की तरह बरस जाता है। और जिन्होंने भी उसे जाना है, उन सभी ने यह कहा है, कि अब हम जब देखते हैं लौट कर पीछे, तो जो हमने किया था, वह तो नाकुछ था।

क्या किया था? क्या करोगे? रोज सुबह घंटे भर आँख बंद, बैठ कर माला फेरी थी। इसको तुम परमात्मा को पाने का पर्याप्त आधार मानते हो? कि तुमने राम-राम जपा था रोज घंटे भर बैठ कर, उस राम-राम जपने को तुम मोक्ष को पाने के लिए पर्याप्त योग्यता मानते हो?

जिस दिन तुम पाओगे, उस दिन तुम यह भी पाओगे, कि जो किया था, उससे तो इसका कोई संबंध नहीं मालूम होता। वह जो किया था, वह तो न किए के बराबर है। करने से तुम्हारी आकांक्षा तो पता चली थी, कोई योग्यता अर्जित न हुई थी। तुम चाहते थे, कि परमात्मा मिले; यह प्यास तो पता चली थी, लेकिन तुमने उसे पाने के लिए कोई संपदा अर्जित कर ली है, ऐसा कुछ भी न हुआ था।

परमात्मा तुम्हारे प्रयत्न से नहीं मिलता यद्यपि तुम प्रयत्न न करो, तो भी न मिलेगा। इस जटिलता को तुम ठीक से समझ लेना। तुम प्रयत्न करोगे तो ही मिलेगा, लेकिन तुम्हारे प्रयत्न से नहीं मिलता। क्योंकि तुम्हारा प्रयत्न छोटा है! तुम एक चम्मच ले कर सागर को भरने चले हो। जब सागर तुम्हारे ऊपर बरसेगा, तब तुम क्या कहोगे, कि चम्मच के कारण बरस रहा है? तब तुम फेंक दोगे चम्मच को। चम्मच से तुम्हारी केवल प्यास का पता चला था। तुमने अपना निवेदन भेज दिया था उसके चरणों में। उसे खबर मिल गई थी, कि तुम राजी हो।

दादू कहते है, "दादू गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।"

गुरु भी जो देता है, वह प्रसाद है। उसके पास बहुत है। उसे परमात्मा मिल गया है। वह बांटना चाहता है। वस्तुतः वह बोझिल है। जैसे बादल पानी से भरे हों और बोझिल है। और चाहते हैं, कि कोई भूमि मिल जाय,

जहां बरस जायें। कोई अतृप्त, प्यासी भूमि मिल जाय, जो उन्हें स्वीकार कर ले। जैसे दीया जलता है, तो चारों तरफ रोशनी बिखरनी शुरू हो जाती है—बंटना शुरू हो गया। फूल सुगन्धित होता है, कली खिलती है, हवायें उसकी गंध को लेकर दूर दिगन्त से निकल जाती हैं—बांटना शुरू हो गया।

जब भी तुम्हारे पास कुछ होता है, तो तुम बांटना चाहते हो। सिर्फ वे ही पकड़ते हैं और कंजूस होते हैं, जिनके पास कुछ भी नहीं है। इसे भी तुम ठीक से समझ लो। क्योंकि यह बात थोड़ी पहेली सी मालूम पड़ेगी।

मैं कहता हूँ, जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे ही केवल पकड़ते हैं और कंजूस होते हैं। और जिनके पास कुछ है, वे कभी कृपण नहीं होते और कभी नहीं पकड़ते। क्योंकि जिनके पास कुछ है, वे यह भी जानते हैं, कि बांटने से बढ़ता है। जिनके पास कुछ नहीं है, वे डरते हैं क्योंकि बांटने से घटेगा।

गुरु तुम्हे देता है इसलिए नहीं, कि तुमने साधना से, श्रम से योग्यता पा ली है—नहीं! गुरु तुम्हें देता है क्योंकि तुम्हारी आंखों में आंसू हैं। गुरु तुम्हे देता है क्योंकि तुम्हारे हृदय मे प्यास है। गुरु तुम्हें देता है क्योंकि तुम्हारी स्वांस-स्वांस में एक खोज है। बस, इतना काफी है। तुम पात्र हो क्योंकि तुम खाली हो। पात्रता के कारण तुम पात्र नहीं हो।

यह पात्र शब्द बड़ा अच्छा है। उसी से पात्रता शब्द बनता है। पात्रता से हम अर्थ लेते है, योग्यता; लेकिन अगर ठीक से समझो तो पात्र का इतना ही मतलब होता है, जो खाली है, जो भरने को राजी है। कोई अगर भरे, तो वह बाधा न डालेगा। बस, पात्र का इतना ही अर्थ होता है। धर्म के जगत् में इतनी ही पात्रता है, कि तुम खाली हृदय को लेकर खड़े हो जाओ; गुरु का प्रसाद तुम्हे भर देगा।

> "पाया हम परसाद।"
> मस्तक मेरे कर धर्‌या देखा अगम अगाध।"
> दादू कहते है, मेरे सिर पर हाथ रख दिया गुरु ने।

किस सिर पर हाथ रखा जा सकता है? जो सिर झुका हो। अन्यथा हाथ रखा ही नहीं जा सकता। सिर्फ झुके सिर पर हाथ रखा जा सकता है। सिर्फ झुका सिर ही गुरु के हाथ से मिल सकता है।

जैसे नदी की धार नीचे की तरफ बहती है, गहरी से गहरी खाई की तरफ बहती है और अंततः सागर में गिर जाती है क्योंकि सागर सबसे बड़ी खाई है। पैसिफिक महासागर पांच मील गहरा खड्डा है। तो सारे जगत का पानी बहा जा रहा है सागरों की तरफ।

पूरब ने एक पूरा विज्ञान खोजा है। शिष्य झुके, ताकि गुरु दे सके। अगर शिष्य झुकना नहीं जानता, तो गुरु तैयार भी हो देने को, तो भी देने का कोई उपाय नहीं।

मेरे पास कई बार लोग आते हैं, वे कहते हैं कि क्या संन्यस्त होना जरूरी है, तभी आप हमारी सहायता करेंगे?

मैं उनसे कहता हूँ, मेरी सहायता तुम्हें सदा उपलब्ध है। लेकिन संन्यस्त हो कर ही तुम उसे पा सकोगे। मेरे तरफ से उपलब्ध होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी तरफ से लेने की क्षमता भी तो होनी चाहिए। संन्यस्त होने का कोई और अर्थ नहीं है। दीक्षित होने का कोई और अर्थ नहीं है; इतना ही अर्थ है, कि हम झुकते हैं। बस, इतना ही अर्थ है, कि हम झुकने को राजी हैं। हमारी तरफ से कोई बाधा नहीं है। अगर आप बरसो, तो हमारा पात्र सामने रखा है।

कठिन हो जाता है समझना उन्हे। क्योंकि वे सोचते हैं, अगर मैं सहायता करने को तैयार हूँ, तो फिर संन्यास, दीक्षा इस सबका क्या प्रयोजन है? क्यों न बिना संन्यस्त हुए, बिना दीक्षित हुए उनको सहायता मिल जाय? शायद उन्हे लगता है, कि मैं थोड़ा पक्षपातपूर्ण हूँ।

वे गलती में है। मैं उन्हे भी देना चाहता हूँ, लेकिन वे लेने को राजी नहीं है। वह ऐसे ही है, जैसे पहाड़ की चोटी हो, बहती गंगा की धार से कहे, कि क्या तू सागर को ही दिए चली जायेगी? हम भी खड़े हैं। आखिर हमारी तरफ क्यों नही चली आती? तो गंगा कहेगी, मैं तो राजी हूँ, लेकिन तुम इतने ऊंचे खड़े हो, कि वहाँ तक आने का कोई उपाय नही है।

जलधार नीचे की तरफ जा रही है। गुरु से शिष्य की तरफ एक जीवन्त धार बहती है। अगर तुम ठीक समझो, तो वही स्वर्ग की गंगा है। गुरु की तरफ से एक प्रसाद बहता है, लेकिन उसके लिए तुम्हें झुके हुए होना जरूरी है, तभी तुम उसे झेल पाओगे। अन्यथा वह बरसेगा भी और तुम खाली के खाली रह जाओगे। अगर तुम पहले से ही भरे हुए हो, तो तुम खाली रह जाओगे। अगर तुम खाली हो, तो भर जाओगे।

इसीलिए तो धर्म पहेलियों जैसा लगता है। पहेलियां हैं, लेकिन सीधी-साफ है। जरा सी भी समझ हो, तो अड़चन नहीं है।

नदी बह रही है, तुम प्यासे खड़े हो, झुको, अंजलि बनाओ हाथ की, तो तुम्हारी प्यास बुझ सकती है। लेकिन तुम अकड़े ही खड़े रहो, जैसे तुम्हारी

रीढ़ को लकवा मार गया हो तो नदी बहती रहेगी तुम्हारे पास और तुम प्यासे खड़े रहोगे। हाथ भर की ही दूरी थी, जरा से झुकते, कि सब पा लेते। लेकिन उतने झुकने को तुम राजी न हुए। और नदी के पास छलांग मार कर तुम्हारी अंजलि से आ जाने का कोई उपाय नहीं है। और आ भी जाय, अगर अंजलि बंधी न हो, तो भी आने से कोई सार न होगा।

शिष्यत्व का अर्थ है, झुकने की तैयारी। दीक्षा का अर्थ है, अब मैं झुका ही रहूँगा। वह एक स्थाई भाव है। ऐसा नहीं है, कि तुम कभी झुके और कभी नहीं झुके। शिष्यत्व का अर्थ है, अब मैं झुका ही रहूँगा; अब तुम्हारी मर्जी। जब चाहो बरसना, तुम मुझे गैर-झुका न पाओगे।

"मस्तक मेरे कर धर्या देखा अगम अगाध."

और जब झुका हुआ सिर हो शिष्य का, तो बड़ी क्रांतिकारी घटना संभव हो जाती है।

मनुष्य के शरीर में सात चक्र हैं। साधारणतः तुम पहले ही चक्र से परिचित हो पाते हो, क्योंकि प्रकृति उसी चक्र के साथ अपना सारा काम चलाती है—वह है, कामचक्र, मूलाधार। जहाँ से कामवासना उठती है, जहाँ से जीवन का प्रवाह चलता रहता है।

लेकिन वह सबसे नीचा चक्र है। उस चक्र में जीने का अर्थ है, जैसे कोई आदमी महल के होते हुए बस, महल के बाहर पोर्च में ही घर बना ले। पोर्च भी महल का हिस्सा है और सुंदर है। मेरे मन में कोई निन्दा नहीं है किसी बात की। पोर्च में कुछ भी बुरा नहीं है। पोर्च बिलकुल सुंदर है, उसकी जरूरत है। बाहर से आये तो पोर्च से गुजरना पड़ेगा। भीतर से गये तो पोर्च से गुजरना पड़ेगा। धूप होगी, वर्षा होगी, तो पोर्च बचायेगा; लेकिन पोर्च कोई रहने की जगह नहीं है।

एक यूनान में बहुत बड़ा विचारक हुआ—झेनो। उसकी विचार-पद्धति का नाम स्टोइक है। ग्रीक भाषा में पोर्च का नाम है "स्टोआ"। वह पोर्च में ही रहता है झेनो, इसलिए उसके पूरे दर्शन-शास्त्र का नाम "स्टोइक" हो गया, "स्टोआ" से। पोर्च में रहनेवाला झेनो वह कभी महल के भीतर नहीं गया। वह पोर्च में ही जीआ, पोर्च में मरा। और कोई पूछता, कि तुम इस पोर्च में क्यों जी रहे हो? तो वह बताता था, कि वह उसकी त्यागपूर्ण दृष्टि है।

लेकिन ऐसा त्याग मूढ़तापूर्ण है। ऐसा ही त्याग तुम भी कर रहे हो, कि तुम कामवासना में ही जी रहे हो। वह जीवन का पोर्च है, इससे ज्यादा नहीं।

महल बहुत बड़ा है। और उस महल में बड़े अनूठे कक्ष हैं और उसके अंतर्गृह में स्वयं परमात्मा विराजमान है। तुम पोर्च में बैठे रहो; तुम यूं ही व्यर्थ जीवन को गंवा दोगे।

सात चक्र हैं; पहला चक्र काम है और सातवां चक्र सहस्रार है। जब शिष्य का सिर झुकता है गुरु के चरणों से, और केवल बाहर का ही सिर नहीं झुकता, भीतर का अहंकार भी झुक जाता है, जब ऐसी मिलन की घड़ी आती है, कि बाहर सिर के साथ भीतर का अहंकार भी झुक जाता है–ध्यान रखना! क्योंकि बाहर का सिर झुकना तो बहुत आसान है। कम से कम भारत में बहुत ही आसान है। लोग अभ्यस्त हैं, औपचारिक है। सिर झुकाने में उन्हें कुछ लगता ही नहीं। वह केवल परम्परागत है। लेकिन अगर तुम उनके अहंकार की तस्वीर ले सको, तो भारतीय को तुम झुकते हुए देखोगे, सिर तो झुका हुआ आयेगा तस्वीर में, अहंकार खड़ा हुआ आयेगा तस्वीर में। और यह भी हो सकता है कि सिर झुकाने से भी अहंकार मजबूत हो रहा हो। जीवन जटिल है। एक नई अकड़ पकड़ रही हो, कि मैं तो विनम्र आदमी हूँ, देखो कहीं भी सिर झुका देता हूँ। देखो मेरी विनम्रता!

जब तुम्हारा सिर भी झुकता है और तुम्हारे भीतर का सिर भी झुक जाता है–अहंकार, जब ऐसी मिलन की घड़ी आती है, जब तुम पूरे ही झुके हुए होते हो, तो गुरु का हाथ अगर उस घड़ी में तुम्हारे सहस्रार पर पड़ जाय, तो उसकी जीवन-धारा तुममें प्रवाहित हो जाती है। और जो काम तुम अपने ही हाथ से जन्मो में न कर पाते, वह क्षण में घटित हो जाता है। वह प्रसाद हो जाता है। तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा गुरु की जीवन-ऊर्जा के साथ उर्ध्व-गामी हो जाती है। तुम्हारा सातवां चक्र सक्रिय हो जाता है।

और यह जो चक्र सक्रिय हो जाय, तो दादू कहते हैं, "देखा अगम अगाध"।

इसलिए वे प्रसाद कहते हैं। अपने बस से यह नहीं हुआ है। अपनी तरफ से कुछ भी न किया था, सिर्फ झुक गये थे। यह भी कोई करता है। लेकिन गुरु का हाथ पड़ गया सिर पर और क्षण भर मे एक क्रांति हो गई। गुरु की बहती ऊर्जा ने तुम्हारे जीवन के सारे छिन्न-भिन्न तार जोड़ दिए। खण्डित वीणा अखंड हो गई। जो कल तक टूटी धार थी, संयुक्त हो गई। कल तक, क्षण भर पहले तक जिस भीतर के मंदिर का तुम्हें कोई पता न था, उसका कलश दिखाई पड़ने लगा।

इस जीवन को अगर तुमने कामवासना से देखा है, तो यह संसार है। इसी जीवन को अगर तुमने सहस्रार से, समाधि से देखा है, तो यही अगम-

अगाध है। संसार यही है, कुछ बदलता नहीं; तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारे खड़े होने की जगह बदल जाती है।

और जिस दिन तुम समाधि के केंद्र से संसार को देखते हो, संसार बचता ही नहीं; परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। हर फूल-पत्ते मे वही, हर कंकड़-पत्थर में वही; आकाश, चांद-तारों में वही। लोगों में झांको और तुम उसी को पाते हो। हवा के झोंके को स्पर्श करो, उसी का स्पर्श होता है। आंख बंद करो, वही दिखाई पड़ता है। आख खोलो, वही दिखाई पड़ता है। लेकिन यह जीवन-ऊर्जा जब समाधि के द्वार से देखती है--

"गैब मांहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्या देखा अगम अगाध।
दादू सतगुरु यू सहजै मिला, लिया कंठ लगाई।
दाया भली दयाल की तब दीपक दिया जगाई।"

एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करना। क्योंकि दादू जैसे लोग एक शब्द भी व्यर्थ उपयोग नहीं करते हैं। बोलना उनका रस नहीं है। एक-एक शब्द किसी भीतर के गहरे विज्ञान की तरफ इशारा करता है।

"सतगुरु यू सहजे मिला"--सतगुरु से मिलने का एक ही उपाय है, कि तुम सहज हो रहो। जितने तुम असहज होओगे जितने जटिल होओगे, जितने कठिन होओगे, उतना मिलन मुश्किल हो जायेगा। सतगुरु से तो तुम ऐसे मिलो, जैसे तुम एक छोटे बच्चे हो। पाण्डित्य को घर रख जाओ। जहां जूते उतारते हो, वहीं अपनी सारी खोपडी भी उतार दो। स्नान करके जाओ। शरीर का धूल-धवांस ही नहीं झाड़ दो, भीतर के विचार भी वहीं छोड़ जाओ। गुरु के पास तो ऐसे जाओ जैसे तुम एक छोटे बच्चे हो, जिसे कुछ भी पता नहीं; जिसके होने में कहीं भी कोई आड़ा-तिरछापन नहीं है, जो सीधा सरल है, प्राकृतिक है।

अब यह बडी उलझन की बात है। क्योंकि सारी सभ्यता, समाज, संस्कृति तुम्हें जटिल बना रही है। समाज तुमसे कहता है, भीतर तुम कुछ भी होओ, बाहर कुछ और बताओ। भीतर क्रोध है, कोई फिक्र नहीं, सम्हाले रहो, बाहर मुस्कुराओ। आदमी को देखकर तुम्हें लगता है, कि कहां से इस दुष्ट के दर्शन हो गये! मगर कहो उससे, कि आपके मिलने से बड़ी प्रसन्नता हुई, बड़ा आनंद हुआ, बड़े दिनों में दर्शन हुए। कहो यही! मेहमान घर आता है, तबीयत होती है कि फांसी लगा लो; मगर स्वागत में पलक-पांवड़े बिछा दो।

सारी जीवन-व्यवस्था झूठ, जटिलता, पाखण्ड पर खड़ी है। किसी को सरल होने का उपाय नहीं।

लेकिन गुरु से ऐसे मिलना न होगा। गुरु के पास अगर तुम ये सब समझदारियां लेकर गये, तो तुम पास पहुँच ही न पाओगे। निकट पहुँच जाओगे, पास न पहुँच पाओगे। शरीर के पास हो जाओगे, गुरु के पास न हो पाओगे। गुरु के पास होने का तो एक ही है--सहजता। अगर तुम दूर हो गुरु से, तो उसका केवल एक ही कारण होगा, कि तुम असहज हो। सहज हो जाओ, तत्क्षण तुम पास हो। हजारों मील का फासला हो भला, अगर तुम सहज हो, गुरु के पास हो--और तुम गुरु के बिलकुल पास बैठे हो, शरीर से शरीर लगा कर बैठे हो, लेकिन असहज हो, तो हजारों मील का फासला है।

"सतगुरु यू सहजै मिला लीया कठ लगाई।"

अगर तुम सहज हो, तो गुरु तुम्हे कंठ लगा लेगा।

कंठ शब्द सोचने जैसा है। क्योंकि ये सब अलग-अलग चक्रो के नाम हैं। कंठ पर पांचवां चक्र है। और जिसका कंठ का चक्र जाग गया हो, उसका गद्य भी पद्य हो जाता है। उसके बोलने में एक माधुर्य आ जाता है। उसके शब्दों मे एक शून्य, उसके मौन में भी बड़ी मुखरता होती है। और उसकी मुखरता में मौन की छाया होती है। जिसके कठ का पांचवा चक्र सजीव हो गया होता है...।

जब ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है, तो एक-एक चक्र को पार करती है। पहला चक्र काम-चक्र है। दूसरा चक्र नाभि के नीचे है। दूसरे चक्र में जब ऊर्जा आती है, तो भय समाप्त हो जाता है, अभय उपलब्ध होता है। क्योंकि दूसरे चक्र से ही मृत्यु का संबध है। जब दूसरे चक्र को तुम पार कर लिए, मृत्यु को पार कर लिए।

इसलिए जब भी तुम्हें भय लगता है तब तुमने सोचा होगा, समझा होगा, कि तत्क्षण तुम्हारे पेट में कुछ गड़बड़ होनी शुरू हो जाती है। बहुत भयभीत अवस्था में तो आदमी का मलमूत्र भी त्याग हो जाता है। वह इसीलिए हो जाता है, कि भय का चक्र इतना सक्रिय हो जाता है, कि पेट को खाली करना जरूरी हो जाता है।

भयभीत आदमी के पेट में अलसर हो जाते है। चिन्तित आदमी के पेट में अलसर हो जाते है। अलसर का कुल इतना ही मतलब है, कि भय का चक्र इतने जोर से घूम रहा है, कि तुम्हारे शरीर को ही उसने पचाना शुरू कर दिया। उसने पेट की चमड़ी को पचाना शुरू कर दिया, इसलिए अलसर पैदा होने शुरू हो गये।

जब ऊर्जा भय के चक्र से पार हो जाती है, तुम निर्भीक हो जाते हो, अभय हो जाते हो, मौत दिखाई नहीं पड़ती। सभी जगह अमृत प्रतीत होने लगता है।

फिर तीसरा चक्र नाभि के ऊपर है। उस तीसरे चक्र पर आते ही तुम्हारे जीवन में कुछ अनूठा संतुलन मालूम होने लगता है—एक बैलेंस; अति नहीं रह जाती। अन्यथा साधारणतः जीवन में अतियां हैं। या तो तुम एक अति पर जाते हो कि भोग लो, या त्याग कर लो। या तो बहुत भोजन कर लो, या उपवास कर लो। बस, ऐसे अतियों पर डोलते रहते हो। कभी ध्यान कर लिया बैठ कर चार घंटे, फिर चार छह दिन के लिए नींद ले ली।

जैसे ही तुम तीसरे चक्र पर आते हो, अति विलीन हो जाती है। संतुलन पैदा होता है।

जब तुम चौथे चक्र पर आते हो, तो चौथा चक्र हृदय का है। तब तुम्हारे जीवन में पहली दफा प्रेम पैदा होता है। उसके पहले तुम प्रेम की बात करते हो, चर्चा चलाते हो। वह चर्चा और बातचीत ही है। उसके पहले तुम्हारा सब प्रेम कामवासना का ही छिपा हुआ रूप है। शब्द के आवरण तुम कुछ भी लपेटो, भीतर कामवासना नंगी खड़ी है। हृदय पर जब ऊर्जा आती है तभी तुम्हारे जीवन में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, काम विसर्जित हो जाता है।

फिर पांचवां चक्र है, कंठ पर। कठ पर आते ही ऊर्जा सत्य को अभिव्यक्ति देने की क्षमता को उपलब्ध होती है। जरूरी नहीं है कि सुननेवाला समझ पाये। सुननेवाला भी तभी समझ पायेगा, जब उसका भी पांचवां चक्र सक्रिय हो जाय।

तो गुरु जब बोलता है शिष्य से, अगर शिष्य का भी पांचवां चक्र सक्रिय हो; वही है अर्थ, *"लीया कंठ लगाइ"*—तभी शिष्य समझ पायेगा, जो बोला गया है वही। अन्यथा बोलेगा गुरु कुछ, शिष्य समझेगा कुछ। तुम समझोगे अपनी समझ के अनुसार।

अगर तुम्हारी ऊर्जा पहले ही चक्र पर है, तो गुरु कुछ कहेगा, तुम कुछ समझोगे। तुम्हारी सारी समझ में कामवासना होगी। अगर तुमने भय को पार नहीं किया है, तो तुम्हारी परमात्मा की तलाश भी भय पर ही आधारित होगी। तुम अगर प्रार्थना भी करने जाओगे तो तभी जाओगे, जब तुम्हारे प्राण भयभीत होंगे। अन्यथा तुम न जाओगे।

इसलिए लोग सुख से नही जाते, दुख में जाते हैं। सुख में कौन परमात्मा की याद करता है? क्या लेना-देना परमात्मा से? जब दुखी होते हैं, तब

जाते हैं; तब भय से कंपते हैं। मरते समय नास्तिक तक आस्तिक हो जाते हैं। जब आदमी सफल हो रहा होता है, जवान होता है, स्वस्थ होता है और सब तरफ से जिंदगी जीतती मालूम पड़ती है, तब आस्तिक भी नास्तिक हो जाता है। जब पैर कंपने लगते हैं; जीवन-ऊर्जा बिखरने लगती है, उतार आता है, ज्वार जा चुका और भाटे का क्षण आता है, तब नास्तिक भी आस्तिक होने लगते हैं। मरते वक्त वे भी ईश्वर को सोचने लगते हैं।

तो अगर तुम्हारी ऊर्जा पांचवें चक्र पर नहीं है, तो गुरु कुछ कहेगा, तुम समझोगे कुछ। अगर पांचवें चक्र पर है, तो गुरु कुछ भी न कहे, तो भी तुम वही समझोगे, जो गुरु कहना चाहता है। एक तार जुड़ जाता है। एक संवाद की संभावना शुरू होती है।

सत्य कहा नहीं जा सकता इसीलिए, क्योंकि सत्य को सुननेवाला मौजूद नहीं होता। सत्य को सुननेवाला मौजूद हो, सत्य निश्चित कहा जा सकता है। कहने की जरूरत नहीं पड़ती; बिना कहे भी कहा जा सकता है। गुरु चुप बैठा रहे और शिष्य चुप बैठा रहे, तो दोनों के कंठों में एक लेन-देन शुरू हो जाता है।

"सत्गुरु यूं सहजे मिला लीया कंठ लगाइ।
दाया भली दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ"।

और अनुकंपा है गुरु की, कि फिर उसने दीया जला दिया। दीया है छठवां चक्र; जिसको शिव-नेत्र कहे, थर्ड आई कहें, जो तुम्हारी दोनों आँखो की भौहों के मध्य में है; वह दीया है। क्योंकि वहीं से रोशनी फिर भीतर भर जाती है।

गुरु समझाता है, गुरु जताता है, बताता है, इशारे करता है ताकि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा पांचवें से छठवें की तरफ यात्रा कर ले। अगर तुम सुनने में राजी हो, अगर तुम तत्पर हो, तल्लीन हो, तो जल्दी ही ऊर्जा दीया बन जायेगी। जिसका भी तीसरा नेत्र खुल गया उसके भीतर प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है। और जिसके भीतर प्रकाश है, उसके बाहर भी अंधकार नहीं। वह जहाँ भी जाता है, अपने ही प्रकाश में चलता है। उसके लिए इस संसार में फिर कहीं कोई अंधकार नही है।

"दाया भली दयाल की तब दीपक दिया जगाय॥
सत्गुरु मारे सबद सूं, निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीत न आवे और।"

और गुरु ने एक-एक शब्द के बाण से ऐसे निशाने लगाये--"सतगुरु मारे सबद सूं, निरखि निरखि निज ठौर" कि भीतर जो भीड़ थी विचारों की, वह एक-एक कर मर गई। एक-एक विचार निष्प्राण हो गया।

और एक ऐसी घड़ी आई सन्नाटे की, कि जब भीतर देखा तो पता चला--"राम अकेला रहि गया चीत न आवे और।" कोई और दिखाई ही नहीं पड़ता। सिर्फ राम को छोड़ कर सब गुरु ने मार डाला।

गुरु बोलता है, शब्द का उपयोग करता है। ऐसे ही, जैसे पैर में कांटा लग जाय, तो हम दूसरे कांटे से उसको निकालते है। कांटा एक लग गया, दूसरा कांटा खोज कर हम पहले कांटे को निकालते हैं। दूसरा कांटा भी पहले कांटे जैसा ही हैं। जब पहला कांटा निकल जाय, तो भूल कर भी दूसरे कांटे को घाव में मत रख लेना, यह सोच कर कि यह बडा अच्छा कांटा है। बड़ी सेवा की इसने मेरी, वक्त पर काम आया। नही, जब पहला कांटा फिक गया, तो दूसरे को भी उसी के साथ फेंक देना।

गुरु के शब्द कांटो की तरह है--तुम्हारे भीतर कुछ कांटे हैं उन्हे खीच लेने के लिए। तीर है--तुम्हारे भीतर विचार है, उन्हे काट डालने के लिए। विचार विचार से कटेगा। तीर तीर से कटेगा; कांटा कांटे से निकेलेगा। जहर को जहर मे मारना पडता है।

"सतगुरु मारे सबद सो निरखि निरखि निज ठौर।"

और अगर तुम घबड़ा गये, क्योंकि गुरु तुम्हारी धारणाओं को तोड़ेगा, तुम्हारी आस्थाओं को मिटायेगा, तुम्हारे परिकल्पित विचारो की हत्या कर देगा। अगर तुम भयभीत हो गये, कि यह मेरा धर्म छीन ले रहा है, यह तो मेरे शास्त्र को मिटाये दे रहा हैं; यह तो मेरे न मालूम कितने-कितने समय से सजोये हुए सिद्धान्तों को नष्ट किए डाल रहा है--और तुम भाग खड़े हुए, तो तुम चूक जाओगे।

शास्त्र भी छोडने होगे, सिद्धान्त भी छोडने होंगे। सिर्फ उसी को बचाना है, जिसको मिटाने का कोई उपाय नही हैं। बाकी सब मिटा देना है। एक दफा उसकी पहचान आ जाय. फिर कोई भय नही है। लेकिन जब तक उसकी पहचान नही है, तब तक तुम्हारा राम न मालूम कितने सिद्धान्तों, शास्त्रों की भीड़ में खो गया है। कितने शब्दो की बकवास तुम्हारे भीतर चलती रहती है !

अब तुम राम को खोजना चाहते हो और इतना बडा बाजार है तुम्हारा मन ! राम का कही पता नहीं चलता। एक-एक को काट डालना होगा।

राम को काटने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह कटता ही नहीं। वह तुम्हारे भीतर जो अमृत, तुम्हारे भीतर जो शाश्वत, सनातन है, अनादि, अनन्त है, वही राम है। गुरु सब गिरा देगा, अगर तुम राजी रहे। यह बड़े से बड़ा ऑपरेशन है, जो दुनिया में हो सकता है।

कोई भी सर्जन इस ऑपरेशन को नही करता। ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे शरीर के सड़े-गले अगो को काट देता है। गुरु तो तुम्हारे सड़े-गले मन को पूरा का पूरा काटता है। और तभी तुम्हारी आत्मा निखर पाती है। अगर तुम मरने को राजी हो—क्योंकि पहले तुम्हें यह मरने जैसा ही लगेगा। इन विचारों को तो तुमने अपना प्राण समझा है।

अगर हिंदू है कोई और तुम हिंदू धर्म को कुछ कह दो, तो वह मरने-मारने को उतारू हो जाता है। अगर मुसलमान है कोई और तुम मुसलमान धर्म को कुछ कह दो, जीवन दाव पर लगा देगा। या तो तुम्हे मिटायेगा, या खुद मिट जायेगा।

आदमी शब्दों के लिए मरने को राजी है, मारने को राजी है। शब्दों का मूल्य उन्होंने जीवन से ज्यादा समझा है। कितने लाखो लोग मरे हैं चर्चों, मस्जिदों, मदिरो के नाम पर! आश्चर्यजनक है, कि शब्द का इतना मूल्य है, कि तुम अपना जीवन गवाने को तैयार हो। कि किसी ने गीता को गाली दे दी, कि किसी ने कुरान को बुरा कह दिया, बस, तुम पागल हुए। तुम राम को मिटाने को राजी हो, लेकिन शब्दो को छोडने को नहीं।

तो गुरु जब एक-एक करके तुम्हारे सिद्धान्तो को तोड़ने लगेगा और तुम्हारी धारणाओ को नष्ट करने लगेगा, तब तुम्हे ऐसा ही लगेगा, कि ये तो तुम्हारे प्राण गये। यही वक्त है, जब हिम्मत और साहस की जरूरत है। यही समय है, जब श्रद्धा का उपाय है, उपयोग है। क्योंकि तब तुम छोड़ देते हो अपने को गुरु के हाथ में, कि ठीक है।

जैसा तुम सर्जन के हाथ में अपने को छोड़ देते हो। खतरनाक है छोड़ना, क्योंकि क्या पता, जब तुम क्लोरोफार्म से बेहोश पड़े हो, तब वह तुम्हारी गर्दन ही काट दे! लेकिन तुम सर्जन के हाथ में अपने को छोड़ देते हो। सर्जरी बद हो जाय बिना श्रद्धा के; क्योंकि क्या पता है, कि सर्जन क्या करेगा। तुम तो चाहते थे एपेन्डिक्स निकाले, वह कुछ और निकाल ले। नहीं, तुम छोड़ देते हो अपने को हाथ में उसके कि ठीक है। एक भरोसा है।

गुरु के हाथ में तो छोड़ना और भी बड़े भरोसे की बात है। क्योंकि यह शरीर का ही मामला नहीं है, तुम्हारी चेतना का मामला है।

"सत्गुरु मारै सबद् सों निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रह् गया चीत न आवै और।
सबद दूध घृत राम रस कोई साध विलोवणहार।
दादू अमृत काढिलै गुरुमुखि गहै विचार।"

"सबद दूध"—गुरु जो बोलता है, वह तो दूध जैसा है। तुम उतने से ही तृप्त मत हो जाना, जो वह बोलता है। क्योंकि तब तुम दूध ही पाओगे। अच्छा है, दूध मिले यह भी अच्छा है। लेकिन कुछ और भी हो सकता है, जो तुम चूक जाओगे।

"सबद दूध, घृत राम रस"—लेकिन अगर उस दूध को तुमने अपने भीतर मनन किया; अगर उस दूध को तुमने ध्यान बनाया, चिन्तन बनाया; अगर उस दूध से तुम रमे और जीये—घृत राम रस; तो तुम उस घी को उपलब्ध कर लोगे, जो दूध में छिपा था। वह प्रगट हो जायेगा। यह घृत रामरस है।

"कोई साध विलोवणहार"—दूध तो बहुत लोग ले जाते हैं। लेकिन कोई साधक ही कभी ठीक से जानता है, कि कैसे दूध को बिलोया जाय, कैसे दूध को मथा जाय, मंथन-मनन-ध्यान; कैसे दूध को घृत बना लिया जाय।

और दूध और घृत में बड़ी क्रांतिकारी अंतर हो जाते हैं। दूध आज ठीक है, कल खराब हो जायेगा। घी वर्षों तक खराब नहीं होगा। कभी खराब नहीं होगा। जितना पुराना होगा, उतना मूल्यवान होता जायेगा। दूध आज ठीक है, कल फेंकने-योग्य हो जायेगा। उसी दूध में कुछ छिपा है शाश्वत, सनातन—"घृत राम रस।"

शब्द तो आज ताजे हैं, कल बासे हो जायेंगे। और अगर तुमने शब्दों को सम्हाल कर रखा, तो तुम पागल हो। तुम दूध को सम्हाल कर रख रहे हो। वह सड़ जायेगा, उससे घर में बदबू फैलेगी, वह किसी काम का न रह जायेगा। वह सिर्फ फेंकने के योग्य होगा।

जिन लोगो ने भी इस शास्त्रों को सम्हाल कर रख लिया है; उन्होंने दूध को सम्हाल के रख लिया है। सब शास्त्र सड़ गये। सभी शास्त्रों से दुर्गन्ध उठने लगती है। अगर साधक समझदार हो, तो शब्द को मथ लेगा, व्यर्थ को फेंक देगा। छाछ बच रहेगी, उसे फेंक देगा, घी को सम्हाल लेगा।

हर शब्द में छिपा है गुरु का सत्य। लेकिन पूरे शब्द को बचाने की कोशिश मत करना। शब्द का जो भाव है, शब्द का जो इशारा है—शब्द नहीं: तो शब्दों के बीच में जो खाली जगह है वह, दो पंक्तियों के बीच में जो शून्य है वह—वहाँ छिपा है रामरस।

"सबद दूध घृत राम रस कोई साध विलोवणहार"।
कभी-कभी कोई विरला साधक उसको मथ पाता है।
"दादू अमृत काढ़िलै गुरुमुख गहै विचार।"

वह जो गुरु कह रहा है, वह कोई विचार नहीं दे रहा है शब्दों के द्वारा। शब्दों के द्वारा वह निर्विचार देने की कोशिश कर रहा है, शब्दों के द्वारा वह सिद्धान्त नहीं दे रहा है, शब्दों के द्वारा वह सिद्धि देने की कोशिश कर रहा है। शब्दों के द्वारा वह मार्ग नहीं दे रहा है, शब्दों के द्वारा वह मंज़िल देने की कोशिश कर रहा है। लेकिन कोई साधक अगर ठीक से मंथन करे, तो ही समझ पायेगा।

"दादू अमृत काढ़िलै"-तो भाव को निकाल लो, शब्द की छाछ को छोड़ दो। शब्द तो खाली कारतूस है फिर, उसमें कोई सार नहीं है, उसे ढोने का कोई मतलब नहीं है। चल चुकी कारतूस है, उसमें से भाव निकाल लो।

मुझसे लोग पूछते हैं, कि आप जो कहते हैं, क्या हम उसे याद रखें? उसे याद रखने की कोई भी ज़रूरत नहीं है। उसे समझ लो, बात खत्म हो गई। उसे याद रखोगे-उसे याद रखने का मतलब ही यह हुआ, कि समझे नहीं। याद रखना पड़ता है उन्हीं चीजों को, जिन्हें हम समझते नहीं। जिन्हें हम समझ लेते हैं, उन्हें क्या याद रखना पड़ता है? जिन्हें समझ लिया वे हमारे अंग हो गये, मांस-मज्जा हो गये, हमारे खून में डूब गये। हमारी हड्डियों में समा हो गये। जो तुम समझ लेते हो, उसे तुम कभी याद नहीं रखते। जो तुम नहीं समझ पाते हो, उसको तुम याद रखते हो। जिसको तुमने समझ लिया, वह पच गया। जिसको तुमने नहीं समझा, वह अनपचा तुम्हारे ऊपर बोझ बना रहता है।

याद रखने की कोई भी ज़रूरत नहीं है, भाव को समेट लो। अर्थ को ले लो, व्यर्थ को छोड़ दो। अर्थ बड़ा होता है। शब्द कितना ही बड़ा हो, अर्थ बड़ा छोटा है। पर अर्थ ही सार है, वह निचोड़ है। जैसे एक बड़ा गुलाब का वृक्ष-उसमें दस-पाँच फूल लगते हैं, सारे वृक्ष की प्राण-ऊर्जा फूलों में आ जाती है। फिर फूल का कोई इत्र निकालता है, तो हजारों फूलों से चम्मच भर इत्र निकलता है।

शब्द तो बहुत हैं; उसमें से निःशब्द को छांटते जाओ, वही इत्र है। और जिस दिन तुम्हें निःशब्द या इत्र मिल जायेगा-"दादू अमृत काढ़िलै" उस दिन तुमने अमृत काढ़ लिया।

"गुरुमुख गहै विचार"-गहन ध्यान से अमृत की उपलब्धि होगी।

"देवै किनका दरद का, टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को सो गुरु पीर हमार।"

"देवै किनका दरद का"—गुरु अंततः तो आनन्द देगा लेकिन शुरू में बड़ा दर्द देगा। (जैसे घाव दे देगा हृदय में एक दर्द का, विरह का, परमात्मा को पाने की आकांक्षा का। एक सन्ताप जगा देगा। तुम जलोगे, तड़फोगे, सो न सकोगे, सब चैन खो जायेगा।) ऐसी घड़ी आयेगी, कि तुम पछताओगे, कि कहाँ इस आदमी से मिलना हो गया।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते है, अच्छा था, हम भले थे, बाजार में, दुकान में डूबे थे। सब ठीक था। अब एक बेचैनी है। अब एक-एक पल जाता लगता है, कि जीवन गया। एक-एक दिन जाता है, लगता है, अभी तक पहुँचे नहीं। अब एक दर्द दे दिया।

निश्चित, ठीक कहते हैं वे। (क्योंकि जब तक उसका दर्द न हो, तब तक खोज गहन न होगी। जब तुम तड़फोगे ऐसे, जैसे मछली तड़फती है बाहर पानी के फेंक दी गई तट पर, उसको ही भक्तों ने विरह कहा है।) उसको ही दादू कह रहे है—"देवै किनका दरद का टूटा जोड़ै तार।"

लेकिन उस दर्द के ही द्वारा वह उस टूटे तार को जोडता है। अगर वह दर्द न हो, तो टूटा तार भी नही जोड़ा जा सकता। क्योंकि तुम राजी ही न होओगे। तुम मानोगे ही न कि कुछ टूटा है, कि कोई तार टूटा है। उस दर्द में ही, उस पीड़ा मे ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि तुम्हारा सागर खो गया है। तुम तट पर तड़फ रहे हो।

पहले तो तुम्हें जगायेगा, ताकि तुम तड़फो। जिस दिन तुम्हारी तड़फ पूरी हो जायेगी, उसी दिन "टूटा जोड़ै तार"। उसी दिन तुम्हारी प्यास ही तो प्रार्थना बन जाती है। और तुम्हारा विरह ही तो योग बन जाता है। और तुम्हारी पुकार ही। जिसमें तुम्हारी सारी पीड़ा सग्रहीभूत होती है, तुम्हारे पहुँचने का द्वार बन जाती है।

"टूटा जोड़ै तार"

"दादू साधै सुरति को"—और तब परमात्मा की स्मृति सध जाती है। पहले तो दर्द, फिर तार का जुड़ना, फिर सुरति का सध जाना। सुरति का अर्थ होता है, स्मृति; सुरति का अर्थ होता है, उसकी याद।

जैसे कोई प्रेयसी अपने प्रेमी को याद करती है, ऐसी जब तुम्हारी याद हो जाती है, सब भूल जाता है, वही याद रहता है—तब इस सुरति में ही

तो तार जुड़ जाता है। तुम रहते यहाँ हो, यहाँ के नहीं रह जाते। होते बाजार में हो, बाजार नहीं होते। खिचते रहते हो मंदिर की तरफ। बात करते हो किसी से, संवाद "उसी" से होता रहता है। सोते हो यहा, लेकिन कहीं और जागे रहते हो। भोजन करते हो, काम करते हो, जीवन की सब व्यवस्था जुटाते रहते हो, लेकिन भीतर एक धुन बजती रहती है अहर्निश उसके मिलन की।

सुरति का अर्थ है, जिसकी याद तुम्हारी स्वांस-स्वांस बन जाय। सुरति का अर्थ है जिसकी याद न करनी पड़े, जिसकी याद होती रहे।

इस फर्क को ठीक से समझ लेना। सुरति का अर्थ याद करना नहीं है; सुरति का अर्थ है, याद में रम जाना।

एक फकीर हुई राबिया। उससे किसी दूसरे फकीर हसन ने पूछा, कि राबिया, तू कितना समय परमात्मा की याद में बिताती है? उसने कहा, "हसन, तू भी पागल है। परमात्मा की याद में कितना समय? याद तो मैं उसकी करती ही नही। याद से तो उसकी मै छूटना चाहती हूँ। चौबीस घंटे, सोते-जागते, स्वांस-श्वास में याद बनी है। जल रही हूँ। याद से छूटना है किसी तरह।"

और एक ही उपाय है, याद से छूटने का, कि आदमी उसमें डूब जाय। परमात्मा जब तक तुम न हो जाओ, तब तक फिर याद न छूटेगी।

एक तो उपाय है, कि ससार में खोये रहो ताकि याद ही न आये। फिर बीच की जगह है, जहाँ याद आयेगी और तुम तड़फोगे, बेचैन होओगे, रोआं-रोआं तुम्हारा दर्द से भर जायेगा। और फिर एक तीसरी घडी है, जब तुम छलांग लेकर वापिस सागर उतर जाओगे। मछली अपने घर पहुँच गई, सागर हो गई।

परमात्मा ही जब तक तुम न हो जाओ, तब तक सुरति को—तब तक सुरति का उपयोग है। फिर कोई याद की जरूरत नहीं है। फिर कौन किसकी याद करता? फिर तुम वही हो गये, जिसकी याद करते थे। फिर याद करने वाला ही न बचा। फिर याद किया जाने वाला भी न बचा। फिर एक ही बचा।

"देवै किनका दरद का टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को सो गुरु पीर हमार।"

और जो हमारी ऐसी सुरति को सधा दे, वही हमारा गुरु है, वही हमारा पीर है।

तो गुरु कौन है, इसकी परिभाषा कर रहे हैं वे। जो तुम्हारी याद को जगा दे परमात्मा की तरफ, वही गुरु है। जो तुम्हें तड़फा दे, वही गुरु है–देवे दर्द; वही गुरु है। जो तुम्हारे मीठे सपनों को तोड़ दे, क्योंकि मीठे सपने बड़े जहरीले हैं, झूठे हैं। जितना समय गया उसमें, व्यर्थ ही गया। जितना जायेगा, वह भी व्यर्थ जायेगा। सपनों से चलते रहने से यात्रा नहीं होती। जो तुम्हें जगा दे, दर्द से भर दे, प्यास से भर दे, वही गुरु है।

"दादू साधे सुरति को सो गुरु पीर हमार।
सद्‌गुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजै देखिये साहिब का दीदार।"

"सदगुरु मिलै तो पाइये"–कोई और उपाय नहीं है। सद्‌गुरु मिल जाय, तो ही पाना हो सकता है। और जो भी इससे अन्यथा कोशिश में लगे हों, वे कभी भी पा न सकेंगे। और अगर कभी किन्हीं ने पा भी लिया हो, तो यही समझना कि तुम्हें पता न हो लेकिन उनको सद्‌गुरु कभी न कभी मिल गया होगा।
कृष्णमूर्ति निरन्तर कहते हैं, कि गुरु की कोई जरूरत नहीं। लेकिन जन्मो-जन्मों से न मालूम कितने गुरुओं ने साधा है। इस जन्म में भी एनीबीसेंट और लीडबीटर जैसे गुरु ने कृष्णमूर्ति को उठाया है और सुरति को साधा है। जो पहुँच गये हैं, उनमें से कई लोगों ने कई बार कहा है, कि गुरु की कोई जरूरत नहीं। उनका कहना ठीक है। पा लेने के बाद ऐसा लगता है, कि जरूरत ही किसकी थी? यह तो हम पाये ही हुए थे।

मैंने सुना है, कि एक बहुत बड़ी फैक्टरी, जहाँ सभी स्वचालित यंत्र थे, अचानक एक दिन बंद हो गई। बड़ी खोजबीन की गई, आधा दिन बीत गया, दिन बीत गया, कुछ पता न चला, कहाँ गड़बड़ है। इन्जीनियर थक गये। फिर विशेषज्ञ को विदेश से बुलाना पड़ा। सात दिन फैक्टरी बंद रही, तो लाखों का नुकसान हुआ। विशेषज्ञ आया, उसने अपने खीसे से एक छोटा सा स्क्रू-ड्रायवर निकाला, जाकर एक ढीले पेंच को कस दिया, फैक्टरी चल पड़ी।

मालिक ने उससे बिल पूछा, उसने दस हजार रुपये का बिल दिया। मालिक नें कहा, "यह जरा ज्यादा है। एक छोटे से स्क्रू को कसने का दस हजार रुपया! यह तो हम ही कर लेते। यह तो कोई भी बच्चा कर देता।"

तो उस विशेषज्ञ ने कहा, "फिर कर ही लिया होता। अब मेरे कर दिए जाने के बाद तो बात बिलकुल सरल है। यह तो बच्चा भी कर सकता है, कोई भी कर सकता है। और ये दस हजार जो तुमसे ले रहा हूँ, उसमें एक

रुपया स्क्रू कसने के हैं। नौ हजार नौ सौ निन्यानबे रुपये जानने के हैं, कि स्क्रू कौन सा कसना? तो करोड़ों स्क्रू हैं। तुम बिल को दो हिस्सों में बांट लो। एक रुपया कसने के हैं, नौ हजार नौ सौ निन्यानबे रुपये जानने के, कि कहाँ कसना है! कस देने के बाद तो सब सरल हो जाता है।"

बहुतों को लगता है पहुँचने के बाद, कि क्या जरूरत थी किसी के सहारे की? अपना ही खजाना था, अपने को ही पाना था। पाया ही हुआ था। कभी खोया न था; सिर्फ ज़रा याद भूल गई थी। याद भर लाने के लिए किसके चरणों में जाने की ज़रूरत थी?

निश्चित यह बात सच है। जान कर ऐसा ही पता चलता है, किसी के पास जाने की जरूरत न थी। लेकिन जो नहीं पहुचे हैं, उन्हें यह मत कहना। क्योंकि अगर उनके दिमाग में यह फितूर सवार हो गया, कि कहीं जाने की जरूरत नहीं, तो वे कभी भी न पहुँचेंगे। और उसके दिमाग में यह फितूर सवार हो जाना बहुत आसान है, क्योंकि यह अहंकार के बड़े पक्ष में है, कि किसी के पास जाने की कोई जरूरत नहीं है। कोई गुरु नहीं है। अहंकार स्वयं ही गुरु बनना चाहता है, कहीं झुकना नहीं चाहता।

इसलिए कृष्णमूर्ति बात तो ठीक कहते हैं, लेकिन जिनने सुनी है उनको हानि हुई है, लाभ नहीं हुआ। वे चुप रहते और कुछ नहीं कहते, तो शायद ज्यादा लोगों को लाभ होता। और जो कह रहे हैं, बिलकुल ही ठीक कह रहे हैं। उसमें रत्ती भर गलती नहीं है। सौ प्रतिशत सही है। कुछ भी जरूरत नहीं है किसी को बताने की। मगर अगर तुम अपने से ही पा सके होते, तो तुमने कभी का पा लिया होता। कितने जन्मों से तुम भटक रहे हो!

सारे धर्म एक बात कहते हैं कि प्रथम धर्म का जो आविष्कार है, वह परमात्मा ने ही किया होगा। जैसे हिंदू कहते है, वेद उसने ही रचे। मुसलमान कहते हैं कुरान उसने ही उतारी। ईसाई कहते हैं, बाइबिल उसके ही माध्यम, ईसा के माध्यम से आये उसके ही शब्द हैं। यहूदी कहते हैं, मोजेज़ को उसी ने सूत्र दिए हैं।

इन सारी कहानियों में एक बात बड़े अर्थ की है और वह यह; और मैं मानता हूँ, कि उसमें बड़ा रहस्य है। ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि वही पहला गुरु हो सकता है। जब सभी लोग सोये थे, तो वही जागा था। उसने एक को जगा दिया होगा, फिर श्रृंखला शुरू हो गई। अन्यथा आदमी अपनी तरफ से कैसे जागता? इसलिए वेद उसने बनाये, कि नहीं, मुझे प्रयोजन नहीं है; लेकिन बात में सार है। पहला उद्‌घोष, पहली उद्‌भावना, पहला जागरण, पहला हाथ का इशारा सोये आदमी को उसने दिया होगा।

परमात्मा का अर्थ है, जो जागा हुआ है, चैतन्य है, उसने ही पहले आदमी को जगाया होगा। फिर पहले ने दूसरे को, फिर दूसरे ने तीसरे को, फिर अनन्त श्रृंखला है।

इसलिए भारत में हिंदुओं के सारे शास्त्र ऐसे ही शुरू होते हैं, कि पहले ब्रह्मा ने उसको दिया ज्ञान, फिर उसने उस ऋषि को दिया, फिर उस ऋषि ने उस ऋषि को दिया, फिर ऐसा चलते-चलते-चलते कृष्ण भी वही कहते हैं।

इसका एक ही अर्थ है, कि जागा हुआ ही सोये हुए को जगा सकता है। इसलिए पहली किरण जागरण की परमात्मा से ही उतरनी चाहिए। सीधे तुम जाग न सकोगे। जाग कर तुम पाओगे कोई अड़चन न थी, जाग सकते थे। लेकिन सीधे तुम जाग न सकोगे।

"सद्गुरु मिलै तो पाइये भक्ति मुक्ति भंडार"।

और दादू कहते हैं, भक्ति पा ली, तो मुक्ति पा ली। भक्त के लिए, प्रेमी के लिए मुक्ति की कोई आकांक्षा ही नहीं है। वह कहता है, प्रेम मिल गया परमात्मा का। बरस गया उसका मेघ ऊपर। हो गये उसके स्नेह से सिक्त— पा लिया सब—भक्ति मुक्ति भडार। भक्त मोक्ष की आकाक्षा नहीं करता।

और उसमें थोड़ी बात सोचने जैसी है, क्योंकि मोक्ष की आकाक्षा मे कहीं न कहीं अहंकार छिपा रह सकता है। "मैं मुक्त हो जाऊं', इसमे कहीं मैं बच सकता है। मैं सबसे मुक्त हो जाऊ, मैं बिलकुल स्वतत्र हो जाऊ, इसमें मैं का स्वर बच सकता है। भक्त कहता है, हमें कोई मुक्ति नहीं चाहिए। हमें तो भक्ति चाहिए। तेरा प्रेम चाहिए। तेरे चरण मिल जायें, काफी है। तेरी आँख प्रेम से भर कर हमें देख ले, हमें काफी है।

लेकिन यही तो मुक्ति है। जिसको उसके चरण मिल गये, वह मुक्त हो गया।

"दादू सहजै देखिये साहिब का दीदार"।

दादू कहते हैं, कोई मुक्ति की जरूरत नहीं। बस, इतना काफी है, कि तेरे दर्शन हो जाये। आँखें तुझे देख लें, बस! हृदय तुझे पहचान लें, बस! चरण तेरे नृत्य से भर जायें, बस!

और मैं कहता हूँ, इतना हो गया तो कुछ और होने को बचता नहीं। इस परम घडी में उत्सव की, जब उसका दीदार हो जाता है, जब तुम देख लेते हो सब जगह उसे छिपा हुआ; जब वह कहीं भी छिप नहीं पाता और तुम सब जगह उसे देखते हो; जब ऐसी कोई जगह नहीं रह जाती, जहाँ वह नहीं दिखाई पड़ता, तुम मुक्त हो गये, क्योंकि वही बचा।

तुम अपने भीतर भी उसी को देखते हो, बाहर भी उसी को देखते हो। मित्न में भी वही, शत्नु में भी वही। जीवन में भी वही, मृत्यु भी वही। जब वही बचा तो किसको मुक्त होना हूं और किससे मुक्त होना है? सारे बंधन गिर गये। फिर तो बन्धन भी मुक्ति है। फिर तो बन्धन में भी मोक्ष है। अगर परमात्मा ही बांध रहा है, तो जल्दी भी क्या है छूटने की? अगर वही बन्धन बना है, तो धन्यभाग!

भक्त की यात्ना बड़ी अनूठी है। वह प्रेम की यात्ना है। और प्रेम ही मोक्ष है। जिसने प्रेम के अतिरिक्त मोक्ष मांगा, वह अहंकार की ही मांग कर रहा है। और जिसने प्रेम में ही मोक्ष को जाना, उसने ही मोक्ष को जाना है।

जिज्ञासा-पूर्ति : एक

प्रवचन दो : दिनांक १२-७-१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना.



पहला प्रश्न : सद्गुरु मिल गये। साधक को इसकी प्रत्यभिज्ञा, पहचान कैसे हो?

साधक हो, तो क्षण भर की देर नहीं लगती। साधक ही न हो, तो प्रत्यभिज्ञा का कोई उपाय नहीं। प्यासा हो, तो पानी मिल गया—क्या इसे किसी और से पूछने जाना पड़ेगा? प्यास ही प्रत्यभिज्ञा बन जायेगी। कंठ की तृप्ति ही प्रमाण हो जायेगी।

लेकिन प्यास ही न हो, जल का सरोवर भरा रहे और तुम्हारे कंठ ने प्यास न जानी हो, तो जल की पहचान न हो सकेगी। पानी तो प्यास से पहचाना जाता है, शास्त्रों में लिखी परिभाषाओं से नहीं।

अगर साधक है कोई—साधक का अर्थ क्या है? साधक का अर्थ है, कि खोजी है, आकांक्षी है, अभीप्सा से भरा है। साधक का अर्थ है, कि प्यासा है सत्य के लिए।

सौ साधकों में निन्यानबे साधक होते नहीं, फिर भी साधना की दुनिया में उतर जाते हैं। इससे सारी उलझन खड़ी होती है।

तुम्हें प्यास न लगी हो और किसी दूसरे ने जिसने प्यास को जानी है, प्यास की पीड़ा जानी है और फिर जल के पीने की तृप्ति जानी है, तुमसे अपनी तृप्ति की बात कही: बात-बात में तुम प्रभावित हो गये। तुम्हारे मन में भी लोभ जगा। तुमने भी सोचा, कि ऐसा आनन्द हमें भी मिले, ऐसी तृप्ति हमें भी मिले। तुम यह भूल ही गये, कि बिना प्यास के तृप्ति का कोई आनन्द सम्भव नहीं है।

उस आदमी ने जो तृप्ति जानी है, वह प्यास की पीड़ा के कारण है। जितनी गहरी होती है पीड़ा, उतनी ही गहरी होती है तृप्ति। जितनी छिछली होती है

पीड़ा, उतनी ही छिछली होती है तृप्ति। और पीड़ा हो ही न, और तुम लोभ के कारण निकल गये पानी पीने, तो प्यास तो है ही नहीं। पहचानोगे कैसे, कि पानी है?

शास्त्र की परिभाषाओं के अनुसार समझ लिया कि पानी होगा, तो हमेशा संदेह बना रहेगा। क्योंकि अपने भीतर तो कोई भी प्रमाण नहीं है। तुम्हारा कोई संसर्ग तो हुआ नहीं जल से। जलधार से तुम्हारे प्राण तो जुड़े नहीं। तुम तो दूर ही दूर बने रहे हो। और तुम पानी पी भी लो बिना प्यास के और ठीक असली पानी हो, तो भी तो आनन्द उपलब्ध न होगा। उलटा भी हो सकता है, कि वमन की इच्छा हो जाय, उलटी हो जाय।

प्यास न हो, तो पानी पीना खतरनाक है। भूख न हो, तो भोजन कर लेना महँगा पड़ सकता है। सत्य को चाहा ही न हो, तो सद्गुरु का मिलना खतरनाक हो सकता है।

सौ में से निन्यानबे लोग तो लोभ के कारण उत्सुक हो जाते हैं। उपनिषद् गीत गाते हैं। दादू, कबीर उस परम आनन्द की चर्चा करते हैं। सदियों-सदियों में मीरा और नानक, चैतन्य नाचे हैं। उनका नाच तुम्हे छू जाता है। उनके गीत की भनक तुम्हारे कान में पड़ जाती है। उन्हें देख कर तुम्हारा हृदय लोलुप हो उठता है। तुम भी ऐसे होना चाहोगे।

बुद्ध के पास जाकर किसका मन नही हो उठता, कि ऐसी शांति हमे भी मिले! लेकिन उतनी अशान्ति तुमने जानी है, जो बुद्ध ने जानी? वही अशान्ति तो तुम्हारी शान्ति का द्वार बनेगी। तुमने उस पीड़ा को झेला है, जो बुद्ध ने झेली? तुम उस मार्ग से गुजरे हो—कंटकाकीर्ण—जिससे बुद्ध गुजरे? तो मंजिल पर आकर जो वे नाच रहे हैं, वह उस मार्ग के सारे के सारे दुःख अनुभव के कारण।

तुम सीधे मंजिल पर पहुँच जाते हो; मार्ग का तुम्हें कोई पता नही। मंजिल भी मिल जाय, तो मिली हुई नही मालूम पड़ती। और संदेह तो बना ही रहेगा।

इसलिए यह तो पूछो ही मत, कि सद्गुरु मिल गए, इसकी साधक को प्रत्यभिज्ञा कैसे हो, पहचान कैसे हो?

सद्गुरु की फिक्र छोड़ो। पहली फिक्र यह कर लो, कि साधक हो? पहले तो इसकी ही प्रत्यभिज्ञा कर लो, कि साधक हो?

अगर साधक हो, तो जैसे ही गुरु मिलेगा, प्राण जुड़ जायेंगे, तार मिल जायेगा। कोई बताने की जरूरत न पड़ेगी। अगर उजाला आ जाय, तो क्या

कोई तुम्हें बताने आयेगा, तब तुम पहचानोगे कि यह अँधेरा नहीं, उजाला है ? अंधे की आँख खुल जाय, तो क्या अंधे को दूसरों को बताना पड़ेगा, कि अब तेरी आँख खुल गई, अब तू देख सकता है, देख। आँख खुल गई, कि अंधा देखने लगता है। रोशनी आ गई कि पहचान ली जाती है, स्वतःप्रमाण है।

सद्‌गुरु का मिलन भी स्वतःप्रमाण है। नहीं तो आखिर में तुम सवाल पूछोगे, कि जब परमात्मा मिलेगा तो कैसे प्रत्यभिज्ञा होगी, कैसे पहचानेंगे कि यही परमात्मा है ? कोई जरूरत ही नहीं है।

जब तुम्हारे सिर में दर्द होता है, तब तुम पहचान लेते हो दर्द। और जब दर्द चला जाता है तब भी तुम पहचान लेते हो, कि अब सब ठीक हो गया--स्वस्थ। दोनों तुम पहचान लेते हो। जब प्राणों में पीड़ा होती है, तब भी तुम पहचान लेते हो; जब प्राण तृप्त हो जाते हैं, तब भी पहचान लेते हो।

नही, कोई प्रत्यभिज्ञा का शास्त्र नही है। जरूरत ही नहीं है।

लेकिन भूल पहली जगह हो जाती है। लोभ के कारण बहुत लोग साधना में प्रविष्ट हो जाते हैं। और अगर लोभ के कारण प्रविष्ट न हों, तो भय के कारण प्रविष्ट हो जाते हैं। वह एक ही बात है। लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई इसलिए परमात्मा की प्रार्थना कर रहा है कि डरा हुआ है, भयभीत है। कोई इसलिए प्रार्थना कर रहा है कि लोभातुर है। पर दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। दोनों में कोई भी साधक नही है।

साधक का तो अर्थ ही यह है, कि जीवन के अनुभव से जाना, कि जीवन व्यर्थ है। जीवन से गुजर कर पहचाना, कि कोई सार नहीं है। हाथ सिवाय राख के कुछ भी न लगा। सब जीवन के अनुभव देख लिये और खाली पाये; पानी के बबूले सिद्ध हुए। जब सारा जीवन राख हो जाता है, जो भी तुम चाह सकते थे, जो भी तुम माँग सकते थे, जो भी तुम्हारी वासना थी, सब व्यर्थ हो जाती है, सब इन्द्रधनुष टूट जाते हैं, खण्डहर रह जाता है जीवन का--उस अनुभूति के क्षण में खोज शुरू होती है, कि फिर सत्य क्या है? यह जीवन तो सपना हो गया। न केवल सपना, बल्कि दुःख-सपना हो गया; अब सत्य क्या है ?

जब तुम ऐसी उत्कंठा से भरते हो, तब गुरु को पहचानना न पड़ेगा। गुरु के पैरों की आवाज सुन कर तुम्हारे हृदय के घूंघरू बज उठेंगे। गुरु की आँख में आँख पड़ते ही सदा के बन्द द्वार खुल जायेंगे। गुरु का स्पर्श तुम्हें नचा देगा। उसका एक शब्द--और तुम्हारे भीतर ऐसी ओंकार की ध्वनि गूँजने लगेगी, जो तुमने कभी नही जानी थी। तुम एक नयी पुलक, एक नये संगीत और नये जीवन से आपूरित हो उठोगे।

नहीं, कोई पहचानने की जरूरत न पड़ेगी। तुम पूछोगे नहीं। और सारी दुनिया भी कहती हो, कि यह आदमी सत्गुरु नहीं, तो भी कोई तुम्हें फर्क नहीं पड़ेगा। तुम्हारे हृदय ने जान लिया। और हृदय की पहचान ही एकमात्र पहचान है।

इसलिए पहले तुम खोज कर लो, कि साधक हो? वहीं भूल हो गई, तो फिर मैं तुम्हे सारा शास्त्र भी बता दूं, कि इस-इस भाँति पहचानना गुरु को, कुछ काम न आयेगा।

क्योंकि जितने गुरु हैं उतने ही प्रकार के हैं। कोई परिभाषा काम नही आ सकती। महावीर अपने ढग के हैं, बुद्ध अपने ढंग के, कृष्ण अपने ढंग के, क्राइस्ट अपने ढंग के, मुहम्मद की बात ही और है। सब अनूठे हैं। अगर तुमने कोई परिभाषा बनाई, तो वह किसी एक ही गुरु के आधार पर बनेगी। और वैसा गुरु दुबारा पैदा होनेवाला नहीं है। इसलिए तुम्हारी परिभाषा मे कभी कोई गुरु बैठेगा नही।

जो गुरु पैदा होंगे, वे तुम्हारी परिभाषा मे न बैठेंगे। और जिसकी तुम परिभाषा लेकर चल रहे हो, वह दुबारा पैदा नहीं होता। कहीं दुबारा बुद्ध होते है! कही दुबारा महावीर होते है! नाटक करना एक बात है, दुबारा महावीर होना तो बहुत मुश्किल है। अभिनय और बात है। रामलीला की बात मत उठाओ, राम होना बहुत मुश्किल है।

अगर तुमने किसी की परिभाषा पकड़ ली, तो तुम मुश्किल मे पड़ोगे क्योंकि उस परिभाषा को पूरा करनेवाला दुबारा न आयेगा। वह आ चुका और जा चुका। और जब वह आया था, तब तुम पहचान न सके क्योंकि तब तुम कोई दूसरी पुरानी परिभाषा लिये बैठे थे।

महावीर जब मौजूद थे, तब तुम्हारे पास कृष्ण की परिभाषा थी। महावीर बिलकुल बैठे न उस परिभाषा मे। हिंदू-शास्त्रों ने महावीर का उल्लेख ही नहीं किया। इतना महिमावान पुरुष पैदा हुआ और इस देश का बड़े से बड़ा धर्म, इस देश की बहुसख्या के शास्त्र उसका उल्लेख भी नही करते। क्या बात हो गई होगी? एक बार महावीर का नाम नहीं लेते। पक्ष की तो छोड़ दो, विपक्ष में भी कुछ नहीं कहते। प्रशंसा न करो, कम से कम निन्दा तो करते!

नही, उतना भी ध्यान न दिया। परिभाषा में हो न बैठा यह आदमी। परमात्मा की परिभाषा उनकी और थी। उन्होंने देखा था कृष्ण को मोरमुकुट बांधे, यह आदमी नग्न खड़ा था। इससे कही मेल नहीं बैठता था। उन्होंने

कृष्ण को देखा था बांसुरी बजाते। इस आदमी की अगर कोई बांसुरी थी, तो इतनी अदृश्य थी, कि किसी को दिखाई नहीं पड़ी। या इस आदमी के पास कोई बांसुरी ही न थी। यह आदमी उनकी भाषा में कहीं आया नहीं। सब पुराने संकेतों, कसौटियों पर कसा नही जा सका। तब महावीर चूक गये।

महावीर को जिन थोड़े से लोगों ने समझा, जिनकी प्यास थी, जिन्होंने पहचाना, जो बिना परिभाषा के पहचानने को राजी थे, वे वे ही लोग थे, जिनकी प्यास थी। अब वे दूसरी परिभाषा बना गये। अब उनके अनुयायी उस परिभाषा को ढो रहे हैं। अब बहुत अड़चन है। अगर वे मुझे बैठे इस कुर्सी पर देख लें, अड़चन है। महावीर कुर्सी पर कभी बैठे नहीं। यह आदमी गलत है। कपड़ा पहने देख लें, मुश्किल। क्योंकि महावीर तो नग्न थे। दिगम्बरत्व तो लक्षण है।

अभी तो मुझे वे ही लोग पहचान सकते हैं, जिनकी प्यास है। और खतरा उनके साथ भी यही रहेगा, कि मेरे जाने के बाद वे कोई परिभाषा बना लेंगे, जो दूसरों को उलझायेगी क्योकि फिर दुबारा कोई आता नही।

मेरी बात ठीक से समझ लो। जब तक तुम परिभाषा बनाते हो, आदमी चला जाता है। जब तुम्हारी परिभाषा बन कर तैयार हो जाती है, बिलकुल सुनिश्चित हो जाती है, तब दुबारा वैसा आदमी पैदा नही होता। धर्म की सारी विडम्बना यही है। इसलिए तुम कृपा करो, परिभाषायें मत पूछो। प्यास पूछो। अपनी प्यास टटोलो।

अगर प्यास न हो, धर्म की बात ही छोड़ दो। अभी धर्म का क्षण नही आया। अभी थोड़ और भटको। अभी थोड़ा और दुःख पाओ। अभी दुःख को तुम्हें मांजने दो। अभी दुःख तुम्हें और निखारेगा। अभी जल्दी मत करो। अभी बाजार में ही रहो। अभी मंदिर की तरफ पीठ रखो। क्योंकि जब तक तुम ठीक से पीडा से न भर जाओ, लाख बार मंदिर आओ, आना न हो पायेगा। हर बार खाली हाथ आओगे, खाली हाथ लौट जाओगे।

मंदिर तो उसी दिन आओगे, जिस दिन बाजार की तरफ पीठ ही हो जाये। तुम जान ही लो कि सब व्यर्थ है। उस दिन तुम बाजार में बैठे-बैठे पाओगे, मंदिर ने तुम्हें घेर लिया। उस दिन तुम्हे गुरु के पास न जाना पडेगा, वह तुम्हारे द्वार पर आ कर दस्तक देगा। अपनी प्यास को परख लो।

मगर बड़ा मजा है, लोग प्यास का सवाल ही नही उठाते; पूछते हैं, सद्गुरु की परीक्षा क्या? तुम अपनी परीक्षा कर लो। तुम तक तुम्हारी परीक्षा काफी है; उससे आगे मत जाओ। तुम्हें प्रयोजन भी क्या है सद्गुरु से? तुम अपनी प्यास को पहचान लो। अगर प्यास है, तो तुम जल की खोज कर लोगे

—करनी ही पड़ेगी मरुस्थल में भी आदमी जल खोज लेता है, प्यास होनी चाहिए।

और प्यास न हो, तो सरोवर के किनारे बैठा रहता है। जल दिखाई ही नहीं पड़ता। जल के होने से थोड़े ही जल दिखाई पड़ता है! भीतर की प्यास होने से दिखाई पड़ता है।

कभी उपवास करके बाज़ार गये? उस दिन फिर कपड़े की दूकानें नहीं दिखाई पड़ती, सोने चांदी की दूकानें नही दिखाई पड़तीं, सिर्फ रेस्ट्रां, होटल! उपवास करके बाजार में जाओ, सब तरफ से भोजन की गंध आती मालूम पड़ती है, जो पहले कभी नही मालूम पड़ी थी। सब तरफ भोजन ही बनता हुआ दिखाई पड़ता है। वह पहले भी बन रहा था, लेकिन तब तुम भूखे न थे।

भूखे को भोजन दिखाई पड़ता है।

प्यासे को पानी दिखाई पड़ता है।

साधक को सद्‌गुरु दिखाई पड़ जाता है।

दूसरा प्रश्न: मोक्ष के पश्चात् कभी जन्म नही होता, इसकी क्या गारन्टी है?

कोई गारन्टी नही है। तुम किसी बैंक मे आ गये!

इसको मैं कहता हूँ, लोभ से भरा हुआ मन। ऐसा मन साधक नही हो सकता। गारन्टी की बात क्या है? कौन किसको गारन्टी देगा? और वह भी मोक्ष के बाद जन्म नही होता, इसकी गारन्टी? अगर मैं लिख कर भी दे दूँ, तो भी किस काम पड़ेगी? फिर तुम मुझे कहाँ खोजोगे? तुम मेरी लिखी चिट्ठी कहां ले जाओगे?

मोक्ष के बाद दुबारा जन्म नही होता इसकी गारन्टी चाहिए—क्यो? क्यों कि यदि करोड़ों वर्षों के बाद नई सृष्टि में जन्म लेना होता है, तो इस मोक्ष का फायदा ही क्या?

इसको मैं कहता हूँ, लाभ और लोभ की दृष्टि।

साधना का जन्म ही शुरू से गलत हो गया। यह बच्चा मरा ही पैदा हुआ। अब तुम इसको कितना ही सजाओ, संवारो, कितने ही बहुमूल्य वस्त्रों से रखो, दुर्गन्धि आयेगी। यह बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ। यह तो गर्भपात हो गया। साधक पैदा ही नही हो पाया। तुम दुकानदार ही रहे, बाज़ार में ही रहे।

मंदिर तो बाजार न आ पाया, तुम बाजार को मंदिर में ले आये। तुम गारन्टी पूछते हो; कोई गारन्टी नही है।

और साधक गारन्टी पूछता ही नही। साधक असल मे कल की बात ही नहीं उठाता। साधक कहता है, आज काफी है। यह क्षण पर्याप्त है। इस क्षण में अगर मै मुक्त हूँ, तो......

इस बात को थोड़ा समझने की कोशिश करो। अगर इस क्षण में मै मुक्त हूँ, तो दूसरा क्षण पैदा कहाँ से होगा? इसी क्षण से पैदा होगा। क्षण में से क्षण लगते हैं। जैसे गुलाब पर गुलाब का फूल लगता है, ऐसे मुक्त क्षण में मुक्ति का फूल लगता है। गुलाम क्षण मे गुलामी का फूल लगता है। तुम अगर आज गुलाम हो, तो कल भी गुलाम रहोगे। आज का दिन तुम्हारी गुलामी को और मजबूत कर जायेगा। कल तुम और ज्यादा गुलाम हो जाओगे, परसों और ज्यादा गुलाम हो जाओगे।

अगर आज तुम मुक्त हो, तो कल आयेगा कहाँ से? कल घड़ी मे से थोडे ही आता है! कल तो तुम्हारे जीवन मे से ही आता है। तुम्हारा कल, तुम्हारा कल है; मेरा कल मेरा कल होगा। उतने ही समय है, जितने लोग हैं। समय कोई एक थोड़े ही है। मेरे समय मे और तुम्हारे समय मे क्या नाता है, क्या सम्बन्ध है? तुम्हारा समय तुम्हारे भीतर से निकल रहा है।

जो आदमी सुबह क्रोध से भरा था, उसकी दुपहर में क्रोध की छाया होगी। जो आदमी सुबह प्रार्थना किया है, पूजा किया है, अहोभाव से भरा था, उसकी दुपहर पर अहोभाव की भनक, धुन, सुगन्ध होगी। तुम्हारा क्षण तुम्हारे ही भीतर से उग रहा है। क्षण ऐसे लगता है तुममें, जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। कल की बात ही क्या करनी है? अगर आज का क्षण मेरा मुक्त है, तो वही छिपी है गारन्टी! क्योंकि कल का क्षण आयेगा कहाँ से? इसी क्षण से निकलेगा—और भी मुक्त होगा। क्योंकि इतना समय मुक्ति के लिए और भी मिल चुका होगा। फिर परसों उस क्षण से निकलेगा।

इसलिए हम कहते है, मोक्ष से कोई वापिस नही आता। क्योंकि मोक्ष बड़ा होता जाता है, बढ़ता जाता है; वापिस कैसे लौटोगे? वापिस तो वही लौटता है, जिसकी गुलामी बढ़ती जाती है।

ऐसा हुआ, यूनान में एक बहुत अद्भुत फकीर हुआ डायोजनीज। उसने सब त्याग कर दिया था, लेकिन ऐसे वह एक बड़े रईस और कुलीन घराने से आया था। सब छोड़ दिया था, लेकिन कभी अपना काम अपने हाथ से तो किया न था, तो एक गुलाम बचा रखा था। एक नौकर, जो उसकी देखभाल कर देता,

सेवा-टहल कर देता। ऐसे वह सन्यासी हो गया था सब छोड़ कर; सिर्फ एक गुलाम बचा लिया था। पुरानी आदत थी, अपना काम कभी किया न था। बिस्तर कौन लगाता, भोजन कौन बनाता? तो एक नौकर रख छोड़ा था।

एक दिन वह नौकर भाग गया। आखिर नौकर को रख छोड़ना आसान मामला नहीं है। जब उस नौकर ने देखा, कि अब यह डायोजनीज बिलकुल फकीर हो गया है, तो यह उसको रोक भी कैसे सकेगा? इसके पास कुछ भी रोकने को भी नहीं बचा है। तुम अपने नौकर को रोक पाते हो क्योंकि वहाँ पुलिस है, कानून है, अदालत है। वे सब रक्षा कर रहे है। नहीं तो नौकर भाग जाय, तुम क्या करोगे? अब यह आदमी अकेला जंगल में था, नौकर भाग गया।

दूसरे फकीर जो जंगल में साधना मे रत थे, उन्होंने कहा, कि पीछा करो। यह बात ठीक नहीं है। इस नौकर को दंड देना उचित है।

लेकिन डायोजनीज ने कहा, कि मैं सोचता हूँ कि अगर नौकर मेरे बिना जी सकता है और मैं उसके बिना नहीं जी सकता, तो कौन नौकर है, कौन मालिक है, यह जरा संदिग्ध हो जाता है। दास मेरे बिना जी सकता है, उसे मेरी कोई जरूरत नहीं और मैं दास के बिना नहीं जी सकता? तो मैं दासानुदास हो गया। नहीं, अब यह भूल मैं न करूँगा। अच्छा हुआ, कि वह भाग गया। अब वह आये भी, तो उसे हाथ जोड़ लूँगा।

यह आदमी मुक्ति की तरफ एक कदम रख रहा है। इसका कल भी तो इसी से निकलेगा।

तब उसके पास सिर्फ एक भिक्षापात्र बचा। एक दिन उसने देखा एक कुत्ते को पानी पीते झरने पर, तो उसने सोचा यह कुत्ता तो मुझसे ज्यादा मुक्त है। यह भिक्षापात्र तो मुझे ढोना पड़ता है और अगर कुत्ता बिना भिक्षापात्र के रह लेता है, तो मैं आदमी हो कर न रह सकूं? कुत्ते से गई बीती दशा हो गई। उसने भिक्षापात्र वही छोड दिया। वह हाथ से ही पानी पीने लगा। वह हाथ में ही भिक्षा लेने लगा। मुक्ति से दूसरा क्षण निकल आया। दृष्टि!

सिकन्दर जब भारत आ रहा था, तो इस फकीर को मिला था। तो उस फकीर ने सिकन्दर से कहा था, तू व्यर्थ परेशान मत हो। तू किसलिए दुनिया जीतना चाहता है? सिकन्दर ने कहा, ताकि मैं आनन्द से विश्राम कर सकूँ। डायोजनीज हँसने लगा जोर से। वह पहाड़, नदी उसकी हँसी से गूंज उठी होगी। सिकन्दर थोड़ा हतप्रभ हुआ। उसने कहा, मैं समझा नहीं; इसमें हँसने की क्या बात है?

डायोजनीज ने कहा, कि हँसने की बात है। देखो, बिना दुनिया को जीते मैं आराम कर रहा हूँ, तो तुम दुनिया को जीत कर आराम करोगे यह मेरी समझ में नहीं आता। अगर आराम ही करना है, तो अभी क्या बिगड़ा है? यह नदी काफी बड़ी है और रेत का घाट बहुत बड़ा है। इस में मेरे लिए भी जगह है, तुम्हारे लिए भी जगह है। सारी दुनिया भी आ जाय, तो विश्राम कर सकती है। तुम लेट जाओ। सुबह कितनी सुन्दर है! कहाँ जाते हो?

डायोजनीज लेटा था नग्न, सुबह धूप ले रहा था। कहते हैं, सिकन्दर ईर्ष्या से भर गया था डायोजनीज की स्वतन्त्रता को देख कर। सिकन्दर ने कहा था, अगर परमात्मा से दुबारा मुझे जन्म लेने का मौका मिला तो कहूँगा इस बार मुझे सिकन्दर मत बना, डायोजनीज बना दे। लेकिन अभी तो जाना होगा। अभी तो यात्रा अधूरी है, संसार जीतने को पड़ा है। लेकिन तुम्हारी बात याद रखूँगा डायोजनीज, तुम्हें भूलूँगा नहीं। तुम्हारे लिए कुछ करना हो, तो मुझे कहो। तुम जो कहोगे, करवा दूंगा। मैं खुश हूँ।

डायोजनीज ने कहा, ज्यादा से ज्यादा तुम इतना कर सकते हो, कि धूप छोड़ कर खड़े हो जाओ। और न कुछ चाहिए, न कोई जरूरत है। सुबह सर्द है और मैं धूप का मजा ले रहा हूँ। तुम नाहक बीच में खड़े हो।

और इतना तुमसे कहे देता हूँ, कि कोई भी संसार को लौट कर कभी विश्राम नहीं कर पाया। जिसने भी विश्राम किया है, उसने इसी क्षण शुरू किया है। क्योंकि हर क्षण इस क्षण से पैदा होता है।

तुम कहते हो, कल करेंगे। आज तुम कुछ तो करोगे? तुम जो करोगे, उससे तुम्हारा कल पैदा होगा। तुम कहते हो, आज तो दूकान कर लेने दो, फिर कल पूजा कर लेंगे। लेकिन कल आयेगा कहाँ से? आज की दुकानदारी से ही आयेगा। फिर पूजा कैसे पैदा होगी? उससे दुकानदारी ही पैदा होगी। एक दिन और बीत गया निद्रा में, निद्रा और मजबूत हो गई।

तुम यह पूछो ही मत, कि मोक्ष के बाद आना होता है? मोक्ष का अर्थ ही यह है, कि जिसमें लौटने का उपाय नहीं रह जाता। मोक्ष का अर्थ क्या है, तुम समझे ही नहीं; इसलिए इस तरह का सवाल उठता है। मोक्ष का अर्थ है, वह व्यक्ति जिसकी अब कोई वासना न रही। लौटता है आदमी वासना के कारण।

थोड़ा समझो: एक बच्चा स्कूल में आता है। और वह स्कूल के प्राचार्य से कहेगा, कि अगर पास हो जाऊँगा, तो मुझे दुबारा तो स्कूल नहीं आना पड़ेगा? तो प्राचार्य कहेगा, कि अगर तुम उत्तीर्ण हो गये तो तुम आना भी चाहो, हम

तुम्हें भीतर न घुसने देंगे। क्योंकि इस स्कूल का उपयोग ही इतना है, कि तुम उत्तीर्ण हो गये, बात खत्म हो गई। अगर उत्तीर्ण हुए लोग यहाँ आने लगें, तो छोटे बच्चों का क्या होगा? वे कहाँ जायेंगे?

ऐसे ही भीड़-भड़क्का बहुत है। उत्तीर्ण आदमी को तो आने का कोई सवाल नहीं रहा। लेकिन जो असफल हुआ है, उसे वापिस लौटना पड़ता है। संसार एक प्रशिक्षण है परमात्मा को पाने का। जिसने पा लिया, बात खत्म हो गई, प्रशिक्षण पूरा हो गया। लौटने का सवाल ही नहीं उठता।

तुम्हारे मन में उठता है, क्योंकि तुम्हारा वह जो कृपण और लोभी मन है, वह हर चीज़ को पहले से मजबूत और पक्का कर लेना चाहता है; तब कदम उठाओगे तुम। जब तक कि तुम्हें कोई गारन्टी न मिल जाय, तब तक तुम ध्यान न करोगे। तुम्हारी इस गारन्टी की आकांक्षा ने ही दुनिया में बहुत उपद्रव खड़ा किया है। तब न मालूम कितने तरह के चालाक लोग तुम्हें गारन्टी देने के लिए तैयार हो गये हैं। तुम जो माँगते हो, उसको कोई न कोई तो पूर्ति करने के लिए तैयार हो जायेगा।

मैं सूरत मे था, तो एक सज्जन ने मुझे आ कर कहा, कि उनका धर्मगुरु दऊदी बोहरा लोगों को चिट्ठी लिख कर देता है भगवान के नाम, कि इस आदमी ने एक लाख रुपया दान किया है, यह बड़ा अच्छा आदमी है, इसकी साज-सम्हाल रखना, ढंग से स्वागत वगैरह करवाना। कुछ लिख दी चिट्ठी भगवान के नाम। और उस चिट्ठी को वह आदमी जब मरता है, तो उसकी छाती पर रख कर और कब्र मे रख दिया जाता है।

तुम गारन्टी माँगते हो, देनेवाले मिल जाते है। मगर कैसी मूढ़ता है! वह आदमी भी यही पड़ा रह जाता है, वह चिट्ठी भी यहीं पड़ी रह जाती है। लेकिन लौट कर इस धर्मगुरु से अदालत मे लड़ने का भी तो कोई उपाय नही है। कोई कभी लौटता नही। कोई कभी शिकायत नही करता, कि चिट्ठी काम नहीं आई। यह चिट्ठी बेकार है। न कोई कभी लौट सकता है, न कोई मुकदमा हो सकता है। यह चालाकी और शोषण जारी रहता है।

तुम जब तक माँगोगे, देनेवाले मिल जायेंगे। दोष उनका नही है, दोष तुम्हारा है।

और तुम पूछते हो, फायदा क्या है अगर फिर लौटना पड़ा? तुम जब भोजन करते हो तब तुम यह नहीं पूछते कि कल फिर भोजन करना पड़ेगा, फायदा क्या है? तुम जब पानी पीते हो तब तुम नही पूछते कि फिर पानी

पीना पड़ेगा, फायदा क्या है? तुम जब साँस भीतर लेते हो तब तुम नहीं कहते, क्या फायदा? फिर बाहर निकालनी पड़े, फिर भीतर करनी पड़े, फायदा क्या?

जीवन में फायदे की बात ही पूछना नासमझी की है। जीवन कोई धंधा थोड़े ही है! फायदे का दृष्टिकोण ही, भूल-भरा है। उससे ही तो तुम भटक रहे हो। जहाँ जाना चाहिए वहाँ नहीं पहुँच पाते क्योंकि वहाँ जाने में कोई फायदा नहीं दिखाई पड़ता। और जहाँ फायदा दिखाई पड़ता है, वह तुम्हारी नियति नहीं।

मैंने सुना है, कि एक मारवाड़ी सेठ स्टेशन आया। उसने टिकट दफ्तर में खड़े हो कर पूछा, कि मुझे रामपुर जाना है, टिकट दे दो। उस टिकट बाबू ने कहा, कि रामपुर तीन हैं। एक मध्य प्रदेश में, एक उत्तर प्रदेश में, एक बिहार में है, कौन से रामपुर जाना है? सेठ ने कहा, इसमे भी कोई पूछने की बात है? जहाँ की टिकिट सबसे कम हो!

फायदे का दृष्टिकोण---कहाँ जाना है, इससे कुछ लेना-देना ही नहीं। तो यह पहुँचेगा तो रामपुर, लेकिन उस रामपुर पहुँच जायेगा, जहाँ जाना ही नहीं था। फायदे को पूछ कर गये तो तुम जीवन को चूक जाओगे।

क्योंकि यह जो अस्तित्व है, यह खेल है, यह लीला है। यहाँ फायदे का सवाल नहीं है। यह आनन्द उत्सव है। यहाँ कोई साध्य नहीं है। यहाँ होने में ही आनन्द है। अगर तुमने पूछा, कि क्यों साँस लें, तो आत्महत्या करनी पड़ेगी। क्योंकि कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता, क्यों साँस ले। क्यों पानी पीयें, फायदा क्या है? क्योंकि फिर पीना पड़ेगा। फिर फिर पीना पड़ेगा---मत पीयो!

असली सवाल फायदे का है ही नहीं। असली सवाल तो जीवन के आनन्द को अनुभव करने का है। जब कंठ में प्यास होती है और तुम पानी पीते हो, तो एक तृप्ति उतरती है। जब तुम भूखे होते हो और भूख निश्चित जलती है, तुम्हारी जठराग्नि उठती है, तब तुम भोजन करते हो, तब एक गहन तृप्ति होती है। जब तुम भीतर श्वांस ले जाते हो, तो नया प्राण तुम्हारे जीवन में दौड़ता है। जब तुम ध्यान करते हो, तो एक नई समाधि तुम्हे चारों तरफ से घेर लेती है।

ऐसा नहीं है, कि कल नहीं करनी पड़ेगी, तभी तुम आज करोगे। तब तो तुम कभी भी न करोगे। जीवन का प्रत्येक पल उसकी समग्रता में जीने के लिए है। यहाँ लक्ष्य तो कुछ भी नहीं है। यह संसार कहीं जा नहीं रहा है। यह संसार वहाँ है ही, जहाँ इसे पहुँचना है। इसलिए केवल वे ही लोग सत्य

को उपलब्ध हो पाते हैं, जिनके जीवन में साधन ही साध्य हो जाता है। इस सूत्र को तुम जितनी गहराई मे उतार सको उतार लो।

केवल वे पहुँच जाते है परमात्मा तक, केवल वे ही मुक्त हो पाते है, जिनके जीवन मे साधन ही साध्य हो जाता है।

इसका मतलब? इसका मतलब, कि मंजिल की वे बात ही नही करते। वे कहते है, राह पर चलना ही इतना सुखद है, कौन फिक्र करता मंजिल की! वे इसकी बात ही नही करते, कि कल क्या मिलेगा; वे कहते है, आज इतना मिला है, कल की बात ही क्यो उठानी? आज इतना आपूर मिला है, कि नाच लें, अनुगृहीत हो लें।

ऐसे व्यक्ति को कल और ज्यादा मिलता है। उसके द्वार बड़े होते जाते है। एक दिन सारा आकाश उसके हृदय में समा जाता है। एक दिन अनन्त उसकी सीमा में उतर आता है। एक दिन उसकी बून्द मे पूरा सागर छलांग ले लेता है।

तुम दुकानदार की नजर से परमात्मा की तरफ मत आना। अच्छा है, तुम दुकानदार ही रहो। अच्छे दुकानदारों की वैसे भी जरूरत है। बुरे साधक होने की बजाय अच्छा दुकानदार होना बेहतर है। लेकिन जब साधक होने आओ, तो समझ कर आओ।

साधक की दुनिया का गणित ही उलटा है। वहाँ साधक इसलिए कुछ नही करता, कि इससे मिलेगा। वहाँ साधक इसलिए कुछ करता है, करने में ही मिलता है। करना और मिलना एक साथ, एक ही क्षण मे समा जाते हैं। मंजिल और मार्ग एक साथ। मार्ग ही मंजिल हो जाता है।

तुमने प्रार्थना की—तुम दो तरह से कर सकते हो। एक तो दुकानदार की प्रार्थना है, कि वह कहता है प्रार्थना कर रहा हूँ, नारियल चढ़ाया है, ख्याल रखना। कही ऐसा न हो, कि धोखा दे जाओ। मुकदमा जिता देना। लड़के को पास करा देना। पत्नी बीमार पड़ी है, ठीक कर देना।

पाँच आने का सड़ा नारियल ले आये है, परमात्मा पर बड़ी कृपा कर रहे है! मंदिरों में कोई अच्छा नारियल चढाता ही नही। मंदिरों के पास नारियल की विशेष दुकान होती है। उसमे सड़े नारियल ही बिकते है। और ऐसे नारियल जो लाखों बार चढ़ाये जा चुके है, वे फिर वापिस आ जाते हैं। इसलिए दुनिया में नारियलों के दाम बढ़ते जाते है लेकिन मंदिर के पास की दूकान पर दाम वही रहते है। कोई जरूरत ही नही दाम बढ़ाने की। क्योंकि वे नारियल

कोई खा नहीं सकता। कोई काम के नहीं हैं, किसी मतलब के नहीं हैं। वे सिर्फ चढ़ाने योग्य हैं। परमात्मा को तुम चढ़ाते तब हो, जब वह किसी काम का नहीं होता। वे चढ़ते हैं बारबार, सुबह फिर बिक जाते हैं दुकान पर। फिर चढ़ जाते हैं, फिर दुकान पर आ जाते है।

तुम एक सड़ा नारियल चढ़ा देते हो। तुमने बड़ी परमात्मा पर कृपा की। अब तुम कल घर में बैठ कर रास्ता देखोगे, कि परिणाम क्या होता है? तुम समझे ही नहीं प्रार्थना का अर्थ।

जहाँ तक माँग है, वहाँ तक प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना चढ़ाना मात्र है, माँगना नहीं है। प्रार्थना में फल की आकांक्षा नहीं है। अगर फल की आकांक्षा है, तब वह व्यवसाय है, प्रार्थना नही। तुम गये, यह तुम्हारी खुशी थी। यह तुम्हारा आनन्द था, कि तुमने चढ़ाया। तुम परमात्मा को थोड़ी भेंट करके आये, इससे तुम यह मत समझना, कि परमात्मा तुम्हारे प्रति अनुगृहीत हुआ। उसने तुम्हें इतना दिया है, उसमें से तुम एक कण जाकर वापिस लौटा आये और तुम सोचते हो परमात्मा अनुगृहीत हो। तुमने चढ़ाया, यह तुम्हारे अनुग्रह की स्वीकृति होनी चाहिए, कि मैं धन्यभागी हूँ, कि तूने मुझे इतना दिया। थोड़ा सा चढ़ा जाता हूँ, ज्यादा मेरी सामर्थ्य नही है।

वास्तविक प्रार्थना करनेवाला हमेशा अनुभव करेगा, कि जितना मुझे चढ़ाना था उतना मैं चढ़ा न पाया। जो मुझे देना था, वह मैं दे न पाया। जो मुझे बाँटना था, वह मैं बाँट न सका। वह हमेशा इस पीड़ा से भरा रहेगा, कि मिला मुझे बहुत, दे मैं कुछ भी न पाया। झूठा प्रार्थी समझेगा, कि मैंने एक नारियल चढ़ाया, अब इसका फल होना चाहिए। अगर फल न हो, तो परमात्मा का होना न होना तुम्हारे सड़े नारियल पर निर्भर है। अगर फल न हुआ, तो तुम कहोगे परमात्मा नहीं है। क्योंकि सड़ा नारियल काम न आया। अगर फल हुआ तो—

एक आदमी मेरे पास आया। उसने कहा, 'मैं नास्तिक था, लेकिन अब मैं आस्तिक हो गया हूँ।"

मैंने कहा, "इतनी आसानी से कोई नास्तिक से आस्तिक नहीं होता। तू पूरी कहानी बता। जरूर कोई गड़बड़ हो गई। क्योंकि मुश्किल से कभी हजारों साल में कोई नास्तिक, आस्तिक होता है। नास्तिक से आस्तिक होना तो बस, मोक्ष पा लेना है। आस्तिक है कहाँ? हजारों साल में कभी किसी आस्तिक के दर्शन होते हैं। तब पृथ्वी पर स्वर्ग उतरता है। तू आस्तिक हो गया? जरूर कहीं कुछ भूल हो गई है। क्या मामला है?

उसने कहा, कि मेरे लड़के की नौकरी नहीं लग रही थी, तो मैं जाकर अल्टीमेटम दे आया। अल्टीमेटम! परमात्मा को! कि अगर पन्द्रह दिन के भीतर नौकरी न मिली तो समझ ले, कि फिर तुझे बिलकुल नहीं मानूंगा। बस यह आखिरी हिसाब है। अगर मिल गई नौकरी, सदा तेरी भक्ति करूँगा।

और नौकरी मिल गई इसलिए वह आदमी आस्तिक हो गया। मैंने उससे कहा, कि अब दुबारा अल्टिमेटम मत देना, नहीं तो नास्तिक हो जायेगा। संयोगवशात् यह नौकरी मिल गई है, तेरे अल्टीमेटम के भय के कारण नहीं, कि भगवान को तू डरा आया था तो वे भयभीत हो कर कँप गये, कि नहीं देंगे नौकरी, तो तू मानेगा नही। ऐसा दीन-हीन भगवान! क्या कोई राजनीतिक नेता है, कि तुम्हारी वोट पर निर्भर है? दो कौड़ी का ऐसा भगवान, जो तुम्हारी अल्टीमेटम से डर जाय। अब तू दुबारा मत देना, तो आस्तिकता तेरी बनी रहेगी। क्योंकि इतनी झीनी चादर है तेरी आस्तिकता की, जरा सी खरोंच में कट जायेगी और नास्तिक बाहर आ जायेगा।

मगर वह न माना, क्योंकि लोभी कैसे मान सकता है? सफल हो गया था। तब पत्नी बीमार हुई, उसने फिर जाकर वही किया। क्योंकि एक दफा कारगर हो गई बात। और पत्नी मर गई, वह ठीक न हुई। कोई दो-तीन साल बाद यह घटना घटी। वह मेरे पास आया। उसने कहा, आपने ठीक कहा था; मैं महानास्तिक हो गया हूँ।

मैंने कहा, तुझे जो होना हो, होता रह; लेकिन यह तेरे मन का ही खेल है। न तू आस्तिक हुआ कभी, न तू कभी नास्तिक हुआ। तेरी नास्तिकता आस्तिकता सब सौदा है। यह तेरी कोई जीवन-दृष्टि नही है, तेरा कोई दर्शन नहीं है, तेरी कोई अनुभूति नही है। तू नाहक ही आस्तिक हो रहा है, नास्तिक हो रहा है। तू अकेले ही खेल खेल रहा है। इसमे परमात्मा भागीदार नही है। अब तू नास्तिक ही रहना। अब दुबारा भूल मत करना। नही तो फिर आस्तिक हो जायेगा और ऐसे ही—"सुबह होती, शाम होती, ऐसे ही उम्र तमाम होती"—और तू कभी कुछ भी न हो पायेगा।

लोभ और लाभ की दृष्टि का परमात्मा से कभी सम्बन्ध नहीं जुड़ता। वहाँ तुम जाना मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में, लेकिन प्रार्थना ही तुम्हारा अहोभाव हो। प्रार्थना अपने आप में अन्त हो। तुम इसलिए प्रार्थना करना, कि प्रार्थना करना ऐसा महासुख है। उसके पीछे जरा सी भी रेखा माँग की न हो, तभी तुम्हें स्वाद लगेगा। तभी तुम्हें पहली दफा पता चलेगा, ध्यान क्या है।

मेरे पास लोग आते हैं, निरन्तर वे कहते हैं, कि आप ध्यान समझाते हैं। फायदा क्या, लाभ क्या, इससे क्या मिलेगा?

उनसे मैं कहता हूँ, मिलेगा तो कुछ भी नहीं; बहुत कुछ खो जायेगा। तुम्हारी चिन्ता, तुम्हारी बेचैनी, तनाव, तुम्हारी दौड़, महत्त्वाकांक्षा, ईर्ष्या, यह सब खो जायेगा और इसके साथ तुम्हारी सारी दुनिया का फैलाव। क्योंकि इसी पर तुम्हारा सारा तम्बू तना है—इन्हीं खम्भों पर। वह सब गिर जायेगा। मटिया-मेट हो जाओगे, अगर ध्यान किया।

ध्यान करने के लिए जुआरी चाहिए, दुकानदार नही। वहाँ दाँव पर लगा दिया सब; माँगना क्या है? और यह मैं तुमसे कहता हूँ, जो नहीं माँगता, उसे मिलता है, जो माँगता है, वह चूक जाता है। यह उल्टा गणित है।यहाँ जो माँगेगा, वह खाली हाथ लौट जायेगा। यहाँ जो बिना माँगे आयेगा, उसका प्राण-प्राण, रोआँ-रोआँ भर जायेगा।

तीसरा प्रश्न : क्या कारण है कि सद्गुरु के शिष्य तो थोड़े होते हैं लेकिन असद्गुरु के इर्द-गिर्द अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है?

यह बिलकुल स्वाभाविक है। ऐसा होना ही चाहिए। क्योंकि सद्गुरु को कितने लोग पहचान सकेंगे? वही—जिनकी प्यास है; जिनके लिए जीवन व्यर्थ हो गया; जिनके लिये जीवन संताप और स्वप्न हो गया।

असद्गुरु के पास भीड़ इकट्ठी होगी। क्योंकि असद्गुरु भीड़ की आकांक्षा को तृप्त कर रहा है। तावीज बाँध रहा है, राख निकाल रहा है, जादू कर रहा है। मूढ़ बड़ी संख्या में वहाँ इकट्ठे हो जायेंगे। वही वे चाहते हैं। उनकी आकांक्षायें जो तृप्त कर रहा है, वहाँ वे इकट्ठे होंगे।

सद्गुरु तो छीन लेगा। सद्गुरु तो तुम्हें मिटायेगा। तो जो दादू ने कहा है, वह निशाना लगा-लगा कर तीर छोड़ेगा। वह तुम्हें मिटायेगा, वह तुम्हें मार ही डालेगा। क्योंकि तुम मिटोगे, तभी तुम्हारी राख पर परमात्मा का आविर्भाव है। तुम रोग हो। वह तुम्हे सहारा न देगा, वह तुम्हें गिरायेगा। वह तुम्हें जड़ों से खोद डालेगा।

तो सद्गुरु के पास तो वही आयेगा जो मरने को तैयार है। सद्गुरु यानी मृत्यु; मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु—महामृत्यु। क्योंकि मृत्यु के बाद तो तुम फिर पैदा हो जाओगे। लेकिन अगर सद्गुरु की मृत्यु में तुम डूब गये, तो फिर तुम्हारा लौटना नही। फिर दुबारा तुम पैदा नहीं हो सकोगे।

इसलिए बहुत थोड़े से हिम्मतवर लोग वहाँ इकट्ठे होंगे। सब का वहाँ काम भी नहीं है। बच्चों की वहाँ जरूरत भी नहीं है। अभी जो खिलौनों से खेल रहे हैं, उनका वहाँ क्या प्रयोजन?

लोग खिलौनों से ही खेलते रहते हैं जिंदगी भर। बचपन में छोटी सी कार से खेलते हैं, चाबी भर के चलाते हैं, फिर बड़े हो जाते हैं, तो बड़ी कार पर खेल जारी रहता है। बचपन में छोटे गुड्डे-गुड्डियों की शादी करते हैं, बड़े हो जाते हैं, तो राम-लीला करते हैं, राम-सीता की बारात निकालते हैं, खेल जारी है। छोटे बच्चे होते हैं, कंकड़ पत्थर इकट्ठे करते हैं। बड़े हो जाते हैं, हीरे-जवाहरात इकट्ठे करते हैं—कंकड़ पत्थर ही हैं आखिरी हिसाब में। खेल जारी रहता है। छोटे बच्चे सिगरेट के डब्बे, माचिस के डब्बे, टिकटें इकट्ठी करते रहते हैं। बड़े हो गये, नोट इकट्ठे करते रहते हैं—मामला एक ही है। सारा खेल खिलौनों का है।

सद्गुरु के पास तो केवल वही आ सकता है, जो प्रौढ़ हो गया, जिसने सारे खिलौने फेंक दिए और जिसने कहा, बहुत हो चुकी नासमझी। अब जागने का क्षण आ गया। निश्चित, जागने में खतरा है। क्योंकि तुम्हारे सब सपने टूट जायेंगे। सपनों में एक सुरक्षा है। तुम्हारे सपने—उनमें मधुर सपने भी हैं। माना, कि दुःखद सपने भी हैं, लेकिन वे सब संयुक्त हैं। अगर दुःखद सपने तोड़ने हों, तो सुखद सपने भी टूट जायेंगे। अगर जागना है, तो दुःख, सुख दोनों से जागना होगा।

तुम भी चाहते हो जागना, लेकिन चाहते हो, कि सुखद सपना तो बरकरार रहे, सिर्फ दुःख टूट जाय। तुम भी चाहते हो जागना, लेकिन बस, दुःख छूटे, सुख न छूट जाय। तो तुम असद्गुरु के पास इकट्ठे हो जाओगे। वहाँ भीड़ लगेगी।

लेकिन सद्गुरु के पास तो सुख भी छूटेगा, दुःख भी छूटेगा; तभी तो शान्ति का जन्म होगा। जब सारे द्वन्द्व मिट जाते हैं, तभी तो निर्द्वन्द्व आकाश—तभी तो उस असीम के साथ सम्बन्ध जुड़ता है। तभी तो जैसा दादू कहते हैं, तार जुड़ते हैं। उसके पहले तो तार नही जुड़ते।

स्वभावतः, जहाँ तुम्हारी बीमारी ठीक करने के लिए कोई आश्वासन दिया जा रहा हो, मुकदमे जिताने का कोई भरोसा दिया जा रहा हो, धन पाने की कोई महत्वाकाँक्षा को पूरा करने की बात कही जा रही हो, वहाँ भीड़ इकट्ठी होगी। साधारण से लोगों से लेकर जिनको तुम असाधारण कहते हो, वे भी ऐसे लोगों के आसपास इकट्ठे होंगे। आशीर्वाद चाहिए तुम्हारी मूर्खताओं के लिए।

और जिन्दगी का नियम ऐसा है, कि अगर तुम भी आंख बन्द करके एक झाड़ के नीचे बैठ जाओ; और जो भी आये उसको आशीर्वाद देते जाओ, तो भी पचास प्रतिशत तो आशीर्वाद पूरे होने ही वाले हैं। इसलिए तुम्हें कोई

चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। तुम एक गधे को भी बिठाल दो सजा कर और वह भी बस हाथ उठा कर आशीर्वाद देता जाय बिना देखे, कौन आ रहा है, इससे कोई लेना-देना नहीं है।

जितने मरीज आयेंगे, उनमें से सीधे गणित में कम से कम पचास प्रतिशत तो ठीक होने वाले हैं, ज्यादा भी ठीक हो जायेंगे। क्योंकि सभी बीमारियाँ मार तो नहीं डालती हैं। डाक्टर भी इलाज थोड़े ही करता है, सिर्फ सहारा करता है। कहावत है पश्चिम में, कि अगर सर्दी-जुकाम हो जाय, तो बिना दवा के सात दिन में ठीक हो जाता है और दवा लो, तो एक सप्ताह में। दवा और न दवा का कोई बड़ा सवाल नहीं है। बीमारी तो सब ठीक हो जाती है। सभी बीमारियों में आदमी मर थोड़े ही जाता है! समय की बात है। बैठे रहो।

मुकदमे भी आखिर दो लोग लड़ेंगे मुकदमा, तो एक तो जीतेगा। और अक्सर ऐसा होता है, कि एक ही असद्गुरु के पास दोनों चले आते हैं-- हारनेवाला, जीतनेवाला; एक तो जीतेगा ही। और यह खेल जारी रहता है। जो पचास प्रतिशत सफल हो जाते हैं, तुम्हारे आशीर्वाद से, वे दुबारा लौट आते हैं फूलमालायें लेकर, और प्रचार कर आते हैं और पचास नासमझों को साथ ले आते हैं।

जो हार गये, वे किसी दूसरे गुरु की तलाश करते हैं। वे फिर तुम्हारे पास नही आते। वे भी कही न कहीं ठहर जायेंगे। कही न कहीं, कभी न कभी तो जीतेंगे। वही ठहर जायेंगे। इसमें गुरु का कुछ लेना-देना नहीं है। यह सब खेल तुम्हारी नासमझी से चलता है।

लेकिन सद्गुरु के पास तुम्हारा कोई खेल नही चल सकता। भीड़ वहाँ इकट्ठी नही हो सकती। वहाँ तो खेल तोड़ने का ही आयोजन है।

इसलिए बहुत थोड़े से चुने हुए लोग, छंटे हुए लोग, जो सच में ही राजी हैं छलाँग लेने को, जो उस घड़ी में आ गये हैं, जहाँ कुछ रूपान्तरण आवश्यक हो गया है, अब जिनकी आकाँक्षा बाहर की नही है; अब जो क्रान्ति भीतर चाहते हैं, वे थोड़े से लोग ही वहाँ पहुँच सकते है।

और उन थोड़े से लोगों को भी बड़ी हिम्मत रहे, तो ही वहाँ टिक सकते हैं। अन्यथा वे भी भाग खड़े होंगे। क्योंकि सद्गुरु तुम्हे कोई सहारा नहीं देता टिकने का। वह तुम्हारे अहंकार की कोई तृप्ति नही करता। जिस अहंकार को मिटाना ही है, उसको किसी तरह का सहारा देना उचित नहीं है। तुम वहाँ अगर टिके, तो अपनी हिम्मत से ही टिकोगे। वह तो तुम्हारे पैरों के नीचे की जमीन खींचता चला जाता है।

तो थोड़े से दुस्साहसियों का काम है। पर वैसे ही दुस्साहसी जीवन के परम सत्य को उपलब्ध भी होते हैं। वह दुस्साहस करने योग्य है।

प्रश्न : मैं ध्यान से भयभीत हूँ। कृपया समझायें, कि इसके क्या कारण हो सकते है। और इस भय से कैसे छुटकारा हो?

ध्यान से भय तो स्वाभाविक है—होगा ही।

क्योंकि ध्यान का मतलब है: खोना, विलीन होना। ध्यान का अर्थ है: मिटना। तुम्हारी सारी परिचित भूमि विलीन हो जायेगी। तुम अपरिचित लोक में संचरण करोगे। तुम्हारे विचारों का जगत् पीछे छूट जायेगा, जो तुम्हारा घर रहा सदियों से, जन्मों से। तुम अचानक बेघरबार हो जाओगे। विचारों की छाया हट जायेगी, छप्पर टूट जायेगा। तुम शून्य में उतरोगे, निर्विचार में डूबोगे—खतरा है।

सागर में उतरने जैसा है छोटी सी डोंगी लेकर। दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता और यह किनारा छोड़ना पड़ रहा है। भय तो लगेगा ही। उत्ताल तरंगें हैं, हाथ में कोई नक्शा भी नहीं है। दूसरी तरफ पहुँचा है कोई, इसका पक्का भरोसा भी नही, क्योंकि लौटकर कोई आता नही।

ध्यान बड़ी गहन यात्रा है। इसलिए भय तो लगेगा। भय स्वाभाविक है। इसमें कुछ अस्वाभाविक नही है। लेकिन भय से उठना जरूरी है, अन्यथा यात्रा शुरू न होगी। क्या करें, जिससे भय छूट जाय?

पहली बात, जो तुमने कभी नही की है, वह भय को स्वीकार कर लेना। क्योंकि जितना तुम अस्वीकार करोगे, उतने ही तुम भयभीत होने लगोगे। भय को स्वीकार कर लेना है, कि स्वाभाविक है। मिटने जा रहे है, भय तो लगेगा। बड़े से बड़े युद्धक्षेत्र में जा रहे हैं, भय तो लगेगा। स्वेच्छा से मृत्यु में उतर रहे है। अपने हाथ से सीढ़ियाँ लगा रहे हैं, भय तो लगेगा।

स्वाभाविक है, स्वीकार कर लेना है। कँपते हुए पैर से जाना है। कँपते हुए पैर से जायेंगे। अगर तुमने स्वीकार कर लिया तो तुम पाओगे, कि जैसे-जैसे तुम स्वीकार करने लगोगे, वैसे-वैसे भय तिरोहित होने लगेगा। अगर तुमने अस्वीकार किया और तुम उससे लड़ने लगे और उसको दबाने लगे, तो तुम ज्यादा से ज्यादा भय को अपनी छाती में भीतर दबा सकते हो। लेकिन जो भीतर दबा है, वह तुम्हे हमेशा कँपायेगा। और जब भी ध्यान समाधि के करीब पहुँचने लगेगा, जब भी ऐसा लगेगा, कि अब मिटे, वह भय उभर कर खड़ा हो जायेगा। फूट पड़ेगा, विस्फोट हो जायेगा। वह तुम्हें भर देगा।

रोज यह घटता है। मेरे पास लोग आते हैं रोज, जो ध्यान ठीक से कर रहे हैं। एक न एक दिन वह घड़ी आती है, जहाँ उनको भय पकड़ता है। उन्होंने भय को दबा लिया। सुनी नहीं मेरी।

उसे स्वीकार कर लो, दबाओ मत। कँपो, कँपना है तो। किससे छिपाना है? परमात्मा के सामने खड़े हो जाना है नग्न, जैसे हो। अगर भयभीत हो, तो भयभीत। छिपाना किससे है? छिपाओगे कैसे? उससे छिपेगा भी कैसे?

तुम जैसे हो, अपने को वैसा ही प्रगट कर दो। कहो, कि मैं भयभीत हूँ। कहो, कि मैं कँप रहा हूँ। कहो, कि मैं डर रहा हूँ, लेकिन फिर भी आता हूँ। बावजूद भय के आता हूँ। भय रहेगा साथ-साथ, तो भी आता हूँ। डरूँगा, कँपूँगा, पैर कँपेंगे, ठीक पैर न पड़ेंगे, लेकिन आता हूँ। इससे आना बन्द नहीं करूँगा और भय को दबाऊँगा भी नहीं।

ये दो बातें समझ लेने जैसी हैं। जो लोग भय को नहीं दबाते, वे जाना बन्द कर देते हैं। जो लोग जाना चाहते हैं, वे भय को दबा लेते हैं। दोनों चूक जाते हैं। तुम जाना भी और भयभीत हो कर जाना। जब भय है, तो क्या कर सकते हो? धीरे-धीरे तुम पाओगे, कि जैसे-जैसे तुमने स्वीकार किया, वैसे-वैसे भय शान्त होने लगा।

स्वीकार एक अद्भुत कला है। कुछ चीजें स्वीकार करने से विलीन हो जाती हैं। कुछ चीजें अस्वीकार करने से बढ़ती हैं, मिटती नही। तुम स्वीकार करके देखो।

तुम अस्वीकार क्यो करना चाहते हो भय को? क्योंकि लगता है कि तुम और भयभीत! तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है। तुम्हारी प्रतिमा जो तुमने ही बनाई है, खण्डित होती लगती है। तुम बड़े बहादुर! कि अपने नाम के पीछे तुमने "सिंह" लगा रखा है, कि तुम लायन क्लब के सदस्य हो—शेर बच्चा! पागल हो। एक प्रतिमा बना रखी है, उस प्रतिमा को तुम बचाने की कोशिश कर रहे हो। जब तुम ध्यान के जगत् मे उतरोगे, तो तुम्हारा शेर कँपेगा। तुम्हारा सिंह एकदम रोने लगेगा। तब तुम चाहोगे, कि क्या करें?

दो ही उपाय हैं साधारणतः। या तो लौट जाओ वापिस दुनिया में, यह झंझट ही छोड़ो। तो वहाँ कम से कम तुम सिंह की तरह माने जाते हो। दबदबा है, दादा हो, लोग डरते हैं, कँपते हैं। तुम कभी कँपे? लोगों को कँपा देते हो। लौट जाओ वहीं। और या फिर दूसरा उपाय है, कि दबा लो, बाँध बाँध लो मुट्ठियाँ, सिकोड़ लो हृदय को, भींच लो दाँत और दबा लो भय को। मत कँपने दो शरीर को।

ये दो साधारण उपाय हैं; दोनों गलत हैं। लौट गये, तो तुम अपरिसीम सम्पत्ति से वंचित हो गये। घर के करीब आते-आते भटक गये। द्वार करीब था, खुलने के ही करीब था और तुमने मुँह मोड़ लिया।

आना पड़ेगा वापिस। कोई भी मंदिर के बाहर रह नहीं सकता सदा के लिए। क्योंकि बाहर तुम कितने ही भटको, कभी शान्त नहीं हो सकते। धर्म अन्तिम शरण है। वहाँ आना ही होगा। वही समर्पण है। वही शरण है। कितने ही भागो और कितने ही बचो, एक न एक दिन वापिस लौट आना पड़ेगा। तब वही सवाल खड़ा होगा। बेहतर है, आज ही निपट लो। कल पर क्या टालना!

और दूसरा अगर तुमने उपाय किया, कि दबा लिया, तो तुम पाओगे कि जैसे ही ध्यान की गहराई आयेगी, वैसे ही तुम्हारा दमन किया हुआ विस्फोट होगा। क्योंकि ध्यान की गहराई में आदमी शिथिल हो जाता है, रिलैक्स हो जाता है। जब तुम शिथिल होओगे, तो जो तुम दबाने के लिए उपाय कर रहे थे, वे भी शिथिल हो जायेंगे। उनके शिथिल होते ही जो तुमने दबाया है वह हुंकार के साथ उठेगा। वह तुम्हारे सारे भवन को नष्ट कर देगा। तुम फिर वापिस अपने को बाजार में पाओगे। और पहले से भी दयनीय दशा में पाओगे। क्योंकि अब सिंह होने का ख्याल भी नहीं पकड़ सकोगे। अब तो कँप गये, अब तो डर गये।

सूफियों की एक पुरानी कथा है, कि एक फकीर सत्य की खोज में था। उसने अपने गुरु से पूछा, कि सत्य कहाँ मिलेगा? उसके गुरु ने कहा, सत्य? सत्य वहाँ मिलेगा, जहाँ दुनिया का अन्त होता है।

तो उस दिन से वह फकीर दुनिया का अन्त खोजने निकल गया। कहानी बड़ी मधुर है। वर्षों चलने के बाद, भटकने के बाद, आखिर उस जगह पहुँच गया, जहाँ आखिरी गाँव समाप्त हो जाता था। और उसने गाँव के लोगों से पूछा कि दुनिया का अन्त कितनी दूर है? उन्होंने कहा, ज्यादा दूर नहीं है। बस यह आखिरी गाँव है। थोड़ी ही दूर जाकर वह पत्थर लगा है, जिस पर लिखा है, यहाँ दुनिया समाप्त होती है। मगर उधर जाओ मत।

वह फकीर हँसा। उसने कहा, हम उसी की तो खोज में निकले हैं। लोगों ने कहा, वहाँ बहुत भयभीत हो जाओगे। जहाँ दुनिया अन्त होती है, उस गड्ढ को तुम देख न सकोगे। मगर फकीर तो उसी की खोज में था, सारा जीवन गँवा दिया था। उसने कहा, हम तो उसी की खोज में हैं और गुरु ने कहा है, जब तक दुनिया के अन्त को न पा लोगे, तब तक सत्य न मिलेगा। तो जाना ही पड़ेगा।

कहते हैं, फकीर गया। गांव के लोगों की उसने सुनी नहीं। वह उस जगह पहुँच गया जहाँ आखिरी तख्ती लगी थी, कि यहाँ दुनिया समाप्त होती है। उसने एक आँख भर कर उस जगह को देखा, शून्य था वहाँ। कोई तलहटी न थी उस खड्ड में। आगे कुछ था ही नहीं।

तुम उसकी घबड़ाहट समझ सकते हो। वह जो लौट कर भागा, तो जो यात्रा उसने आगे जनम में पूरी की थी, वह कहते हैं, कि दिनों में पूरी हो गई। वह जो भागा, तो रुका ही नहीं। वह जा कर गुरु के चरणों में ही गिरा। तब भी वह कँप रहा था। तब भी वह बोल नहीं सक रहा था। बामुश्किल, उसको पूछा, कि मामला क्या है? हुआ क्या? वह गूंगे जैसा हो गया था। सिर्फ इशारा करता था पीछे की तरफ। क्योंकि जो देखा था, वह बहुत घबड़ाने वाला था।

गुरु ने कहा, नासमझ! मैं समझता हूँ। लगता है, तू दुनिया के अन्त पर पहुँच गया। तख्ती मिली थी, जिस पर लिखा था कि यहाँ दुनिया का अन्त है? उसने कहा, कि बिलकुल ठीक! मिली थी। उस तरफ तूने तख्ती के देखा, कि क्या लिखा था? उसने कहा कि उस तरफ? उस तरफ खाली शून्य था। मैं तो देख कर एक आँख और जो भागा हूँ, तो रुका ही नहीं कहीं। पानी के लिए नहीं, भूख के लिए नहीं। उस तरफ तो मैंने नहीं देखा।

उसने कहा, बस, वही तो भूल हो गई। अगर तू उस तरफ तख्ती के देख लेता, तो इस तरफ लिखा है, यहाँ दुनिया का अन्त होता है; उस तरफ लिखा है, यहाँ परमात्मा का प्रारम्भ होता है।

एक सीमा पूरी होती है, दूसरी सीमा शुरू होती है। परमात्मा निराकार है। शून्य में उसी निराकार के करीब तुम पहुँचोगे।

यह कहानी बड़ी अच्छी है, बड़ी कीमती है।

ऐसा दुनिया में कहीं है नहीं। निकल मत जाना खोजने, जहाँ तख्ती लगी हो। यह भीतर की बात है। जहाँ दुनिया समाप्त होती है, इसका मतलब, जहाँ तुम्हारा राग-रंग समाप्त होता है, जहाँ दुनिया समाप्त होती है, इसका मतलब, जहाँ जीवन का खेल—खिलौने समाप्त होते हैं, आखिरी पड़ाव आ जाता है। देख लिया सब, जान लिया सब, हो गया दो कौड़ी का, कुछ सार न पाया। सब बुदबुदे टूट गये, फूट गये, सब रंग बेरंग हो गये।

दुनिया के अन्त होने का अर्थ है, जहाँ वासना समाप्त हो गई। वासना ही दुनिया है। महत्वाकांक्षा का विस्तार ही संसार है। लेकिन वहाँ आते ही घबड़ाहट होगी। क्योंकि वहाँ फिर शून्य साक्षात खड़ा हो जाता है। जहाँ महत्वाकांक्षा मिटती है, वहाँ शून्य रह जाता है।

उस शून्य को बुद्ध-पुरुष कहते हैं: निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य। लेकिन दूसरी तरफ भी देखने की हिम्मत चाहिए। नहीं तो जो भागोगे, तो लौट नहीं पाओगे फिर। दूसरी तरफ वही परमात्मा शुरू होता है, जहाँ दुनिया समाप्त होती है। इसका मतलब, जहाँ महत्वाकांक्षा समाप्त होती है, वहीं ध्यान शुरू होता है। जहाँ वासना की दौड़ छूटती है, वही ध्यान का विश्राम शुरू होता है। और वह ध्यान का विश्राम तो शून्य में विश्राम है।

सूफी फकीर उसको "फना" कहते हैं—मिट जाना, बिलकुल मिट जाना, न हो जाना। उस न होने में ही सब हो जाना है।

भय तो स्वाभाविक है। तुम क्या करोगे? तुम भय को दबाना मत और भय के कारण लौटना भी मत। भय को स्वीकार कर लेना, भय पर सवारी करना। भय को ही अपना साथी बना लेना, कि ठीक है, तू भी आ; पर हम जा रहे हैं। तू कँपायेगा, हम कँपेंगे। तू डरायेगा, हम डरेंगे; लेकिन रुकेंगे नही।

मैं कल रात एक यूनानी विचारक निकोस कज़ानज़ाकिस की एक किताब पढ़ता था। कज़ानज़ाकिस एक उपन्यासकार था, पर बहुत कीमती। और कभी-कभी उपन्यासकार उन ऊँचाइयों को छू लेते हैं, जिनको तुम्हारी साधारणसे धर्म गुरु समझ भी नही सकते। कभी-कभी कलाकार उन गहराइयों को अनुभव कर लेता है. जिनको तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में बैठे हुए पंडित, मुल्ला पकड़ भी नहीं सकते।

कज़ानजाकिस ने अपनी इस किताब मे लिखा है, कि मैंने तीन तरह के लोग देखे और तीन तरह की प्रार्थनायें करते देखे। पहले तरह के लोग हैं, वे कहते हैं, "परमात्मा! हम धनुष हैं, तू हमारी प्रत्यचा पर तीर को चढ़ा। कहीं ऐसा न हो, कि तू तीर को चढ़ाये ही न, प्रत्यचा को खीचे ही न और हम जंग खाकर ऐसे ही समाप्त हो जाएँ।

दूसरे हैं, दूसरे तरह के लोग और दूसरी तरह के प्रार्थना करने वाले लोग; वे कहते हैं, तू प्रत्यंचा पर तीर को चढ़ा, हम तेरे धनुष हैं परमात्मा; लेकिन जरा ख्याल से चढ़ाना। कही ज्यादा मत खींच देना, कही ऐसा न हो, कि प्रत्यंचा टूट ही जाय।

और तीसरी तरह के लोग हैं और तीसरी तरह की प्रार्थना करने वाले; वे कहते हैं, हे परमात्मा! हम तेरे धनुष हैं, तू अपने तीरों को हमारी प्रत्यंचाओं पर चढ़ा और फिक्र मत करना, कम ज्यादा का हिसाब मत रखना, तेरे हाथ में टूट भी गये, तो इससे बड़ा कुछ और होना नहीं है।

यह जो तीसरी तरह का व्यक्ति है, यही उपलब्ध कर पायेगा।

तरह का व्यक्ति कहता है, कही हम ऐसे ही न चले जायें। उसकी नजर अपने पर ही लगी है अभी। अभी यह दौड़ भी, यह प्रार्थना भी अहंकार की है। हमें सफल बना; कही हम असफल ही न चले जायें। कहीं ऐसा न हो, कि जंग खा जायें। बिना किसी सफलता के स्वर्ग को जाने, बिना किसी सफलता के सौरभ को उपलब्ध हुए, कहीं हम मिट ही न जायें। ऐसे ही न खो जायें। हमें तू सफल बना, चढ़ा अपने तीरों को हमारी प्रत्यंचा पर।

लेकिन न तो परमात्मा से सम्बन्ध है प्रार्थना का, न साहस है प्रार्थना का। डर है कि कहीं जंग न खा जायें। और डर है, कि कहीं असफल न मर जायें। लोभ की आकांक्षा है, लोभ की प्रार्थना है। भय की प्रार्थना है।

दूसरी तरह के लोग हैं, ज्यादा चालाक हैं, होशियार हैं। परमात्मा के साथ भी सौदा करना चाहते हैं। वहाँ भी अपना गणित ले कर आते हैं। वहाँ भी हिसाब-किताब रखते हैं। दुकानदार हैं। परमात्मा से कहते हैं, कि चढ़ा तू अपने तीरों को लेकिन ध्यान रखना, कही ज्यादा मत खींच देना, कि प्रत्यंचा टूट जाय।

ऐसे व्यक्ति भी परमात्मा के निकट नही पहुँच सकते। ऐसे व्यक्ति भी परमात्मा को भी पूरी स्वतंत्रता नही दे रहे हैं। उसको भी नियंत्रण मे रख रहे हैं। उसको भी बाँध कर चलना चाहते हैं। परमात्मा को अपने हिसाब से चलाना चाहते हैं, परमात्मा के हिसाब से स्वयं नही चलना चाहते। और जब तक तुम परमात्मा के साथ चलने को राजी नही हो, तब तक तुम उसे उपलब्ध न कर सकोगे। जब तक तुम चाहते हो वह तुम्हारे पीछे चले, तब तक तुम्हारा सम्बन्ध ही न जुड़ पायेगा।

तीसरी तरह के लोग हैं, तुम तीसरी तरह के लोग बनना। प्यारी है उनकी प्रार्थना और बड़ी महत्वपूर्ण, कि हम तेरे धनुष हैं। हम तेरे साधन हैं, उपकरण हैं। तू अपने तीरों को चढ़ा। हमारे लक्ष्यों को भेदने को नही, तेरे ही लक्ष्यों को भेदने के लिए। हम तो केवल धनुष हैं। तू अपने तीरों को चढ़ा और अपने लक्ष्यों को भेद और इसकी फिक्र ही मत करना, कि हम बचें कि टूटें। तेरे हाथ मे टूट ही गये तो इससे बड़ा और क्या होना हो सकता है!

ये समर्पित हैं। इनकी प्रार्थना में न तो भय है, न लोभ है। इनकी प्रार्थना में तो सिर्फ एक प्रार्थना है और वह प्रार्थना यह है, कि तू हमे अपना उपकरण बना ले। उस उपकरण बनने में हम मिट जायें, तो हमारा सौभाग्य है।

भयभीत हो, स्वाभाविक है। हृदय कँपता है, कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। भय के बावजूद जाना है। भय के साथ जाना है। निर्भय तो तुम हो भी न सकोगे, जब तक कि ध्यान न घट जाय। क्योंकि ध्यान के बाद ही तुम्हें अनुभव

होता है अमृत का। मृत्यु विलीन हो जाती है, तभी तो अभय उपलब्ध होता है।

इसलिए तुम पहले से ही यह मत सोचना, कि पहले हम अभय को उपलब्ध हो, तब ध्यान कर सकेंगे। तो तो तुम कभी ध्यान ही न कर पाओगे। क्योंकि अभय तो ध्यान की उत्पत्ति है। वह तो ध्यान में ही लगा हुआ फूल है। वह तो ध्यान की ही सुगन्ध है।

इसलिए जैसे हो—नग्न, भयभीत, कँपते हुए, अंधकार से भरे, रुग्ण, पूजा में चढ़ाने के योग्य भी नहीं, जानते हुए, कि अपनी कोई पात्रता नहीं है, फिर भी तुम जाना। अगर यह सब जानते हुए तुम गये और विनम्रता से गये और परमात्मा के उपकरण बनने की आकांक्षा से गये, तो तुम्हारी पात्रता तुम्हें मिल गई।

यही पात्रता है। तुम खाली हो, यही तुम्हारी पात्रता है।

आखिरी प्रश्न आपने कहा कि जगत् और जीवन अतिशय रहस्य से भरा है। और उसका जर्रा-जर्रा चमत्कारपूर्ण है। उस रहस्य और चमत्कार के प्रति हमारी आँखें क्यों और कैसे अंधी हो रही हैं? और क्या उस रहस्यबोध को फिर से उपलब्ध हुआ जा सकता है?

आँखें अंधी हो रही हैं, अति-विचार से। रहस्य को समझने के लिए विचार का स्थिर हो जाना जरूरी है। क्योंकि उसी संधि में से रहस्य दिखाई पड़ता है। आँखें तो तुम्हारी खुली हैं, लेकिन विचार से भरी हैं। उसी कारण खुली आँख भी देख नहीं पा रही है।

देखते हो फूल को, जानते हो गुलाब का फूल है, बहुत बार देखा है, हजार-हजार स्मृतियाँ हैं गुलाब के फूल की, न मालूम कितनी कवितायें पढ़ी हैं गुलाब के फूल के सम्बन्ध मे, चित्र और पेंटिंग्स देखी हैं; सब तुम्हारे मन में भरी हैं। जब तुम गुलाब के फूल के करीब जाते हो तब तुम्हारी सारी जानकारी बीच में पर्दे की तरह खड़ी हो जाती है। पर्त दर पर्त तुमने जो जो जाना है, वह बीच मे आ जाता है। तुम्हारा जानना ही तुम्हारा अंधापन हो जाता है।

छाटो जानने को थोड़ी देर। थोड़ी देर गुलाब के पास ऐसे हो जाओ जैसे तुम अज्ञानी हो; जैसे न तुमने गुलाब के फूल कभी देखे हैं, न उनके सम्बन्ध में कभी कुछ सुना है, न कोई चित्र देखे हैं, न कोई गीत गाये हैं। इस गुलाब को ही अपना गीत गाने दो। तुम्हारे गीतों को बन्द करो। इस गुलाब को, जो

मौजूद है, इसको ही प्रगट होने दो। तुम्हारे अतीत में देखे गये चित्रों को छोड़ो। वे जा चुके। दर्पण पर जमी धूल से ज्यादा उनका कोई मूल्य नहीं है। आकृतियाँ हैं सपनों की।

यह वास्तविक है। वास्तविक को तुम छिपा रहे हो अवास्तविक से। अतीत को हटाओ, ताकि थोड़ी सी झलक इस गुलाब की, जो इस क्षण खिला है और फिर कभी दुबारा तुम इसे न मिल सकोगे। इसे ज़रा देखो, बैठो इसके पास। इस गुलाब को गुनगुनाने दो गीत। इस गुलाब को नाचने दो हवाओं में। इस गुलाब को मौका दो, कि अपनी सुगन्ध को तुम्हारी नासापुटों तक भेज सके। छूओ इसे, इसकी कोमलता को स्पर्श करो। इसकी पंखुड़ियों पर जमी हुई ओस की बून्दों को देखो, सब मोती फीके हैं।

यह जो गुलाब इस क्षण खिला है, इस क्षण का गुलाब—इसे तुम अपनी आत्मा पर फैलने दो। तुम थोड़ी देर मौन और शान्त इसके पास बैठ जाओ। और तुम पाओगे, अचानक आँखें खुल गईं। एक रहस्य से तुम भरे जा रहे हो। यह छोटा सा गुलाब एक स्रोत है। इससे अनन्त प्रकाश और अनन्त सुगन्ध और अनन्त रहस्य की ऊर्जा प्रगट हो रही है। तुम उसमें डूबो, तुम रससिक्त हो जाओ। जानकारी अलग करो, जीना शुरू करो।

बैठे हो नदी के तट पर, इस नदी को होने दो। छोड़ो उन नदियों को, जिन घाटों पर तुम कभी थे। मीठी स्मृतियाँ, कड़वी स्मृतियाँ, जाने दो उन्हें। उनसे अब कुछ लेना-देना न रहा। अब सिवाय तुम्हारी स्मृति में, उनका कोई मूल्य नहीं है, इनकी कोई सत्ता नहीं है। और छोड़ो उन भविष्य की कल्पनाओं को भी, उन नदियों के तटों पर, जिन पर तुम कभी रहोगे।

इस नदी को थोड़ी देर अवसर दो, तुम्हारे संग-साथ हो ले। तुम इसके संग-साथ हो लो। थोड़ी देर इसके साथ चलो, थोड़ी देर इसके साथ बहो, थोड़ी देर इसमें डुबकी लो। थोड़ी देर इसके साथ एक हो जाओ—और रहस्य का द्वार खुल जायेगा।

सब तरफ रहस्य मौजूद है। तुम्हारी आँखे भी खुली हैं। किसने कहा, कि तुम अंधे हो? और किसने कहा, कि तुम्हारी आँखें बंद हैं? सिर्फ धुधली हैं, धुएँ से भरी हैं। और धुआँ कुछ नहीं, तुम्हारी अतीत की पर्तें हैं, विचारों की पर्तें हैं। उनको थोड़ा हटा कर देखो। ऐसे देखो, जैसे छोटा बच्चा देखता है। उसके पास कोई जानकारी नही होती। अज्ञान से देखता है।

अगर रहस्य को चाहते हो, अज्ञान से देखो। पाण्डित्य को हटाओ, उतारो, वही तुम्हारा दुश्मन है। पाप के कारण तुम परमात्मा से अलग नहीं हो, पाण्डित्य के कारण तुम अलग हो। मेरे देखे पाण्डित्य एक मात्र पाप है। पापी भी पहुँच

सकता है, पण्डित कभी पहुँचते हुए नही सुने गये। तुम्हारी गीता तुम्हारा कुरान, तुम्हारी बाइबिल—हटाओ आँखों से। परमात्मा मौजूद है: तुम उसे क्यों नहीं देखते? तुम अपना वेद-पाठ किए जा रहे हो। द्वार पर परमात्मा खड़ा दस्तक दे रहा है, तुम अपनी पूजा किए चले जा रहे हो।

तुम थोड़े खाली हो जाओ, बस! अज्ञान, "नहीं कुछ जानता हूँ" ऐसी भाव-दशा ज्ञान की तरफ पहला कदम है। "जानता हूँ," ऐसी भाव-दशा—तुम सख्त हो गए। तुम्हारी तरलता खो गई। तुम जाम हो गये, जम गये। तुम बरफ की तरह जम गये, पत्थर हो गये। अब तुममें बहाव न रहा।

प्रतिपल मौका मिल रहा है तुम्हें। सुबह उठे हो, आँखें नहीं खोली है अभी, पक्षियों ने गीत गाये है? रास्ते पर धीमे-धीमे लोग चलने लगे हैं, दूध-वाले ने आवाज दी है, सुनो। जैसे पहली बार सुन रहे हो। रात भर के बाद मन ताजा है। थोड़ा सुनो, थोड़े पड़े रहो बन्द किए ही। थोड़ा सुनो, थोड़े कानो को इस रहस्य का अनुभव करने दो। आँख खोली, अपने ही घर अजनबी हैं। सभी घर सरायें हैं। आज हो, कल नही रहोगे। कल कोई और घर था; आज कोई और घर है। कल कोई और मालिक था, कल कोई और मालिक होगा; आँख खोलो।

अपने ही बच्चे को ऐसा देखो, जैसे अतिथि है। और बच्चे अतिथि हैं, मेह-मान है। कौन जानता है, आज बच्चा है, कल न हो। फिर रोओगे, छाती पीटोगे, तड़पोगे, कि एक बार और आँख भर कर देख लिया होता। लेकिन आँख भर कर देखने का मौका ही न मिला। मौके हजार थे, तुम चूकते ही चले गये। अपनी ही पत्नी को ऐसे देखो, जैसे आज ही उसे लिवा लाये हो, आज ही विवाह कर लाये हो, आज ही भाँवर पड़ी है।

चीजों को नये सिरे से देखना शुरू करो, बासी मत होने दो। उधार आँखों से मत देखो, ताजी आँखो से देखो। कल की आँखों से मत देखो, आज की आँखों से देखो। रोज झाड़ते जाओ धूल को, दर्पण को धूल से मत भरने दो। और तुम्हारे जीवन मे रहस्य का आविर्भाव होने लगेगा। सब तरफ तुम पाओगे रहस्य। सब तरफ तुम पाओगे उसी की धुन बज रही है।

कोई भी चीज तो तुमने जानी नही है। आदमी परमात्मा को जानने की बात करता है, राह पर पड़े हुए पत्थर को भी नही जानता। पत्थर भी रहस्य है। और जिस दिन पत्थर भी रहस्य हो गया, उसी दिन पत्थर भी परमात्मा हो गया। उस दिन उसके सिवाय तुम कुछ भी न पाओगे। पक्षी की गुनगुनाहट में उसी की धुन सुनाई पड़ेगी। हवाओं की थिरकन में, वृक्षों से गुजरते हुए

हवा के झोंके में उसी की आवाज, सरसराहट मालूम पड़ेगी। किसी की आँख में झाँकोगे और उसी का झरना दिखाई पड़ेगा। किसी का हाथ छुओगे और वही तुम्हारे हाथ में आ जायेगा।

लेकिन इसके लिए एक गहरी क्रान्ति जरूरी है। उस क्रान्ति को ही मैं ध्यान कहता हूँ। ध्यान का अर्थ है, मन को झाड़ना, मन को स्नान देना; जैसे तुम रोज स्नान कर लेते हो, शरीर गंदा हो जाता, मन गंदा हो जाता है—क्योंकि मन का स्नान तुम भूल ही गये हो।

ध्यान मन का स्नान है, जितनी बार धो सको।

हिन्दू व्यवस्था थी कि सुबह उठ कर ध्यान कर लो, ताकि दिन भर के लिए मन ताजा हो जाय। रात सोते वक्त ध्यान कर लो, ताकि दिन भर की धूल फिर झड़ जाय। मुसलमान तो पाँच बार प्रार्थना करते रहे हैं, ताकि दिन में बार-बार धूल जमने ही न पाये। जब भी जरा सी धूल जमे, फिर प्रार्थना कर लो, फिर नमाज मे उतर जाओ। फिर जरा धो डालो, साफ कर लो, दर्पण साफ रहे। उस दर्पण में ही तो तुम किसी दिन परमात्मा को पकड़ोगे।

बस, इतनी ही कला है। ध्यान कला है रहस्य का द्वार खोलने की। ध्यान में ही घूंघट उठ जाता है। घूंघट परमात्मा के चेहरे पर नहीं है, तुम्हारे मन पर है। तुम्हारी धूल हट गई, परमात्मा सदा से सामने मौजूद था।

राम नाम निज औषधि

प्रवचन तीन : दिनांक १३–७–१९७५ प्रातःकाल श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा संसा को नहीं, जीवन मरन का राम ॥
सुपनें ही जनि बीसरें—मुख हिरदें हरि नाम ॥

हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाई ।
दादू मरण तहँ भला, जहँ पसु-पंखी खाइ ॥

राम-नाम निज औषधि, काटैं कोटि विकार ।
विषम व्याधिजे ऊबरैं, काया-कंचन सार ॥

कौन पटन्तर दीजिये, दूजा नाहीं कोइ ।
राम सरीखा राम हैं, सुमरियां ही सुख होइ ॥

नांव लिया तब जानिये, जे तन-मन रहे समाइ ।
आदि, अन्त, मध, एक रस, कबहूँ भूलि न जाइ ॥



जीवन को जीने के दो ढंग हैं। एक ढंग है सन्देह का; और एक ढंग है श्रद्धा का। दोनों बड़ी विपरीत यात्राएँ हैं। दोनों के परिणाम बड़े भिन्न हैं।

और अक्सर ऐसा होता है कि लोग जीते तो हैं सन्देह का जीवन और आकांक्षा करते हैं श्रद्धा के फलों की। तब असफलता के अतिरिक्त कुछ हाथ नही लगेगा। बीज तो बोये हों सन्देह के, और फल चाहे हों श्रद्धा के, यह न तो कभी हुआ है और न कभी हो सकेगा।

सन्देह का अर्थ है: डाँवाँडोल चित्त। सन्देह का अर्थ है: कँपती हुई मनोदशा। सन्देह का अर्थ है: जो भी कर रहे हैं, उस करने में भरोसा नही है, कि कुछ होगा। सन्देह का अर्थ है: एक हाथ से कर रहे हैं, दूसरे हाथ से मिटा रहे हैं। सन्देह का अर्थ है, एक कदम उत्तर चलते हैं, एक कदम दक्षिण चलते हैं; टूटे हैं, खण्डित हैं, विभाजित हैं। सन्देह तो महारोग है, उस से कभी कोई पहुँचा नही। उससे चलनेवाला चलता तो बहुत है, मार्ग तो बहुत तय करता है, मंजिल कभी नही आती है।

श्रद्धा का अर्थ है: थिर हुआ चित्त। श्रद्धा का अर्थ है: एक-स्वर हुआ चित्त, श्रद्धा का अर्थ है: एक ही धुन बजती है, द्वैत नही है। जिस यात्रा पर निकले हैं, पूरे ही निकल गये हैं, पीछे किसी को छोड़ नहीं दिया है। एक अंग नहीं गया है यात्रा पर, समग्रता से चले गये हैं।

और बड़े मजे की बात है, कि जैसे सन्देहवाला आदमी चलता बहुत है। पर पहुँचता नही; श्रद्धावाला आदमी चलता ही नहीं और पहुँच जाता है।

अगर पहली बात तुम्हें समझ में आ गई हो, कि सन्देहवाला आदमी चलता बहुत है, पहुँचता नहीं; तो दूसरी बात की भी हलकी झलक मिल सकती है। श्रद्धावाला चलता ही नही, पहुँच जाता है। बैठे-बैठे पहुँच जाता है। कुछ करता नहीं, और पहुँच जाता है। सन्देहवाला बहुत उपक्रम करता है। श्रद्धावाला

सिर्फ श्रद्धा करता है, उतना काफी है। उससे बड़ा कोई उपक्रम नही है। उससे बड़ा कोई उपाय नही है।

पर जो सन्देह में ही जिये हैं, उन्हें बड़ी कठिनाई होती है कि श्रद्धा से कोई पहुँचेगा कैसे, और बैठे-बैठे पहुँच जायेगा!

मैं विद्यार्थी था जिस विश्वविद्यालय मे, रोज सुबह घूमने जाता था। राह के किनारे, एक पुलिया पर, अक्सर बैठ जाता था। घण्टों बैठा रहता था।

एक प्रोफेसर भी घूमने आते थे। धीरे-धीरे उनसे परिचय हुआ। वे अक्सर मुझे वहाँ बैठा देखते थे। एक दिन कहने लगे, ऐसे बैठे-बैठे कुछ भी न होगा। अपना जीवन गँवा दोगे। कुछ करो। क्योंकि साँझ आता हूँ, तुम यहाँ बैठे मिलते हो। आता हूँ, चला जाता हूँ, तुम यहाँ बैठे ही रहते हो। कर क्या रहे हो बैठे-बैठे? मुझे तुम्हारे लिये चिन्ता होने लगी है।

चिन्ता होने-योग्य बात थी, क्योंकि विश्वविद्यालय तो मुझे सिर्फ बहाना था, मुझे वहाँ कोई रस न था। वह तो मैं वहाँ था दूसरों को दिखाने के लिये, कि कुछ कर रहा हूँ, खाली नही बैठा हूँ—अन्यथा परिवार के लोग परेशान होते, मित्र-प्रियजन पीडित होते—कुछ कर रहा हूँ। वहाँ कुछ भी न कर रहा था। मैंने उनसे कहा, कभी दोपहर भी आओ, तब भी तुम मुझे यहाँ बैठा हुआ पाओगे। कभी आधी रात भी आओ, तब भी तुम मुझे यहाँ बैठा हुआ पाओगे। ज्यादातर बैठता ही हूँ।

वे नाराज हुए और कहा, इस तरह जीवन गँवा दोगे, ऐसे बैठे-बैठे कुछ न मिलेगा। मैंने उनसे पूछा, आप तो नही बैठे रहे, कुछ मिल गया? आप तो काफी दौड़े-धूपे ह। अगर मिल गया हो, तो मुझे बता दें। और अगर न मिला हो, तो मुझ से बैठना सीख ले। उस दिन से उन्होंने उस रास्ते पर आना बन्द कर दिया। मुझे देख लेते, तो दूर से ही लौट जाते। धीरे-धीरे बात आई-गई हो गई। मैं भूल ही गया।

कोई तीन महीने बाद—एक दिन देखा कि वे आ रहे हैं, फिर लौटे भी नही। मैं चकित हुआ। वे पास आये, और कहने लगे, बाबा, क्षमा करो। क्यों मेरे पीछे पडे हो? दिन मे कई बार तुम्हारी याद आती है। और कल रात तो हद हो गई, रात भर सोने न दिया—सपने मे भी! बैठे हो; और मुझसे कह रहे हो, बैठो तुम भी। मुझसे भूल हो गई, जो मैंने कहा, और यही निवेदन करने आया हूँ कि मैंने कुछ पाया नही चल कर। और अगर नही बैठ पा रहा हूँ, तो सिर्फ इस कारण, कि चलने की आदत हो गई है। लेकिन कौन जाने, शायद तुम पा लो। मैं अपने शब्द वापिस लेता हूँ।

श्रद्धा तो बैठने का एक ढंग है। सन्देह चलने की एक प्रक्रिया है। सन्देह दौड़ है, श्रद्धा विराम है। सन्देह पाने की आकांक्षा है। श्रद्धा "पा लिया" ऐसा भाव है।

इसे तुम ठीक से समझ लो। क्योंकि अगर यही बीज न हुआ मूल में, तो जिस वृक्ष की हम कल्पना कर रहे है, वह कभी भी प्रगटेगा नहीं। श्रद्धा तो पा लिया---ऐसा भाव है; पहुँच गये---ऐसी प्रतीति है; आ गया मन्दिर, कहीं जाने को नहीं और---ऐसी चित्तदशा है।

सन्देह सदा कहता है: और आगे---और आगे---। सन्देह तो मील का पत्थर है, जिस पर तीर लगा है: और आगे---और आगे---। श्रद्धा तो ऐसी भाव-दशा है---यहीं, अभी और यहीं।

सन्देहवाले व्यक्ति को, श्रद्धावाला व्यक्ति अन्धा दिखाई पड़ता है। श्रद्धावाले व्यक्ति को, सन्देहवाले व्यक्ति पर दया आती है, कि नाहक व्यर्थ ही दौड़े चले जा रहा है। कहीं पहुँचेगा नहीं, गिरेगा; और बुरी तरह गिरेगा। श्रद्धावाला आदमी भी कब्र में उतरता है, लेकिन उसके उतरने में एक शान होती है। कब्र मे भी जाता है, तो शाही ढंग से जाता है। उसकी समाधि साधारण समाधि नहीं होती। उसकी समाधि परमात्मा से मिलन का द्वार होती है।

सन्देहवाला भी गिरता है; बुरी तरह गिरता है; कब्र मे ही गिरता है; मुँह में धूल भर जाती है। चीखता है, चिल्लाता है, बचना चाहता है। जिन्दगी भर चला है, और कब्र रोके देती है---कब्र दुश्मन मालूम होती है। मृत्यु से भय लगता है।

श्रद्धावाला तो जीवन भर बैठा है। बाहर बैठा था कि कब्र में बैठा है, कोई फर्क नहीं पडता है। मृत्यु मित्र मालूम होती है। और जिसने जान लिया, कि मृत्यु मित्र है, उसने सब जान लिया। उसने जीवन के सब खजाने पा लिये। और जो मृत्यु से डरता रहा और भागता रहा, उसने सब गँवा दिया। जीवन मे जो भी पाने योग्य था, उस सबसे वह वंचित रह जायेगा।

श्रद्धावाले व्यक्ति को दया आती है; क्योंकि लगता है, संदेहवाला व्यर्थ ही भागता है। पसीने-पसीने, लथ-पथ, सदा थका हुआ मालूम पड़ता है---और ऐसे ही गिरेगा। कोई मंजिल हाथ न आयेगी। क्योंकि मंजिल तो वही थी, जहाँ तुम थे। जितने दौडोगे, उतने ही दूर निकल जाओगे।

क्योंकि मंजिल तो तुम हो। कुछ और पाना थोड़े ही है! तुम वहाँ हो ही सदा से। थोड़ी आँख भर खोलनी है। थोड़ा स्मरण करना है। थोड़ी सुरति आ जाये, थोड़ा होश आ जाये, तो तुम अचानक हँसोगे, कि मैं जा कहाँ

रहा था! मैं खोज किसे रहा था! खोजनेवाला ही तो वह है, जिसे हम खोज रहे थे। सम्राटो का सम्राट भीतर है!

श्रद्धा विश्राम बना देती है। क्योंकि जब चित्त मे कोई विरोध ही न रहा, कोई विषमता न रही, सब थिर हो गया, तो गति शून्य हो जाती है। उस गति-शून्य दशा का नाम समाधि है।

ये श्रद्धा के सूत्र है। एक-एक शब्द को ठीक से समझना।

"मेरा ससा को नही, जीवन मरन का राम।
सुपने ही जन वीसरै, मुख हिरदै हरिनाम।"

दादू कहते है, मेरा सशय जा चुका। मेरा अब कोई सशय नही। अब मैंने श्रद्धा पा ली।

श्रद्धा उपलब्ध ही है। श्रद्धा उपाय नही है, उपलब्धि है। तुमने लोगों को कहते सुना होगा कि श्रद्धा से परमात्मा पाया जाता है। गलत कहते है। श्रद्धा परमात्मा है। श्रद्धा कोई उपकरण थोडे ही है, कि इससे परमात्मा को पाया जाता है! यह कोई विधि थोडे ही है! यह कोई तकनीक थोड़े ही है! इसलिये ऐसी घडी कभी नही आती, जब श्रद्धा छूट जाये, क्योकि तकनीक होता तो छूट जाता। जब पा लिया, तो तकनीक व्यर्थ हो गया। विधि तो छूट जायेगी। मार्ग तो छूट जायेगा, जब मजिल मिलेगी। श्रद्धा कभी नही छूटती। श्रद्धा परमात्मा को पाने का उपाय नही है, श्रद्धा परमात्मा है। वह विधि नही है, वही लक्ष्य है।

"मेरा ससा को नही"--दादू कहते है, अब कोई सशय न बचा, कोई सदेह मन मे न रहा। श्रद्धा उपलब्ध हो गई।

सदेह का अर्थ होता है, हमेशा डरे हुए जीते हो। प्रेम करते हो, लेकिन सदेह है, प्रेम नही हो पाता। मित्रता बनाते हो, लेकिन सदेह है, पूरी ताकत से बढ नही पाती।

सब तरफ सदेह है, तो तुम आधे-आधे जीते हो। और तुम्हारा अधूरा जीवन, तुम्हारा वह कुनकुनापन ही तुम्हे उबलने नही देता और जीवन की गरिमा प्रगट नही हो पाती। श्रद्धा तुम्हे सौ डिगरी पर उबाल देगी, जहाँ से जल भाप बन जाता है। सदेह तो तुम्हे कुनकुनाये रखेगा; तुम्हे सदा बीच मे ही अटकाये रखेगा। तुम कुछ भी करोगे, तुम्हारा कृत्य कभी तुम्हारे पूरे प्राणो से आच्छादित न होगा।

और वही तो तृप्त होने का ढग है कि तुम्हारा कृत्य तुम्हारे पूरे प्राण से आच्छादित हो जाये। तुम जो करो, उस करने मे तुम पीछे न रहो, डब

जाओ पूरे, एक हो जाओ। नाचो, तो नाच बचे, नाचनेवाला न बचे। देखो, तो आँख हो जाओ, और सब खो जायें। सुनो, तो कान ही जाओ, कुछ और न बचे।

जिस दिन तुम्हारा कृत्य समग्र होता है, टोटल होता है, उसी दिन तो जीवन में आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है। ताल-मेल बैठ जाता है। अभी बस, ताल-मेल टूटा हुआ है, वर्षा तो हो रही है आनंद की; तुम्हारा पात्र उलटा रखा है। वर्षा होती रहती है, और तुम रोते-चिल्लाते रहते हो।

संदेह उलटा पात्र है। तुम कँपते रहते हो। ऐसे ही समझो, कि कोई आदमी कँपते हुए हाथों से तीर चलाये, तो कितना ही लक्ष्य निकट हो, क्या फर्क पड़ता है? कँपते हाथ तीर को न चला सकेंगे। कँपते हाथ तीर को भी कँपा देंगे। कहीं देखेगा, कही सोचेगा, कही तीर लगेगा।

पाना चाहते हो सुख; मिलता है दुःख। जीवन भर हाथ साधते हो, कि सुख पर तीर लग जाय, लगता नही; चूक-चूक जाता है। हाथ ही कँप रहे हैं। हृदय ही कँप रहा है, तुम एक कंपन हो, तो तुम्हारा तीर चूक जायेगा। जब तक संशय है मन में, तब तक तुम चूकते ही रहोगे। संशय की अवस्था रुग्ण अवस्था है।

मेरे गाँव में मेरे घर के सामने एक सुनार रहता है। वह सशय का प्रतीक है। वह अकेला ही है, संपन्न भी है, लेकिन सशय उसका प्राण लिये ले रहा है। ताला लगाता है, हिला कर देखता है। दस कदम जायेगा, फिर लौट आयेगा, दस कदम जाने मे संदेह फिर पकड़ लेता है, कि पता नहीं ताला लगाया, हिलाया, नहीं हिलाया!

पूरे गाँव के बच्चे उसे मुसीबत मे डाले रहते थे। वह पहुँच गया है फर्लांग भर, बाज़ार सब्जी लेने जा रहा है, फिर कोई मिल जायेगा, कहेगा—"सोनी जी, ताला खुला पड़ा है।" फिर कोई उपाय नहीं है, कि वह न वापिस लौट आये। और ऐसा भी नही है कि ऐसा हजार दफे मजाक हो चुकी हो, और हज़ार दफा गलत पाया कि ताला तो लगा हुआ ही है। लेकिन पता नही, नौ सौ निन्नानबे दफा लोगों ने झूठ कहा हो और अब यह लड़का ठीक ही कह रहा हो। वह फिर लौट गया है, फिर किसी ने कह दिया—सोनी जी ताला....! यह भी नहीं कहा, कि खुला है, कि लगा है; सिर्फ ताला!.....उसका सारा स्नान भ्रष्ट हुआ, वह भागा अपनी पोटली उठा कर घर की तरफ।

संशय से बँधा हुआ चित्त, खूँटी से बँधा हुआ है। थोड़ी-बहुत रस्सी है, उस रस्सी में बँधा हुआ, जानवर जैसे खूँटी के आस-पास घूमता रहता है, ऐसा

संशय से भरा हुआ व्यक्ति भी, बस, रुग्णता के आस-पास ही घूमता रहता है, रोग से बंधा है।

श्रद्धा मुक्ति है।

और तुम्हारे चित्त में सन्देह तब तक रहेंगे जब तक कि तुम अपने को बहुत समझदार समझ रहे हो। जितना समझदार आदमी है, उतना ही ज्यादा सन्देह में भरा होगा। वह सुनार बहुत बुद्धिमान है, विचारशील है। जितना बुद्धिमान आदमी अपने को सोचता है बुद्धिमान, उतना ज्यादा सन्देह करता है; उतना हर बात पर सोचता है, विचार करता है। धीरे-धीरे विचार करना, एक जीवन की बंधी हुई जकड़ हो जाती है। एक कारागृह हो जाता है। वह विचार ही करता रहता है।

सुना है मैंने कि इमानुएल काण्ट को एक लड़की ने विवाह के लिये निमंत्रण दिया था। इमानुएल काण्ट जर्मनी का बड़ा विचारक, दार्शनिक हुआ। उसने कहा, "सोचूंगा"।

एक तो स्त्रियाँ साधारणत किसी को विवाह का निमन्त्रण नही देती। कोई तीन वर्ष तक वह लड़की प्रतीक्षा करती रही, कि यह अपनी तरफ से कुछ पहल ले, लेकिन सन्देह वाला आदमी अपनी तरफ से पहल नहीं लेता। जब तक झंझट से बचे रहे, तब तक ठीक। इमानुएल काण्ट ने अपनी तरफ से पहल न ली, जब लड़की ने मजबूरी में पहल भी ली, तो उसने कहा, मैं सोचूँगा, क्योंकि समझदार आदमी बिना सोचे कुछ भी नही करता। वह बिना सोचे प्रेम भी नही करता।

उसने काफी सोचा-विचारा। विश्वविद्यालय में जहाँ वह प्रोफेसर था, वहाँ के पुस्तकालय को छान डाला। सारे पक्ष और विपक्ष में जितने भी बिन्दु हो सकते थे, सब लिख डाले कि विवाह करो तो क्या लाभ है, न करो तो क्या लाभ है। करो तो हानि कितनी है, न करो तो हानि कितनी है, सब लिख डाला, बड़ी मुश्किल में पड़ गया।

जैसे-जैसे खोजता गया, वैसे-वैसे जाल बड़ा होता गया। कहते है, उसने कोई तीन सौ पचास पक्ष में और तीन सौ पचास विपक्ष में तर्क लिख लिये। स्वभावत काफी समय निकल गया। तर्क बराबर ही हो गये दोनों तरफ; तीन सौ पचास इस तरफ और तीन सौ पचास उस तरफ। और तर्क की यह खूबी है, कि अगर तुम खोजते ही जाओ तो हमेशा पाओगे, वे बराबर हो जाते है। क्योंकि हर तर्क दुधारी तलवार है, वह दोनो तरफ काटता है।

जो लोग तर्क के द्वारा निष्कर्ष ले लेते है, वे ठीक तर्कनिष्ठ नही है इसलिये। उनको तर्क की पूरी कला नही आती, नही तो तर्क तो कभी भी कोई निष्कर्ष

लेने ही नही देगा। जो आदमी ठीक-ठीक तार्किक है, वह निष्कर्ष नहीं ले सकता; क्योंकि हर तर्क दोनों तरफ काटता है, बराबर काटता है। तो ऐसी तो कोई घड़ी आती नहीं जिस तरफ, एक तरफ तर्क ज्यादा हो, दूसरी तरफ तर्क कम हो; वह बराबर ही होता है; क्योंकि हर तर्क दोनों तरफ काटता है। ठीक तार्किक व्यक्ति निष्कर्ष ले ही नही सकता।

इमानुएल काण्ट बड़े से बड़े तार्किकों मे एक था। देखा कि सब खोज व्यर्थ गई, दोनो तरफ बराबर तर्क हो गये हैं, अब कैसे निर्णय लेना! बात वहीं की वहीं खड़ी है। तीन सौ पचास तर्क खोजने में जो समय गया, वह व्यर्थ गया। निर्णय अब उसी को लेना है। तर्क से कुछ सहारा न मिला। तो वह गया, लड़की के द्वार खटखटाये; लेकिन पता चला कि लडकी की तो शादी हो चुकी है। उसको तो तीन बच्चे भी हो चुके हैं। तो वर्षो पहले की बात थी, यह तो वह भूल ही गया इस तर्क की उधेड़-बुन में। इमानुएल काण्ट अविवाहित ही रहा, अविवाहित ही मरा। क्योकि तर्क ने निर्णय ही न लेने दिया।

सन्दिग्ध व्यक्ति निर्णय ले ही नही सकता। और अगर सन्दिग्ध व्यक्ति भी निर्णय लेता है, तो उसका एक ही अर्थ है, कि उसने सन्देह पूरा न किया। कही न कही सन्देह की यात्रा में उसने थोड़ी-बहुत श्रद्धा कर ली। जहाँ श्रद्धा की, वही निष्कर्ष आ गया। श्रद्धा ही निष्कर्ष है; और कोई निष्कर्ष है ही नहीं।

अगर तुमने कभी भी कोई निष्कर्ष लिया है तो तुम गौर करना, कि वह सन्देह के कारण नही लिया है, सन्देह से थक कर लिया है। तर्क के जाल से, ऊहा-पोह से बेचैन हो कर लिया है। ऐसी जगह पहुँच गये, कि खुद ही थक गये और कहा कि ठीक है, अब ले ही लो। अब कुछ तो करना ही पड़ेगा, इसलिये कुछ तो करो।

यह तो पहले ही क्षण में हो सकता था, यह इतना समय खोने की कोई जरूरत न थी। यह इतना बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही गया।

श्रद्धा निष्कर्ष है। श्रद्धावान व्यक्ति प्रतिपल निष्कर्ष में जीता है। उसके जीवन में एक निष्पत्ति है। वह कभी अधूरा नहीं है। वह सदा पूरा है। इसलिये वह जो भी करता है परिपूर्ण मन से करता है। और जो भी परिपूर्ण मन से किया जाता है, उससे ही आनन्द उपलब्ध होने लगता है।

तुमने अगर भोजन भी परिपूर्ण मन से किया है, तुम ब्रह्म का स्वाद पाओगे। अगर तुम सुबह घूमने परिपूर्ण मन से निकल गये हो, तो तुम चारों तरफ ब्रह्म को ही हवाओं में तिरते, और आकाश में उतरते देखोगे। अगर तुमने पूरे मन से गुलाब के फूल को देख लिया है, तो उसमें ही तुम्हे परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे। असली राज है, पूरे मन से होना। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है।

"मेरा संसा को नहीं"—अब मेरा कोई संशय नहीं। दादू कहते हैं—"जीवन मरन का राम।" और जब संशय ही न रहा, तो अब जीवन हो, तो भी राम का, मरण हो तो भी राम का।

जब तक संशय है, तब तुम जीवन तो राम का कहोगे, मरण राम का नहीं कह सकते। तब तक तुम कहोगे कि सौ वर्ष जिलाओ, हजार वर्ष जिलाओ, मारो मत। घर में तुम्हारा बेटा पैदा होगा तो तुम बैण्ड-बाजे बजाओगे, परमात्मा को धन्यवाद दोगे, फूल-उपहार चढ़ाओगे। और बेटे की मृत्यु हो जायेगी, तो तुम परमात्मा को धन्यवाद न दे सकोगे।

तो तुम्हारा मन पूरा नहीं है। अगर पूरा ही मन था तो जन्म जैसे उसने दिया था, मृत्यु भी उसी ने दी। जब जन्म में भी उसी का हाथ था, तो मृत्यु में भी उसी का हाथ है। जब उसका हाथ है, तो सब ठीक है। फिर शिकायत कहाँ?

शिकायत तो इसलिये पैदा होती है, कि तुम्हारा चुनाव है। वस्तुतः शिकायत इसलिये पैदा होती है, कि तुम परमात्मा से ऊपर अपने को रखे हुए हो। तुम्हारे मन के अनुकूल करता है, तो ठीक, तुम्हारे मन के प्रतिकूल करता है, तो गलत।

यह तो भक्त का लक्षण नहीं। यह तो श्रद्धा की बात ही नहीं। श्रद्धा का तो इतना ही अर्थ है, कि तू जो करता है, ठीक करता है। अब मेरी कोई चाह भी नहीं है, कि तू यही कर। तेरी मर्जी, मेरी मर्जी है! तूने जन्म दिया, हम प्रफुल्लित हुए। तूने वापिस उठा लिया, हम फिर आनन्दित हैं। तेरा ही सब कुछ है—जन्म भी, मरण भी।

"जीवन मरन का राम"—दादू कहते हैं, अब जीवन भी उसी का है, मृत्यु भी उसी की है। अब हम बीच से हट गये।

इस बात को ठीक से समझ लें। सन्देहवाला आदमी बीच से कभी नहीं हटता। वह कहता है, हम निर्णय लेंगे। श्रद्धावान बीच से हट जाता है। वह कहता है, कि हमारी क्या जरूरत, तू कर ही रहा है। तू सदा ठीक ही कर रहा है। और हमारे सोचने-विचारने से कुछ बदलता भी तो नहीं। तुम्हारे सोचने-विचारने से रत्तीभर भी तो कोई परिवर्तन नहीं होता। जो होता है, होता है। जो होना है, हो रहा है। श्रद्धालु कहता है, तब सब ठीक। मेरे बीच में खड़े होने की जरूरत ही क्या है? वह बीच से हट जाता है।

इस बीच से हट जाने का नाम ही विनम्रता है, निरहंकारिता है। सन्देहवाला व्यक्ति अहंकार से कभी नहीं छूट सकता। सन्देह से अहंकार पुष्ट होता है;

श्रद्धा से मर जाता है। इसलिये सभी धर्म श्रद्धा पर जोर देते हैं; क्योंकि श्रद्धा के बिना कोई निरहंकारी नहीं हो सकता। सन्देह का इतना ही अर्थ है, कि मैं सोचूंगा-विचारूंगा, मैं निर्णय लूंगा। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है, कि तू ही सोच-विचार रहा है, तू ही निर्णय ले रहा है। मैं बीच में व्यर्थ क्यों आऊँ।

मैंने सुना है, एक सम्राट एक रथ से गुजरता था। जंगल से आता था शिकार कर के। राह पर उसने एक भिखारी को देखा, जो अपनी पोटली को सिर पर रखे हुए चल रहा था। उसे दया आ गई। बूढ़ा भिखारी था। राज-पथ पर मिला होता, तो शायद सम्राट देखता भी नही। इस एकान्त जंगल में–उस बूढ़े के थके-माँदे पैर, जीर्ण-जर्जर देह, उस पर पोटली का भार––उसे दया आ गई।

रथ रोका, भिखारी को ऊपर रथ पर ले लिया। कहा, कि कहाँ तुझे जाना है, हम राह में तुझे छोड़ देंगे। भिखारी बैठ गया। सम्राट हैरान हुआ। पोटली वह अब भी सिर पर रखे हुए है। उसने कहा, "मेरे भाई, तू पागल तो नहीं है? पोटली अब क्यों सिर पर रखे है? अब तो नीचे रख सकता है। राह पर चलते समय पोटली सिर पर थी, समझ मे आती है। पर अब रथ पर बैठकर किसलिये पोटली सिर पर रखे हैं?"

उस गरीब आदमी ने कहा, "अन्नदाता, आपकी इतनी ही कृपा क्या कम है कि मुझे रथ पर बैठा लिया! अब पोटली का भार और रथ पर रखूँ, क्या यह योग्य होगा?" लेकिन तुम सिर पर रखे रहो, तो भी भार तो रथ पर ही पड़ रहा है।

ठीक वैसी ही दशा है सन्देह और श्रद्धा की। तुम सोचते हो—सोच तो वही रहा है। तुम करते हो––कर भी वही रहा है। तुम नाहक ही बीच में निमित हो जाते हो। तुम यह जो पोटली सिर पर ढो रहे हो अहंकार की. और दबे जा रहे हो, और अशान्त, और परेशान! और रथ उसका चल ही रहा है, तुम कृपा करो। रथ पर ही पोटली भी रख दो, जिस पर तुम बैठे हो। तुम निश्चिन्त हो कर बैठ जाओ। श्रद्धा का इतना ही अर्थ है।

श्रद्धा इस जगत में परम बोध है। सन्देह अज्ञान है। वह बूढ़ा आदमी मूढ़ था। थोड़ी भी समझ हो, तो पोटली तुम नीचे रख दोगे। सब चल ही रहा है। तुम नहीं थे, चाँद-तारे चल रहे थे, कोई अड़चन न थी। फूल खिलते थे, पक्षी गीत गाते थे, लोग पैदा होते थे—सब चल रहा था। तुम कल नहीं रहोगे, तब भी सब चलता रहेगा। तुम क्षणभर को हो यहाँ। तुम क्यों व्यर्थ अपने को अपने सिर पर रखे हुए हो? उतार दो पोटली।

जीवन, मरण दोनों उसी के हैं। सुख भी उसी का, दुख भी उसी का। बीमारी भी उसी की, स्वास्थ्य भी उसी का। अगर तुम बीच से बिलकुल हट जाओ, तो बड़ी से बड़ी क्रान्ति घटित होती है। एक मात्र क्रान्ति––जो हो सकती है जगत में, वह घटित होती है। तुम्हारे बीच से हटते ही, जिस दिन तुम कहते हो, सब तेरा; उसी दिन दुःख मिट जाता है, उसी दिन मृत्यु मिट जाती है। क्योंकि दुःख अस्वीकार में है, मृत्यु अस्वीकार में है, तुम मरना नहीं चाहते और मरना पड़ता है, इसलिये मृत्यु है। तुम राजी हो, फिर कैसी मृत्यु! फिर कौन तुम्हें मारेगा? तुम अपने हाथ से राजी हो, चल कर जाने को राजी हो, फिर तुम्हें कौन मारेगा? मृत्यु हार गई तुमसे।

अगर दुःख आया, और तुम दुःख में भी प्रफुल्लित हो, और धन्यवाद दे रहे हो––दुःख हार गया। अब दुःख तुम्हें दुःखी न कर सकेगा। दुःख दुःखी करता है, क्योंकि तुम्हारी चाह छिपी है भीतर, कि दुःख न हो, सुख हो। और बड़ी हैरानी की बात यह है, कि ऐसी चित्त-दशा में जब तुम चाहते हो दुःख न हो, और सुख हो, तुम जब दुःख होता है तब तो दुःखी होते ही हो; क्योंकि जो तुमने नहीं चाहा था, वह हो रहा है। और जब सुख होता है; तब भी तुम सुखी नहीं हो पाते, क्योंकि भय बना रहता है, कि जल्दी ही दुःख आयेगा। ज्यादा देर न लगेगी, दुःख आ ही रहा होगा। कहीं सुख छिन न जाये!

जब तुम सुखी होते हो, तब तुम दुःखी होते हो, कहीं सुख छिन न जाये। और जब तुम सुखी होते हो तब भी तुम सुखी नहीं हो पाते क्योंकि मन कहता है कि और ज्यादा सुख हो सकता था। यह भी कोई सुख है? कल्पना प्रगाढ़ होती है। जो मिलता है वह सदा छोटा मालूम पड़ता है; वासना विराट होती है। जो मिलता है वह सदा क्षुद्र मालूम होती है, तब तुम दुःखी होते हो।

और जब दुःख आता है तब तुम दुःखी होते हो। तुम्हारा सारा जीवन ही दुःख हो जाता है। इस चित्त-दशा को ही हमने नर्क कहा है। नर्क कोई भौगोलिक जगह नहीं है। उसे नक्शे में मत खोजना। वह तुममें छिपा है। वह तुम्हारे जीवन को देखने के ढंग का नाम है।

और फिर कुछ लोग हैं जो सदा स्वर्ग में रहते हैं। उनके हाथ में चाबी श्रद्धा की लग गई है। सुख आता है तो वे धन्यवाद देते हैं, कि हमारी कोई पात्रता न थी, इतना तूने सुख दिया। और दुःख आता है तो भी वे धन्यवाद देते हैं कि जरूर तेरा कोई राज होगा। तू निखारना चाहता होगा, तू परीक्षा लेता होगा, तू गलत को काटता होगा। दुःख तूने दिया है, तो जरूर दुःख के पीछे

कोई राज होगा। तेरी कोई अनुकम्पा ही छिपी होगी। हम नहीं पहचान पाते; हमारी भूल है। ऐसा व्यक्ति दुःख में भी सुख पाता है और सुख में तो सुख पाता ही है। उसकी चित्त-दशा स्वर्ग की हो जाती है।

"मेरा संसा को नहीं, जीवन मरण का राम।

सुपने ही जन बीसरै, मुख हिरदै हरिनाम।"

कहते हैं दादू, अब सपने मे भी उसका नाम नहीं बिसरता।

जब संशय न रहे तो सपना मिट जाता है।

इसे क्या तुमने कभी थोड़ा निरीक्षण किया है, कि जब तुम्हारे चित्त में बहुत सन्देह होते ह, तब रात बहुत सपने आते हैं। और जब तुम्हारे चित्त में बड़ी शान्ति, श्रद्धा की भाव-दशा होती है, सपने कम हो जाते हैं। जब परिपूर्ण श्रद्धा होती है, सपने बिलकुल खो जाते हैं, क्योंकि सपना भी तुम्हारी वासना की ही प्रक्रिया है।

सपना है क्या ? सपना क्यों पैदा होता है ? सपना पैदा होता है तुम्हारी अधूरी वासना से। जो तुम चाहते थे, वह नहीं मिला, तो उसे तुम सपने में पाने की कोशिश करते हो। तुमने चाहा था कि तुम सम्राट हो जाओ, लेकिन नहीं हो पाये। सम्राट भी नही हो पाते सम्राट। वे भी भिखारी बने रह जाते हैं। तुमने चाहा था सम्राट होना, नही हो पाये। रात सपने मे हो जाते हो। सोने का महल बना लेते हो। सिंहासन पर बैठ जाते हो।

मन तुम्हे समझाने की कोशिश कर रहा है; तुम्हे सान्त्वना दे रहा है। मन कह रहा है मत घबड़ाओ; न सही दिन मे, रात में तो हो ही सकते हो। तुम अगर दिन मे भूखे रहे, उपवास किया, तो रात राजमहल में तुम्हें निमन्त्रण मिल जाता है सपने मे। जो तुम दिन मे चूक गये हो, उसे रात सपना पूरा कर देता है। सपना परिपूरक है। अन्यथा तुम पागल हो जाओगे। सपना तुम्हें थोड़ी सी राहत दे देता है, थोड़ा ढ़ाढ़स बँधा देता है। सपना कहता है, घबड़ाओ मत। और फर्क क्या है ?

आधा दिन जागते हो, आधी रात सोते हो। समझ लो, कि एक आदमी साठ साल जिन्दा रहा, तो बीस साल सोयेगा। अगर बीस साल यह आदमी सो कर सपना देखता रहे, और दूसरा आदमी बीस साल जाग कर सपना देखता रहे, कि वह सम्राट है, क्या फर्क है ? सपना कहता है, क्यों परेशान हो रहे हो ? जो तुम नहीं कर पाये, वह हम यूं ही कर देते हैं। जो वासना से नही हो पाया, वह हम कल्पना से कर देते हैं। कल्पना, वासना की सहचरी है।

जैसे ही व्यक्ति सन्देह से मुक्त हो जाता है, जो मिला है, उससे अनुगृहीत हो जाता है। जो मिला है वह इतना है, कि उससे ज्यादा की कोई माँग ही

नहीं उठती। सपना खो जाता है। सपने की कोई जरूरत न रही। वासनाग्रस्त व्यक्ति ज्यादा सपने देखता ह। निर्वासना से भरा हुआ व्यक्ति कोई सपने नहीं देखता।

तुम्हार सपने, तुम्हारे मन की खबर देते है। मनोविज्ञान तो तुम्हारे सपनों के आधार पर ही तुम्हारे व्यक्तित्व का पता लगाता है। एक आदमी हो सकता है ब्रह्मचारी है, लेकिन उसके सपने में वह स्त्रियों को देखता है। उससे असली खबर मिलती है। उसके ब्रह्मचर्य का कोई मूल्य नही है। असली बात तो रात है। सपना बता देता है, कि भीतर असली मे क्या चल रहा है। ब्रह्मचर्य ऊपर-ऊपर है, भीतर वासना चल रही है। और एक आदमी दीन-दरिद्र है। अपने को त्याग मे रख कर जीता है, सब छोड़ दिया है, लेकिन रात सपनों में महल देखता है--कुछ छूटा नही।

सपने तुम्हारे सम्बन्ध में ज्यादा असलियत की खबर देते है, कैसी विडम्बना है। तुम्हारा जीवन ऐसा झूठ हो गया है कि सपनों से पता लगाना पड़ता है, कि सच क्या है। मनोवैज्ञानिक पहले तुम्हारे सपने पूछता है, कि अपने सपने बताओ। क्योंकि तुम जो जाग कर कहोगे, उस पर तो भरोसा किया नही जा सकता। तुम्हारा धोखा आखिरी सीमा पर पहुँच गया है। तुम कहोगे कुछ, होओगे कुछ, और तुम्हें खुद भी पता नही चलता कि जो तुम कह रहे हो, वह कहाँ तक सच है, कहाँ तक झूठ है।

ऐसे सन्देह की दशा मे तुम दूसरों पर ही थोडे ही सन्देह करते हो; अपने पर भी सन्देह करते हो। सन्देह धीरे-धीरे आत्म-संशय बन जाता है। तुम्हे अपने पर भी भरोसा नही रहा है।

दादू कहते है, अब तो सपने में भी उसका बिस्मरण नही होता। इसका अगर ठीक अर्थ समझो, तो यह हुआ, अब सपने आते ही नही, उसका स्मरण ही होता है क्योंकि उसका स्मरण होता रहे, तो सपना कैसे आयेगा? स्मरण का तो अर्थ है कि नीद पूरी नीद नही है अब। कोई हिस्सा जागा हुआ है, जो स्मरण कर रहा है। दीया जल रहा है भीतर। ज्योति जल रही है। अँधेरा नही है, अन्यथा स्मरण कौन करेगा? चैतन्य की ज्योति जल रही है। अँधेरे में सपने आते है, जैसे अँधेरे मे चोर-डाकू आते है, साँप-बिच्छू आते हैं। जब दिया जलता है घर मे, तो चोर-डाकू भी दूर से निकल जाते हैं, कि घर का मालिक जागा हुआ है। जब ज्योति स्मरण की जलती है भीतर, तो सपना कैसे सम्भव है?

"सुपनै ही जनि वीसर, मुख हिरदै हरि नाम।"

मुख में भी हरि का नाम चलता रहता है, हृदय में भी हरि का नाम चलता रहता है।

इसको ठीक से समझ लेना। इसका यह मतलब नहीं है कि दादू 'हरि-हरि-हरि'—ऐसा जपते रहते हैं। इसे ठीक से समझ लेना; क्योंकि इससे भ्रान्ति होने का डर है, कि तुम जपने लगो "हरि-हरि-हरि-हरि. . . .।" उससे तुम पागल हो जाओगे। उससे कोई पहुँचता नहीं। स्मरण का अर्थ, शब्द का स्मरण नहीं है; स्मरण का अर्थ, भाव है।

जैसे माँ खाना बनाती है, उसका छोटा बच्चा कमरे में घूम रहा है। वह खाना बनाती है, लेकिन स्मरण बच्चे की तरफ लगा रहता है, कि कहीं वह कमरे के बाहर तो नहीं निकल गया। ऐसा कोई नाम नहीं लेती रहती उसका कि 'हरि-हरि-हरि ..' क्योंकि अगर नाम लेती रहे, तो बच्चे का पता ही न चलेगा कि बच्चा कहाँ निकल गया।

न; वह नाम नहीं लेती, लेकिन स्मरण की एक धारा बहती रहती है। एक सूक्ष्म अन्तर्सम्बन्ध बना रहता है। बार-बार लौट कर देख लेती है, फिर काम में लग जाती है। लेकिन काम मे लगी भी रहती है, और भीतर, एक सतत सुरति बनी रहती है, कि बच्चा कहीं बाहर तो नहीं गया! कुछ सामान तो नहीं गिरा लेगा अपने ऊपर! हाथ-पैर तो नहीं तोड लेगा! ऐसा कोई शब्दों मे सोचती नहीं, बस इसका भान बना रहता है। इस भान का नाम स्मरण है।

तो मुख मे और हृदय में एक ही भाव बना रहता है—परमात्मा है; मैं नहीं हूँ। लेकिन बहुत से लोगो ने गलती समझ ली है बात। हरेकृष्ण—हरेराम वाले लोग हैं, वे सडको पर चीखते-चिल्लाते हैं—'हरे कृष्ण, हरे राम—। वह चीखना-चिल्लाना है, उससे कुछ सार नहीं है। सार तो तब है, जब तुम बैठो, उठो, चलो, सोओ जागो, उसका भान न भूले। एक सतत अहर्निश धारा तुम्हारे भीतर उसके स्मरण की चलती रहे। उसकी भाव-धारा बनी रहे। तुम उसे भूलो न।

जैसे तुम कभी किसी के प्रेम मे पड़ जाते हो, तो तुम सब काम करते हो, लेकिन भीतर हृदय की धड़कन मे प्रेमी का स्मरण बना रहता है। तुम उसे नहीं भूल पाते। उसकी याद बनी रहती है। एक मीठी सी पीड़ा हृदय के आस-पास घनीभूत हो जाती है। एक काँटा चुभता रहता है। उस काँटे में चुभन भी है और मिठास भी है। वह चुभन भी सौभाग्य है क्योंकि वह उन्हीं के जीवन में उतरती है, जो धन्यभागी हैं, जिन्होंने श्रद्धा को पाया है, अन्यथा नहीं उतरती।

इस संसार में तुम्हारे कुछ अनुभव ऐसे हैं, जिनसे तुम्हें थोड़ी सी समझ आ

सकती है। जैसे कभी तुम किसी के प्रेम में पड़े हो तो, या तुम्हें कभी ख्याल हो, किसी गहरी चिन्ता मे तुम उलझ गये हो, तो।

विद्यार्थी, स्कूल मे परीक्षा के दिन आ जाते हैं तब रात-दिन एक ही स्मरण से भरा रहता है। रात सोता भी है, सपने भी देखता है, तो सपने भी परीक्षा देने के देखता है। एक ही याद बनी रहती है। मगर ये सब उपमाएँ ठीक नहीं हैं। ये तो सिर्फ तुम्हे इशारे देने को हैं क्योंकि परमात्मा की याद इन सबसे बड़ी भिन्न है। श्रद्धा होगी तो उसकी प्रतीति होगी।

"सुपनें ही जनि बीसरै मुख हिरदै हरि नाम ।"

एक धुन बजती रहती है अखण्ड। श्वास-श्वास मे वही डोलता रहता है।

मैंने सुना है कि एक मुसलमान फकीर हुआ—बड़े से बड़े सूफियो में एक —जलालुद्दीन रूमी। वह अल्लाह-अल्लाह का स्मरण करता रहता था। एक दिन गुजर रहा था, रास्ते से; जहाँ से गुजर रहा था, वहाँ सुनारो की दुकानें थी। लोग सोने-चांदी के पत्तर पीट रहे थे।

कुछ हुआ! जलालुद्दीन खडा हो गया। उसे लुहार सुनार, जो हथौड़ियो से पीट रहे थे सोने-लोहे के पत्तरो को, उनमे अल्लाह की आवाज सुनाई पड़ने लगी। वह नाचने लगा। वह घण्टो नाचता रहा। पूरा गाँव इकट्ठा हो गया। ऐसी महिमा उस गाँव मे कभी देखी नही गई थी। जलालुद्दीन प्रकाश का एक पुँज मालूम होने लगा। वह नाचता ही रहा, नाचता ही रहा। लुहारो के सुनारो के हथौडे बन्द हो गये, क्योंकि भीड बहुत बढ गई। वे भी इकट्ठे हो गये देखने। वह जो चोट पडती थी, जिससे अल्लाह का स्मरण आया था, वह भी बन्द हो गई, लेकिन स्मरण जारी रहा, और वह नाचता रहा।

उस रात, उस सन्ध्या दरवेश-नृत्य का जन्म हुआ।

और जब बाद मे, उसके शिष्य उससे पूछते कि तुमने इसे कैसे खोजा, तो वह कहता, कहना मुश्किल है, परमात्मा ने ही मुझे खोजा। मैं तो बाजार किसी दूसरे काम से जा रहा था। अचानक उसकी आवाज मुझको सुनाई पडी।

लेकिन यह आवाज और किसी को सुनायी नही पड़ी थी। उसके मन में एक धागा था। एक सेतु था। निरन्तर अल्लाह का स्मरण कर रहा था। उस चोट से, उसका मन तैयार था, उस तैयार मन मे.. अन्यथा कही सुनारों या लुहारो की हथौडियो से किसी को परमात्मा का बोध हुआ है!

कहते हैं नानक—वे नौकर थे एक सूबेदार के, और उसके सिपाहियों को अनाज देने का काम करते थे—एक दिन अनाज दे रहे थे, तौल रहे थे अनाज, एक—दो—तीन—,तौल कर डालते गये। ग्यारह, बारह, फिर तेरह, तो पंजाबी मे तो तेरह "तेरा" ही पुकारा जाता है।

"तेरा"—कहते ही परमात्मा की स्मृति बंध गई। फिर तो वह तौलते गये और "तेरा"—कहते गये। फिर चौदह नहीं आया। गांव भर में खबर पहुंच गई। मालिक भी भागा हुआ आया, रोका कि क्या पागल हो गये हो। लेकिन इस आदमी को रोकना मुश्किल था। इस आदमी में कोई महाशक्ति का अवतरण हुआ था। फिर मालिक ने भी कहा कि बांटने दो; क्योंकि यह नानक नहीं हैं, कुछ और अविर्भूत हुआ है। बस, उस दिन से नानक खो गये, 'तेरा' ही बचा।

नानक से कोई पूछता कि कैसे पाया, तो वे कहते, अनाज तौलते हुए पाया। 'तेरा' पर अटक गया। 'तेरा' कहते कहते कहते रूपांतरण हो गया; तेरा शब्द से एक छलांग लग गई।

भाव में धारा बंधी हो, बहाना कोई भी मिल सकता है। भीतर भाव चल रहा हो, तो पक्षियों के गीत जगा सकते हैं। और भीतर भाव न चल रहा हो, तो कृष्ण की बांसुरी भी सुनाई न पड़ेगी।

"सुपनै ही जनि वीसरै, मुख हिरदै हरि नाम।
हरि भज साफल जीवना, पर उपगार समाई।
दादू मरना तहँ भला, जहँ पशु पखी खाइ।"

"हरि भजि साफल जीवना"—दादू कहते हैं, हरि को भज कर ही जीवन की सफलता जानी।

सफल शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। अँग्रेजी मे शब्द है सक्सेस, वह वैसा अर्थपूर्ण नही हैं। और भाषाओ मे शब्द है, लेकिन सफल शब्द का कोई मुकाबला नही। सफल का अर्थ होता है—फल का लग जाना। उसका अर्थ सिर्फ सक्सेस नही है, क्योकि यह भी हो सकता है, कि एक आदमी सक्सेस हो जाये, सफल हो जाये, और फल न लगे। एक और शब्द है संस्कृत में, वह है, "सुफल"। यह भी हो सकता है कि फल लग जाये, लेकिन वह सुफल न हो। सफल [illegible] का अर्थ है, जब तुम अपने फल पर आ गये। फल आखिरी घटना है वृक्ष मे। बीज से शुरू होती है यात्रा। अकूर टूटता है, वृक्ष बनता है, फूल आते हैं, फिर फल आते हैं। फिर फल मे बीज लग जाते हैं। फल आखिरी विकास की अवस्था है। सफल का अर्थ है, कि तुम अपनी उस जगह आ गये, जहाँ फूल भी लग गये और फल भी लग गये।

मनुष्य के जीवन का फल क्या है? जब तक हरि न आ जाये जीवन में, तब तक फल नही लगता। तो अगर तुम संसार में ही रहे, तो तुम बीज की भाँति ही रहोगे और मर जाओगे। सफल होना तो दूर, तुम वृक्ष भी न हो

पाओगे। अगर तुमने संसार से थोड़ा ऊपर उठने की आकांक्षा शुरू की, तो अंकुर टूटा। तो बीज के भीतर छिपा हुआ जीवन बाहर आया। आकाश की तरफ यात्रा शुरू हुई।

अगर तुम सिर्फ आकांक्षा ही करते रहे, अभीप्सा ही करते रहे, तो वृक्ष हो जाओगे, लेकिन फूल न लगेंगे। अभीप्सा जीवन बननी चाहिए। जो तुम चाहते हो, उस यात्रा पर तुम्हे निकलना भी चाहिए। जो तुम चाहते हो, वह तुम्हारा आचरण भी बन जाना चाहिए।

जब परमात्मा की तरफ यात्रा तुम्हारा आचरण बनने लगती है, तो फूल आने शुरू हुए। तो ऐसा समझो कि संसारी—बीज; साधक—वृक्ष; साधु—फूल; और सिद्ध—तो स्वय परमात्मा हो गया—सफल। जब तक तुम परमात्मा ही न हो जाओ, तब तक हम सफल नही मानते।

इस मुल्क की आकांक्षा बड़ी गहन है। पूरब की अभीप्सा बड़ी उत्तुंग है। इससे कम पर हम राजी नही है। जब तक तुम्हारे भीतर का परमात्मा ही निखर न आये, सब कूड़ा-कचरा जल न जाये, तुम्हारा सोना ही न बच रहे तब तक हम राजी नही है, तब तक हम सफल नही कहते। धन की सफलता को हमने सफलता नही कहा है। पद की सफलता को सफलता नहीं कहा है। बस, एक प्रभु-प्राप्ति को सफल होना कहा है।

"हरि भजि साफल जीवना"—जिसने हरि को भज लिया, हरि का भजन आ गया, स्मरण आ गया, जिसके जीवन में हरि की गंध उतर आई, वह सफल हुआ।

"पर उपगार समाई"—ऐसे व्यक्ति का जीवन करुणा बन जाता है, प्रेम बन जाता है, सेवा बन जाता है।

इसे थोडा समझ लेना चाहिए। ये शब्द बड़े अनूठे हैं—"पर उपगार समाई"

तुम दूसरे का उपकार दो तरह से कर सकते हो। एक तो, कि तुम उपकार करो—चेष्टा से, विचार से, योजना से। तब यह उपकार भी तुम्हारे अहंकार को बढ़ायेगा। तब तुम उपकारी हो जाओगे। तब तुम्हें लगेगा, कितना मैंने दूसरे के लिए किया। तब तुम्हारा अहंकार बढ़ेगा।

एक और है उपकार का ढंग, कि तुम हरि को उपलब्ध हो जाओ। तुम इसके पहले उपकार की बात ही मत सोचो। उसके पहले तुम सेवा कर ही नहीं सकते। उसके पहले सब सेवा जहरीली होगी। वह तुम्हें भी खायेगी और दूसरे को भी नुकसान पहुँचायेगी।

हरि को तुम पहले पा लो, फिर तुम्हारे जीवन में एक सेवा होगी, उसे तुम्हें योजना न करनी पड़ेगी, न तुम्हें कृत्य करना पड़ेगा—वह होगी।

इसलिये दादू कहते हैं—पर उपगार समाई। तुम उसमें समा जाओगे; तुम उससे पीछे न खड़े रहोगे; तुम उपकार करते वक्त पीछे खड़े हो कर देखते न रहोगे, कि मैं उपकार कर रहा हूँ—तुम उपकार में समा जाओगे। तुम उसके साथ एक हो जाओगे, लीन हो जाओगे। तुम्हें यह भी याद न रहेगी, कि कोई धन्यवाद दे। कोई धन्यवाद देगा, तो तुम चौंकोगे, कि मैंने कुछ किया नही। और यह जो उपकार है, "उपकार" शब्द इसे पूरा नहीं कह पाता। यह तुम्हारा आनन्द होगा; यह तुम्हारा उत्सव होगा।

तो दो तरह के उपकार सम्भव हैं। एक तो ईसाई मिशनरी है, वह कर रहा है; या सर्वोदयी है, वह कर रहा है। एक तरह का उपकार वह है, कि करो सेवा; क्योंकि सेवा से मेवा मिलेगा। मगर मेवा पर नजर लगी है; सेवा उपकरण है।

एक दूसरा उपकार है, वह मेवा मिलने से होता है। मेवा मिल गया, इसलिए सेवा करता है आदमी। क्योंकि अब करे क्या? कुछ और करने को बचा नही। अब सारा जीवन उसका हो गया, अब वह जहाँ ले जाये, जाता है। जो करवाये, करता है। अब कर्ता खुद नही रहा, अब उपकरण हुआ, निमित्त हुआ।

पहले तरह की सेवा नैतिक है। दूसरे तरह की सेवा धार्मिक है। इसलिए मेरा भी जोर पहले ध्यान पर है।

विनोबा कहते हैं, सेवा धर्म है। मै नही कहता। मैं कहता हूँ, धर्म सेवा है। और फर्क भारी है। विनोबा कहते है, सेवा धर्म है। वे सेवा को धर्म से ऊपर रख रहे ह। वे कहते है, सेवा करो, तुम धार्मिक हो जाओगे। इतना आसान नही है। सेवा करने से तुम धार्मिक न होओगे। मैं कहता हूँ, धर्म सेवा है। तुम धार्मिक हो जाओ, तुम सेवक हो ही जाओगे। छाया की तरह आयेगी सेवा। यह सदा की परम्परा है।

इधर गाँधी और विनोबा ने उस परम्परा को बुरी तरह तोड़ा है। क्योंकि परम्परा यही है, कि पहले तुम प्रभु को पा लो। जब तक तुमने उसे नही पा लिया, बाँटोगे क्या? तुम्हारे पास बाँटने को क्या है? बुझे हुए दीये हो; दूसरे दीये को जलाने मत निकल जाना, अन्यथा जलों को बुझा दोगे। तुम अपने घर ही रहो, तुम्हारी अभी सेवा खतरनाक है। पहले तुम जले हुए दीये बन जाओ, फिर किसी को जला सकते हो। पहले तुम हो जाओ,

तो तुम दे सकते हो, बाँट सकते हो। जो तुम्हारे पास ही नहीं है, उसे तुम देने चले हो? तो तुम्हारी सेवा में भी अहंकार फलेगा; उसमें परमात्मा न लगेगा। उसमें तुम और अस्मिता से भरोगे, और अकड़ हो जायेगी।

सेवक को देखा, कैसा अकड़ा हुआ चलता है! क्योंकि वह कहता है, हम सेवक हैं। वह पहले पैर से शुरू करता है, पैर दबाने से, फिर गर्दन पर चला आयेगा। तुम अगर पैर पर सोचो, कि चलो करने दो मसाज, सेवक आदमी है। वह धीरे-धीरे आ जायेगा गर्दन पर। उसकी इच्छा पैर दबाने की है भी नहीं, वह तो केवल गर्दन पकड़ने का उपाय है। वह सेवा करने इसलिए आया है कि लोग कहते हैं, मेवा मिलेगा। सेवा करने से थोड़े ही उसे मेवा मिल रहा है। सेवा तो साधन है; साध्य पर नजर लगी है।

नहीं, जब कोई हरि से भर जाता है, तो उसके जीवन में सेवा होती है। वह सेवा ऐसी ही सहज है, जैसे श्वास का चलना, जैसे हृदय का धड़कना; जैसे सुबह सूरज का निकलना; जैसे रात चाँद का आना, जैसे नदियो का सागर की तरफ बहना; जैसे फूल खिल जाये, उनकी सुगन्ध का हवा मे बिखर जाना--बस, ऐसी ही सरल और सहज है।

वह उपकार नहीं है, वह किसी के उपर बोझ नहीं है। वस्तुतः जिस व्यक्ति ने सेवा की है और प्रभु को नही जाना, वह तुमसे धन्यवाद मांगेगा। और जिस व्यक्ति ने प्रभु को जाना है, और सेवा की है, वह तुम्हें धन्यवाद देगा कि तुम्हारी बडी कृपा, कि मुझे मौका दिया। इनकार भी कर सकते थे। तुम्हारा अनुग्रह है, कि तुम थोड़ी सी मेरे पास जो सपदा थी, उसे बाँटने मे साथ दिया, साझीदार बने, क्योंकि मैं बोझिल हुआ जा रहा था।

प्रभु से भरा हुआ व्यक्ति ऐसे ही है, जैसे मेघ जल से भरे। और जब कोई भूमिखण्ड प्यासा हो, उस मेघ को बरसने को राजी कर लेता है, तो मेघ धन्यवाद देता है। अन्यथा बोझ से लदा हुआ था।

"हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरणा तह भला, जह पसु पंखी खाइ।।"

और दादू कहते है जीवन तो लग गया; जीवन तो बन गया सेवा। हरि ने आकर बदल दिया सब, लेकिन मर जाऊँगा, तब भी यह आकांक्षा है कि ऐसी जगह मरूँ, जहाँ पशु-पंखी खा सके, उनका भोजन बन सकूँ। जीवन तो काम आ गया, मौत भी काम आ जाये। जीवन का तो उपयोग हो गया, सफल हुआ, मौत भी व्यर्थ न चली जाये।

तुम्हारा जीवन भी व्यर्थ जा रहा है। मौत के व्यर्थ जाने का तो सवाल ही कहाँ है? वह तो प्रश्न ही नहीं उठता। दादू कहते हैं, जीवन तो सफल हो गया, अब तेरी कृपा ऐसी हो कि मरूँ, तो ऐसी जगह मरूँ, कि मौत का भी उपयोग हो जाये। वह भी अकारण बोझ न हो। पशु-पक्षियों का भोजन बन जाऊँ।

यह थोड़ा समझने जैसा है।

इस जगत में सभी चीजें एक-दूसरे का भोजन हैं। फल पकता है, गिरता है, तुम्हारा भोजन हो जाता है। तुम मरोगे—लेकिन आदमी का अहंकार अद्‌भुत है। आदमी मरता है तो या तो उसे गड़ा देते हैं, या जला देते हैं, सिर्फ पारसियों को छोड़ कर। दादू पक्के जरथुस्त्र के अनुयायी मालूम होते हैं। अब तो पारसी भी चिन्तित हैं, वे भी विचार करते हैं कि किसी तरह यह उपद्रव बंद किया जाये। वह भी चाहते हैं जलाओ या गड़ाओ, या कोई और उपाय खोजो। यह शरीर को पशु-पक्षियों के लिए खुला छोड़ देना ठीक नहीं।

यह आदमी का अहंकार है। इस जगत मे सभी चीजें एक-दूसरे का भोजन हैं। तुमने जीवन भर भोजन किया, शरीर क्या है तुम्हारा? तुमने जो-जो भोजन किया है वही तुम्हारा शरीर है, उसे वापिस लौटा दो। जला कर क्यों नष्ट करते हो? गड़ा कर क्यों खराब करते हो? वह किसी के काम आ सकता है, काम आ जाने दो। उतना भी ऋण लेकर क्यों वापिस जाते हो? वह भी ऋण चुका दो। जो लिया था, वह दे दिया।

मेरे देखे भी पारसियो की व्यवस्था जितनी वैज्ञानिक है, किसी की भी नही। क्योंकि उससे जीवन का वर्तुल नहीं टूटता। जीवन का वर्तुल निर्मित बना रहता है। तुमने लिया था, लौटा दिया। तुमने खाया था, तुम भोजन बन गये। लेन-देन बराबर हो गया। आदमी नष्ट करता रहा है। फिर हम रो रहे हैं, परेशान हैं।

पश्चिम में एक बहुत जोर का आन्दोलन चल रहा है, उसको वे एकोलॉजी का आन्दोलन कहते हैं। वह आन्दोलन यही है, कि आदमी चीजों का उपयोग तो कर लेता है, लौटाता नहीं। तो लौटाता ही नही, तो प्रकृति बंजर होती जा रही है। भूमि सूखती जा रही है। वर्तुल टूटता जा रहा है जगह-जगह से। जगह-जगह से खण्ड हो गये है। जीवन का वह संगीत नही रहा।

हम सब लेते जाते हैं। पेट्रोल हम लेते जाते हैं जमीन से, जलाते जाते हैं, लौटाया हमने? लौटाने का कोई सवाल ही नही है। जो भी हम लेते ह प्रकृति से, उसको हम लौटाते नहीं है। जो हम लौटाते हैं—जैसे कि प्लास्टिक

को हम लौटाते हैं, प्लास्टिक के बर्तन, और प्लास्टिक के सामान--वे करोड़ों साल तक पड़े रहेंगे, उनको जमीन गला नहीं सकती। उनको जमीन पचा नही सकती। क्योंकि वह अप्राकृतिक हैं। जो भी प्राकृतिक हैं, उसे जमीन पचा लेती है; जो अप्राकृतिक है, उसे पचा नही सकती। तो वे पृथ्वी की छाती पर बोझ की तरह पड़े रहेंगे।

और यह सब प्रकृति के वर्तुल को तोड़ना है। फिर वर्षा समय पर नहीं आती, फिर धूप ज्यादा पड़ती है, कि धूप पड़ती ही नही, कि वर्षा ज्यादा हो जाती है, बाढ आ जाती है। फिर तुम परेशान होते हो।

कुछ ही समय पूर्व ऋतुएँ समय पर आती थी। सब क्रमबद्ध था। आदमी ने सब अस्त-व्यस्त कर दिया है। उसी जीवन के वर्तुल का एक हिस्सा है। चार अरब आदमी है जमीन पर। कितना भोजन चार अरब आदमियो ने अपने शरीरों मे इकट्ठा कर रखा है! ये सब जला दिये जायेंगे। तो इतना भोजन करने की क्षमता, इतनी भोजन पैदा करने की क्षमता पृथ्वी की क्षीण हो जायेगी।

आदमी को गड़ा देते है, तो भी थोडा-बहुत चला जाता है, थोड़ा-बहुत तो पृथ्वी बचा लेती है उसमे से, लेकिन बिल्कुल जला देते हैं। उसमे भी थोड़ी-बहुत बचने की सम्भावना थी। अब हम विद्युत से जलाते है, वह भी बचने की सम्भावना नही हैं। एक आदमी को हम जला देते है, राख कर देते हैं; उतना हमने जीवन की क्षमता को कम कर दिया। ऐसे पृथ्वी बांझ होती चली गई। सब अस्त-व्यस्त हो गया है।

दादू कहते है, जो लो, वह वापिस लौटा दो। भोजन किया है, भोजन बन जाओ। एक हाथ मे लिया, दूसरे हाथ से लौटा दो। अगर ठीक से समझो, तो यही तो कर्म की सारी की सारी गहन व्याख्या है, कि तुम कुछ लेकर मत जाओ, तुम पर कुछ बोझ न हो, ऋण न हो। उऋण हो जाओ। जीवन मे काम आ गये, मृत्यु मे भी काम आ जाओ।

"राम नाम निज औषधी, काटै कोटि विकार।

विषम व्याधि ये उबरै, काया कंचन सार॥"

"राम-नाम निज औषधी"--औषधि तुम्हारे भीतर है। और तुम कहाँ-कहाँ खोजते फिर रहे हो? "निज औषधी"--यह तुम्हारी अपनी है, तुम्हारे पास है और तुम वैद्यों मे पूछते फिर रहे हो।

"राम नाम निज औषधि, काटै कोटि विकार।"

और एक ही औषधि से सारे विकार कट जाते हैं। और वह औषधि बड़ी सीधी और सरल है, कि प्रभु का स्मरण भर जाये।

"विषम व्याधि ये उबरैं"—और जैसे ही तुम्हारे जीवन में प्रभु का स्मरण भरता है, तुम्हारी विषमता, असन्तुलन कम होने लगता है। तुम सम होने लगते हो; समता को उपलब्ध होने लगते हो; सन्तुलन सध जाता है। जीवन में एक संगीत और संयम आ जाता है।

"विषम व्याधि ये ऊबरैं, काया कचन सार—"और उसी अवस्था में, जब कोई व्याधि नहीं रह जाती चित्त की, कोई बिमारी नही रह जाती चित्त की, तुम परम स्वस्थ होते हो। उसी क्षण में तुम्हारे भीतर छिपा हुआ जो स्वर्ण है, वह प्रगट होता है। तब तुम्हारी यह मिट्टी, मास-मज्जा की देह, तुम्हारी अपनी देह नही रह जाती। "काया कचन सार"—तब तुम एक स्वर्ण-देह को देख पाते हो। एक अविनाशी काया का अविर्भाव होता है। तब तुम अपने भीतर उस छिपे को देख पाते हो, जिसका कोई अन्त नही है। जिसका कोई प्रारभ नही है।

"विषम व्याधि ये ऊबरैं, काया कचन सार।"

"कौन पटन्तर दीजिये"—दादू कहते है, कैसी उपमा दे? बडा मुश्किल है। क्योंकि उपमा उसकी हो सकती है, जिसके जैसी और चीजे भी हों।

'कौन पटन्तर दीजिये, दूजा नाही कोय।'

अब उस घड़ी की हम किस बात में तुलना करे? किस बात से उपमा दें? जब व्यक्ति परम स्वास्थ्य को उपलब्ध होता है और स्वर्ण-काया उपलब्ध होती है, बुद्ध-काया उपलब्ध होती है, सार-सार बच रहता है, असार-असार छूट जाता है; शुद्ध चैतन्य का अविर्भाव होता है, एक महिमा-मण्डित अमृत-जीवन का जन्म होता है, उसे किस तरह हम समझायें? कौन सी उपमा दें? क्योंकि जो भी हम कहेंगे, वह छोटा पड़ता है। यह क्यों दादू को कहना पड रहा है? क्योंकि इसके पहले उन्होंने जो उपमा दी है, उसकी वजह से। उपमा क्या दी है? "राम-नाम निज औषधि"—राम-नाम को औषधि बताना पड़ा है। औषधि कहना राम-नाम को, बहुत छोटी बात कहनी है। पर क्या करो? मजबूरी है।

....'काटै कोटि विकार।

विषम व्याधि ये उबरैं, काया कंचन सार॥'

उसे स्वर्ण-काया कहा है, लेकिन क्या कहो? सोने से क्या लेना-देना उसका? तुम्हारे लिए सोना बहुत मूल्यवान है, इसलिये दादू को कहना पड़ता है, कि

वह काया स्वर्ण की है। बड़ी बहुमूल्य है, लेकिन उसका कोई भी मूल्य नहीं हो सकता। सोना भी वहाँ मिट्टी है।

"कौन पटन्तर दीजिये, दूजा नाहीं कोय।"—कैसे उसकी उपमा दें? कोई दूसरी वैसी घटना नहीं।

'राम सरीखा राम है, सुमिर्‌या ही सुख होय।'

बस, राम सरीखा राम है। मत पूछो, राम कैसा है? मत पूछो, ईश्वर कैसा है? मत पूछो, आत्मा कैसी है? क्योंकि कोई उत्तर दिया नहीं जा सकता।

'राम सरीखा राम'—तब फिर एक ही उपाय है: पूछो मत परिभाषा, स्वाद लो। 'सुमरिया ही सुख होय।' स्वाद लो, सुमिरण करो। यह मत पूछो, कि परमात्मा कैसा है। इतना ही पूछो, कि परमात्मा कैसे हो सकता है। यह मत पूछो, कि सत्य क्या है; इतना ही पूछो कि मेरी आँख सत्य के लिये कैसे खुल सकती है। क्योंकि बंद आँख वाले आदमी के पास कोई भी अनुभव नहीं है, जिससे सत्य की उपमा दी जा सके। और जो भी उपमा हम देंगे, आखिर में सब झूठी सिद्ध होगी। कोई परिभाषा नहीं हो सकती।

परिभाषा का मतलब ही होता है, एक को दूसरे से समझाना। अगर तुम्हारे गाँव में गुलाब के फूल नहीं होते, तो भी दूसरे फूल होते हैं। और अगर कोई यात्री गुलाब के फूल की खबर लाये, और तुम पूछो, कैसे? तो कह सकता है। तुम्हारे गाँव के फूलों से तुलना दे सकता है। कहेगा कि इनसे भिन्न होते हैं, लेकिन कोई रास्ता बनाया जा सकता है, कि समझा दे तुम्हें। कम से कम फूल तुम्हारे गाँव में भी होते हैं। वह जो फूलने की क्रिया है, वह तुम्हारे गाँव में भी घटती है। खिलने की क्रिया तुम्हारे गाँव में भी घटती है। लाल फूल भी तुम्हारे गाँव में होते हैं। गुलाब के बराबर फूल भी तुम्हारे गाँव में होते हैं। कोई सुगंध भी तुम्हारे गाँव में खोजी जा सकती है, जो गुलाब की सुगंध की थोड़ी सी झलक दे दे।

लेकिन परमात्मा का फूल तो तुम जिस गाँव में रहते हो, वहाँ लगता ही नहीं। वहाँ उस जैसी कोई घटना ही नहीं घटती।

धन से उपमा दे, बड़ी ओछी मालूम पड़ती है; धन तुम्हारा परमात्मा है। पद से उपमा दे, बड़ी ओछी मालूम पड़ती है; पद तुम्हारा परमात्मा है। फिर भी उपमा दी गई है। सन्तों ने उसे परम पद कहा है। सन्तों ने उसे परम धन कहा है। करें क्या? मजबूरी है। धन तुम्हारा परमात्मा है, उससे तुम समझोगे थोड़ा-बहुत। पद तुम्हारा परमात्मा है।

निकटतम जो उसके पहुँच सकती है बात, वह भी पहुँच नहीं पाती। वह है, प्रेम। इसलिये ईसा ने परमात्मा को प्रेम कहा है। लेकिन वह भी

पहुँच नहीं पाती, क्योंकि प्रेम तुम्हारा इतना कीचड़-सना है; क्योंकि उससे डर है, कि तुम कुछ गलत ही समझ जाओ।

जीसस ने प्रेम कहा है परमात्मा को। यह नही कहा, कि परमात्मा प्रेमी है। यह भी नहीं बताया, किसको प्रेम करता है? कौन प्रेयसी है? परमात्मा को ही प्रेम कहा है। परमात्मा प्रेम से अलग नही है। वह प्रेम की भाव-दशा है। लेकिन भूल संभव है, हमेशा संभव है।

तुमने प्रेम को जाना है वासना की कीचड़ मे सना हुआ। तुम्हारे परमात्मा की तस्वीर में भी कीचड़ आ जायेगी। अभी स्वीडन में वे एक फिल्म बना रहे हैं, "सेक्स लाइफ आफ जीसस"--जीसस का काम-जीवन। जो बना रहे हैं, उनका ख्याल है कि जब जीसस ने इतना महत्व दिया है प्रेम को; तो जरूर उनका काम-जीवन रहा होगा। कीचड आ गई! तुम सोच ही नही सकते कि जीसस का जीवन, कैसा जीवन रहा होगा। स्वाभाविक है, तुम अपनें से ही सोच सकते हो। तुम्हारा गणित तुमसे ही शुरू होगा। इसलिये दादू ठीक ही कहते हैं--कौन पटन्तर दीजिये, दूजा नाही कोय।

'राम सरीखा राम है, सुमिर्‌या ही सब सुख हो।'

इसलिये मत पूछो, कि राम क्या है—इतना ही पूछो, कि उसका स्मरण कैसे करें।

बुद्ध ने बार-बार कहा है, मत पूछो सत्य क्या है। इतना ही पूछो, सत्य कैसे पाया जाता है? विधि पूछो, सत्य मत पूछो। प्रकाश क्या है, यह मत पूछो, इतना ही पूछो कि आँख कैसे खुलती है। प्रकाश तो, जब तुम्हारी आँख खुलेगी, तभी तुम जान सकोगे।

"नांव लिया तब जाणिये, जे तन-मन रहे समाइ।"—तभी जानोगे, जब नाम लोगे। जब उसके स्मरण से भरोगे, थिरकोगे, नाचोगे। पागल हो उठोगे, उस दीवानेपन में ही जानोगे। पियोगे उसकी शराब, तभी जानोगे--नाव लिया तब जाणिये—

और कोई जानने का उपाय नही। पढो शास्त्र, सुनो व्याख्याएँ, उससे कुछ भी लाभ न होगा, कोई इशारा भी न मिलेगा। भटकने की सम्भावना है, पहुँचने की नही।

नांव लिया तब जाणिये, जे तनमन रहा समाई।

—और नाम ऐसा, जो तन में और मन मे समा जाये। रोयें-रोयें में समा जाये। जो तुमसे भिन्न न हो; तुम्हारी श्वास बन जाये, तुम्हारी हृदय की

धड़कन बन जाये। तुम उसमें ऐसे लिप्त और सिक्त हो जाओ, कि कोई फासला न रहे।

"आदि, अंत, मध एक रस, कबहूँ भूलि न जाइ।"

ये शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं—आदि, अन्त, मध एक रस।

दुनिया में तीन तरह की सम्भवनाएँ हैं अनुभव की। एक अनुभव है, जिसको हम दुःख कहते हैं। और संत कहते हैं, कि दुःख का अनुभव, शुरू में तो सुख का है और बाद में दुःख का है। जिसको तुम सुख कहते हो, उसको सन्त दुःख कहते हैं। तुम्हारे सुख का अनुभव पहले तो सुख का है, पीछे दुःख का है। हर सुख तुम्हें दुःख में ले जाता है। इसलिये तुम्हारे सुख को, संत दुःख ही कहते हैं।

फिर एक दूसरा अनुभव है, जिसको संत सुख का अनुभव कहते हैं। वह पहले तो दुःख देता है, बाद में सुख देता है। तुम उसे दुःख कहते हो, संत उससे सुख कहते हैं, उसका ही नाम तपश्चर्या है। पहले दुःख, फिर सुख। तो ये तो दो; और तीसरा, जिसको संत आनंद कहते हैं। आदि, अंत, मध एक रस —जो शुरू में भी सुख, मध्य में भी सुख, अंत में भी सुख। अगर तुम ऐसा कोई सुख खोज लो, तो आनन्द है। वही परमात्मा का स्मरण है, वही समाधि-रस है। जो सदा सर्वकाल में, तीनों काल में, प्रारंभ में, मध्य में, अंत में सदा ही एक रस है।

तुमने दो तरह के अनुभव जाने हैं। किसी स्त्री से प्रेम हो गया, बड़ा सुख मालूम होता है, जल्दी ही दुःख मालूम होगा। विवाह करो घर बसाओ, दुःख शुरू हुआ—अड़चन, झंझट, कलह! इधर विवाह पूरा नहीं हो पाता, कि तलाक की तैयारी शुरू हो जाती है। तुमने जितने भी सुख जाने हैं, सब ऐसे ही हैं कि शुरू में सुख होता है, पीछे दुःख आ जाता है।

सुख तो लगता है सिर्फ ऐसा ही है कि जैसे मछली को पकड़नेवाला काँटे पर आटा लगा देता है। मछली आटे को खाने के लिये आती है, काँटे को पकड़ने के लिये नहीं, पकड़ी जाती है काँटे में।

तुम सब गौर करो, तुम सबके मुँह आटे के लिये खुले थे, पकड़े गये काँटे में। अब काँटा छिदा है। सबके मुँह में काँटे छिदे हैं। वे किसी सुख की आकाँक्षा में गये थे, पाया दुःख।

इस अनुभव के कारण, समझदारों ने सोचा कि इसको उलटा कर लें, शीर्षासन कर लें। दुःख को साधें। जब सुख को साधने से दुःख मिलता है, तो दुख को साधने से सुख मिलेगा। गणित बिलकुल साफ था।

इसलिये तपश्चर्या के अनेक रूप पैदा हुए। दुःख को साधो, खड़े हैं धूप में, काँटे के बिस्तर बिछा कर सो रहे हैं। इसमें सच्चाई है, कि जो लोग इसको साध लेते हैं, उनको पीछे सुख मिलता है। सुख मिलता है, क्योंकि उनको दुःख मिलना मुश्किल हो जाता है। दुःख तो उन्होंने खुद ही साध लिया, अब उनको दुःख तो आप दे नही सकते।

जो आदमी धूप में खड़ा है, भूखा प्यासा खड़ा है, जिसने उसको साध लिया, उसको अब भूख का दुःख नहीं दिया जा सकता, धूप का दुःख नहीं दिया जा सकता। जो आदमी काँटों की सेज पर सोया है, अब कोई भी सेज उसे स्वर्ग की सेजें मालूम पड़ेंगीं, इस काँटे की सेज के मुकाबले। उसको पीछे सुख ही सुख मालूम पड़ेगा। मगर दोनों ही एक से हैं। सिर्फ तुमने सिक्के को उलटा कर लिया।

आनन्द बिलकुल तीसरी घटना है। "आदि, अंत, मध एक रस कबहूँ भूलि न जाइ।" और जब ऐसी घटना घटती है, तो कैसे भूली जा सकती है?

"नांव लिया तब जाणिये, जे मन रहे समाइ।

आदि अंत मध एक रस, कबहूँ भूल न जाइ।।"

प्रभु स्मरण आनन्द की घटना है, सुख की नही। और जो उसे शुरू करता है, शुरू से ही सुख शुरू होता है। सुख बढ़ता ही चला जाता है। सुख महासुख हो जाता है। और सुख का ऐसा नाद भीतर बजने लगता है, कि रोआं-रोआं उसी में डूब जाता है। तुम उसमें ही जीते हो, उसमें ही होते हो। वह तुम्हारा होना हो जाता है, तुम्हारा अस्तित्व बन जाता है।

इसे कैसे समझाये ?

"कौन पटन्तर दीजिये, दूजा नाही कोय।

राम सरीखा राम है, सुमिरया ही सुख होय।।"

सुमरोगे, तो ही जानोगे, कि उसके जैसा बस वही है।

जिज्ञासा-पूर्ति : दो

प्रवचन : चार, दिनांक १४.७ १९७५, प्रातःकाल श्री रजनीश आश्रम, पूना



पहला प्रश्न : सच्ची और गहरी प्यास स्वयं परमात्मा तक पहुँचा देती है फिर आप बार-बार गुरु की महिमा बतला कर क्या हमें पंगु नहीं बना रहे हैं ?

पंगु तुम हो ! और ज्यादा पंगु तुम बनाये नहीं जा सकते। अंधे तुम हो, आँख को और ज्यादा बंद करने की कोई व्यवस्था की नहीं जा सकती।

गुरु की महिमा सुन कर चोट कहाँ लगती है? अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है गुरु की महिमा सुन कर। निरहंकारी तो अहोभाव से भर जाता है। गुरु की महिमा उसके भीतर एक अमृत की वर्षा बन जाती है, लेकिन अहंकारी को बड़ी पीड़ा लगती है। क्योंकि गुरु की महिमा का अर्थ है, तुम्हें मिटना पड़ेगा।

गुरु का अर्थ है, तुम्हें "न" हो जाना पड़ेगा। जब तक तुम हो, तब तक गुरु न हो सकेगा। गुरु मृत्यु है। वह तुम्हें मिटायेगा, पोंछ डालेगा बिलकुल। इससे घबड़ाहट होती है। इससे गुरु की महिमा सुन कर कहीं न कहीं चोट लगती है। चोट लगती हो, तो गौर से देखना भीतर, अहंकार खड़ा है। और वह अहंकार बड़ा चालाक है, वह बड़े तर्क, बड़ी दलीलें खोजता है। उसी अहंकार ने यह दलील खोज ली है।

सच्ची और गहरी प्यास स्वयं परमात्मा तक पहुँचा देती है। लेकिन सच्ची और गहरी प्यास पाओगे कहाँ? अगर होती, तो तुम परमात्मा तक पहुँच गये होते; मेरे पास आने की कोई जरूरत न थी।

कौन तुम्हें बतायेगा, कि कौन सी प्यास सच्ची है और कौन सी झूठी? कौन तुम्हें समझायेगा कि कौन सी प्यास गहरी है और कौन सी उथली? कौन तुम्हें जगायेगा कि क्या प्यास है और क्या प्यास नहीं? अगर तुम यह कर ही लेते, तो कितने जन्म तुमने बिताये हैं अब तक, कर क्यों नहीं पाये?

अकड़! कहीं झुकना न पड़े। किसी से सीखना न पड़े। सीखना इतना पीड़ादायी है, शिष्य होना ऐसा काँटे की तरह चुभता है। क्योंकि शिष्य का अर्थ है, खुलो, शिष्य का अर्थ है कि किसी और को आने दो, हृदय के सिंहासन पर विराजमान होने दो। वहाँ अहंकार कब्जा किये बैठा है। वह अहंकार तुम्हें बहुत बातें समझायेगा, तुमसे कहेगा, इसकी क्या जरूरत है; तुम खुद ही तो परमात्मा हो!

ठीक है यह बात, कि तुम परमात्मा हो। लेकिन इसका तुम्हे अनुभव नहीं है। और जब तक अनुभव न हो, तब तक यह बात दो कौडी की है। यह बात सच है कि गहरी प्यास पहुँचा देती है, लेकिन गहरी प्यास हो तब न! गुरु थोड़े ही पहुँचाता है, गहरी प्यास ही पहुँचाती है। लेकिन गुरु गहरी प्यास को जगाता है। गुरु, परमात्मा थोड़े ही दे सकता है तुम्हें। परमात्मा तो तुम्हें मिला ही हुआ है। गुरु केवल तुम्हें जगा सकता है, ताकि तुम वही देख लो, जो कि तुम्हारे भीतर छिपा है।

और बड़े मजे की बात है कि गुरु तो एक बहाना है। गुरु के बहाने तुम झुकना सीख जाते हो। और किसी दिन गुरु के चरणो में झुके-झुके तुम अचानक पाते हो: गुरु के चरण तो चले गये, परमात्मा के चरण हाथ मे है। गुरु तो बहाना था, जिसके बहाने तुमने झुकना सीख लिया। जिसने झुकना सीख लिया वह परमात्मा के पास पहुँच जाता है।

लेकिन गुरु के बिना तुम झुकना न सीख पाओगे, गुरु के बिना तो तुम अकड़े रह जाओगे।

वही तो हुआ है कृष्णमूर्ति के शिष्यो मे। सुन रहे है वर्षों से, कि गुरु की कोई जरूरत नही है। यह सुनकर अहंकार को बडी तृप्ति मिलती है। कृष्णमूर्ति के पास अहंकारियों की जमात इकट्ठी हो गई है। वहाँ तुम्हे विनम्र आदमी खोजे न मिलेगा, क्योंकि जिनका अहंकार झुकना नही चाहता, उन्हे कृष्णमूर्ति की बात बहुत जँचती है। और बात बिलकुल सही है; लेकिन जँचना बिलकुल गलत है।

कभी-कभी तुम ठीक बात को भी गलत कारण से पकड़ लेते हो। बात तो बिलकुल ठीक होती है, लेकिन कारण तुम्हारा बिलकुल गलत होता है। कभी-कभी तुम सच का उपयोग झूठ की तरह करते हो। तुम सच का उपयोग ही किसी को चोट पहुँचाने के लिये करते हो, तब सत्य हिंसा बन जाता है।

इसलिये जाननेवालों ने, महावीर ने, पतंजलि ने, बुद्ध ने, सत्य के भी पहले अहिंसा को रखा है। उसका कुल कारण एक ही है कि अगर अहिंसा हो,

तो ही तुम सत्य बोल सकोगे। अन्यथा तुम एक आँखवाले आदमी को देखकर काना कहोगे। दिल तो होगा दुख पहुँचाने का, लेकिन तुम कहोगे कि मैं सत्य बोल रहा हूँ। इसलिये सारे ज्ञानियों ने अहिंसा को पहला व्रत माना है। सत्य को पीछे रखा है। सत्य खतरनाक हो सकता है।

कृष्णमूर्ति जो कह रहे हैं, वह बिलकुल सत्य है, लेकिन सुननेवाला गलत कारण से सुन रहा है। सुननेवाला गलत कारण से पकड़ रहा है। सुननेवाला झुकना नहीं चाहता है। कृष्णमूर्ति में सहारा मिल गया। सुननेवाला गुरु होना चाहता है, शिष्य नही होना चाहता। कृष्णमूर्ति में बहाना मिल गया। लेकिन वर्षों तक सुनने के बाद कोई कहीं पहुँचता हुआ दिखाई नही पड़ता।

कृष्णमूर्ति का सुननेवाला बड़ा वर्ग मुझसे संबंधित रहा है। उनमें से एक को भी मैं पहुँचता हुआ नहीं देखता। और वे सभी मुझसे आ कर कहते हैं कि क्या करें? बात तो सब समझ मे आती है, लेकिन परिवर्तन कुछ भी नहीं हो रहा है। परिवर्तन होगा भी नही; बात गलत जगह सहारा दे रही है; रोग के लिये औषधि भोजन बन रही है।

तुम कहते हो, कि गुरु की महिमा सुन-सुन कर तुम पंगु न बन जाओगे?

अगर तुम पंगु न होते, तो तुम यहाँ आते ही नही। तुम यहाँ आये ही इसलिये हो कि तुम पंगु हो और तुम चलना सीखना चाहते हो। तुम पंगु भी हो, लेकिन तुम अहंकारी भी हो, कि तुम किसी का सहारा लेकर चलना भी नही सीखना चाहते। तुम चलना भी सीखना चाहते हो, लेकिन किसी को धन्यवाद भी देना पड़े, इतनी भी उदारता तुम्हारे हृदय मे नही है कि किसी के प्रति कृतज्ञ होना पड़े, अनुगृहीत होना पड़े कि किसी ने चलाया। तुम्हारा अहंकार इतना सा धन्यवाद भी न दे सकेगा। और गुरु ने कुछ माँगा नहीं है कभी, धन्यवाद भी नही माँगा है।

गुरु की महिमा का एक ही अर्थ है, कि मैं तुम्हारे अहंकार की निन्दा कर रहा हूँ। अगर तुम मेरी बात ठीक से समझो, तो गुरु से क्या लेना-देना? गुरु की महिमा कह रहा हूँ इसलिए, ताकि तुम्हारा अहंकार निन्दित हो जाये। गुरु की चर्चा कर रहा हूँ इसलिए, ताकि तुम झुकना सीख जाओ। तुम शिष्य होने के लिए आतुर हो जाओ—गुरु की महिमा में बस, इतना ही राज़ है।

झुकोगे तुम गुरु के चरणों में, उठ कर तुम पाओगे कि गुरु तो विसर्जित, विलीन हो गया है, परमात्मा के चरण हाथ में आ गए हैं। क्योंकि जो झुक गया, उसके हाथ में परमात्मा के चरण आ जाते हैं। तब तुम गुरु को धन्यवाद दोगे, कि तेरी कृपा कि तूने हमें झुकना सिखा दिया।

झुकते ही मिल गया, जिसे हम खोये थे। झुकते ही जान लिया, जिसे जानने की बड़ी प्यास थी।

दूसरा प्रश्न : जीवन-ऊर्जा के शीघ्र से शीघ्र रूपांतरण के लिए कौन सी ध्यान की विधि उपयोगी होगी? भीतरी योगाग्नि को जागृत करने के लिए सूर्य-त्राटक की क्या उपयोगिता है?

पहली तो बात, "शीघ्र से शीघ्र" की दृष्टि ही गलत है। उसका अर्थ है, कि तुम प्रतीक्षा करने को जरा भी तैयार नहीं हो। उसका अर्थ है, कि तुम बड़ी जल्दी में हो। उसका अर्थ है कि तुम बड़े तनाव में हो, बड़े अधैर्य में। परमात्मा को वे ही पा सकते है, जिनकी जीवन-चेतना में जल्दी का रोग प्रविष्ट नही हुआ है; जो प्रतीक्षा करने को राजी है।

प्रतीक्षा वरदान है।

प्रतीक्षा का अर्थ है, कि तू इतना विराट है, कि अनन्त जन्मों तक भी प्रतीक्षा करनी पडे और फिर तू मिले, तो भी जल्दी ही मिल गया। प्रतीक्षा का अर्थ है, कभी भी तू मिलेगा, अनंत काल में भी, तो भी तू जल्दी मिल गया; क्योंकि मेरी पात्रता ही क्या थी? तब भी मिलना ही चाहिए, ऐसी कोई पात्रता तो नही थी। तू अगर न मिलता, तो शिकायत क्या थी।

और जितनी तुम जल्दी करोगे, उतनी देर हो जायेगी। और तुम्हे पता है? कभी-कभी तुम्हे साधारण जीवन मे भी अनुभव हुआ है कि जल्दी ट्रेन पकड़नी है, उस दिन और देर होने लगती है। कोट की बटन नीचे की ऊपर लग जाती है। उल्टा जूता पैर में चला जाता है। कुछ रखना था सूटकेस में, कुछ और रखा जाता है। चाबी घर ही भूल आते हो। टिकट टैक्सी में छूट जाती है। बडी जल्दी मे थे। जितनी जल्दी में होते हो, उतनी देर लगती है। क्योंकि जल्दी, समय को नष्ट करती है। जल्दी, समय को जलाती है। और जल्दी का अर्थ है, मन तनाव मे होता है, अशांत होता है। बड़ी तरंगें और बड़ी लहरें मन मे होती है।

जितने धीरज से तुम चल सको, उतने जल्दी तुम पहुँचते हो। और अगर तुम अनंत प्रतीक्षा के लिए राजी हो, तो इसी क्षण घटना घट सकती है।

ये वक्तव्य विरोधाभासी मालूम पड़ेंगे। मैं यह कह रहा हूँ कि, अगर जल्दी चाहिए हो, तो जल्दी मत करना। मैं यह कह रहा हूँ कि अगर जल्दी न चाहिए हो, तो जितनी जल्दी करना हो, करना। वह मन, जो बहुत आतुर हो कर लगा है और जल्दी मे है, कभी पहुँच न पायेगा। क्योंकि परमात्मा को मिलने का रास्ता शान्त होना है। जल्दी तो अशान्ति है।

प्रतीक्षा करो। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं यह कह रहा हूँ कि, प्यासे मत बनो। प्यास तो तीव्र हो, प्रतीक्षा अनंत हो। प्यास तो ऐसी हो जैसे अभी चाहते हो और प्रतीक्षा ऐसी हो कि जैसे कभी भी मिलेगा, तो भी जल्दी है। ये दो गुण जब तुम्हारी जीवन-धारा में जुड़ते हैं---

सूफी फकीर बायजीद अपने शिष्यों को कहा करता था, कि हर काम ऐसे करो, जैसे यह आखिरी दिन है। आलस्य का उपाय नही है। हर काम ऐसे करो, जैसे यह जीवन का आखिरी दिन है। यह सूर्यास्त आखिरी सूर्यास्त है, अब कोई सूर्योदय नही होगा। कोई कल नहीं है, बस आज सब समाप्त है। हर काम ऐसे करो कि यह आखिरी दिन है। और हर काम ऐसे भी करो, कि जीवन अनंत काल तक चलेगा। कोई जल्दी नही है।

बड़ा विरोधाभास है। ये तुम दोनों बात एक साथ कैसे साध सकोगे? ये साधी जाती है। ये सध जाती है। और जिस दिन ये सधती हैं, तुम्हारे भीतर एक ऐसा अपूर्व सगीत जन्मता है, जिसमें प्यास तो प्रबल होती है, प्रतीक्षा भी उतनी ही प्रबल होती है।

प्यास तो तुम्हारी होती है, तुम जलते हो, आग की लपट बन जाते हो, व्याकुलता गहन होती है। यह तुम्हारी दशा है, लेकिन इस कारण तुम परमात्मा से यह नही कहते, कि तू अभी मिल। तुम परमात्मा से कहते हो, यह प्यास मेरी है, मै जलूँगा, लेकिन मै राजी हूँ, जब तुझे मिलना हो, तेरी सुविधा से मिल। मै द्वार पर बैठा रहूँगा। मै दस्तक भी न दूंगा। मै प्यासा रहूँगा। मेरी प्यास एक अग्नि बन जायेगी। अगर वही मेरे द्वार पर दस्तक बन जाये तो पर्याप्त है, लेकिन मै और जल्दी न करूँगा।

यह भक्ति का रसायन है। यह भक्ति का पूरा शास्त्र है कि तुम मांगो भी और जल्दी भी न करो। प्रार्थना भी हो, और होंठ पर मांग भी न आये।

बायजीद जब प्रार्थना करता था, तो कभी उसके होठ न हिलते थे। शिष्यों ने पूछा, हम प्रार्थना करते हैं, कुछ कहते हैं, तो होंठ हिलते हैं। आप के होंठ नही हिलते? आप पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े हो जाते है। आप कहते क्या है भीतर? क्योंकि भीतर भी आप कुछ कहेंगे, तो होंठ पर थोड़ा कंपन आ जाता है। चेहरे पर बोलने का भाव आ जाता है, लेकिन वह भाव भी नही आता।

बायजीद ने कहा, कि मैं एक बार एक राजधानी से गुजरता था, और एक राजमहल के सामने सम्राट के द्वार पर मैंने एक सम्राट को भी खड़े देखा, और एक भिखारी को भी खड़े देखा। वह भिखारी बस खड़ा था।

फटे-चीथड़े थे शरीर पर। जीर्ण-जर्जर देह थी, जैसे बहुत दिन से भोजन न मिला हो। शरीर सूख कर काँटा हो गया। बस आँखें ही दीयों की तरह जगमगा रही थीं। बाकी जीवन जैसे सब तरफ से विलीन हो गया हो। वह कैसे खड़ा था यह भी आश्चर्य था। लगता था अब गिरा-अबगिरा—! सम्राट उससे बोला कि बोलो क्या चाहते हो?

उस फकीर ने कहा, 'अगर मेरे, आपके द्वार पर खड़े होने से, मेरी माँग का पता नही चलता, तो कहने की कोई जरूरत नहीं। क्या कहना है और? मैं द्वार पर खड़ा हूँ, मुझे देख लो। मेरा होना ही मेरी प्रार्थना है।'

बायजीद ने कहा, उसी दिन से मैंने प्रार्थना बंद कर दी। मैं परमात्मा के द्वार पर खड़ा हूँ। वह देख लेगा। मै क्या कहूँ? और अगर मेरी स्थिति कुछ नहीं कह सकती, तो मेरे शब्द क्या कह सकेंगे? और अगर वह मेरी स्थिति नही समझ सकता, तो मेरे शब्दों को क्या समझेगा?

भक्त जलता है। बड़ी गहन पीड़ा है उसकी। गहनतम पीड़ा है भक्ति की। उससे बडी कोई पीड़ा नही। और मिठास भी बड़ी है उस पीड़ा में, क्योंकि वह एक मीठा दर्द है, और परम प्रतीक्षा भी है उसमें। भक्त रुक सकता है, अनत काल तक रुक सकता है। और जिस दिन तुम अनंत काल तक रुकने को तैयार हो, उसी क्षण घटना घट जाती है। उसके पहले घटना न घटेगी। उतने धैर्य में ही शांति घटित होती है। उसी शाति में द्वार खुलता है।

अधैर्य छोड़ो।

सारी ध्यान की विधियाँ धैर्य सिखाने को है, जल्दबाजी सिखाने को नहीं। यह तुम मुझसे पूछो ही मत शीघ्र से शीघ्र रूपातरण के लिए। इतनी जल्दी भी क्या है? प्रकृति बड़ी शांति से बहती है। स्वभाव चुपचाप चलता है। स्वभाव समय को मानता नहीं। वह शाश्वत है। फूल जल्दी नहीं करते। वृक्ष जल्दी नही पकते—रुकते हैं, राह देखते हैं। चाँद-तारे भागते नही, अपनी गति को स्थिर रखते हैं।

मैंने सुना है, ईश्वरचद्र विद्यासागर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उनके पाण्डित्य की खबर सारी दुनिया में पहुँच गई। और गवर्नर जनरल ने—तब राजधानी कलकत्ता हुआ करती थी—उन्हें सन्मानित करने राजदरबार में बुलाया।

तो वे गरीब आदमी थे। फटे-पुराने कपड़े थे। मित्रों ने कहा, यह ठीक नही। तुम्हारी प्रतिष्ठा भारत की प्रतिष्ठा है। तुम इन कपड़ों में जाओगे, अच्छा न लगेगा। दरबार में जाने योग्य ये कपड़े नही हैं। हम तुम्हें अच्छे कपड़े बना देते है।

पहले तो उन्होंने इन्कार किया, लेकिन फिर उन्हें बात समझ में आ गई, कि यह उचित न होगा। और इसमें गवर्नर जनरल का भी अपमान है, वह नाराज हो सकता है। व्यवस्थित कपड़ों में जाना जरूरी है। तो वे राजी हो गए। लेकिन मन में थोड़ी बेचैनी रही।

कल सुबह जाना है और आज की सांझ वह घूमने गए हैं, बगीचे की तरफ, जब वहां से लौट रहे हैं, तो उनके सामने एक मुसलमान बड़ी शांति, शांति से टहलता हुआ चल रहा है, उनके आगे-आगे। नौकर एक भागा हुआ आया और उसने मुसलमान से कहा—मीर साहब ! आपके घर में आग लग गई।

लेकिन मीर साहब के कदमों में फर्क न पड़ा। वही चाल रही, वही ढंग से छड़ी हिलती रही। वही गति रही। उसमें रत्तीभर फर्क न पड़ा, जैसे कुछ भी नहीं हुआ है। नौकर समझा कि शायद मीर साहब समझे नहीं, सुने नहीं।

नौकर एकदम व्याकुल है, पसीने से लथ-पथ है, हांफ रहा है, घबरा रहा है। संपत्ति किसी और की जल रही है। नौकर सिर्फ नौकर है। उसका कुछ भी नहीं जा रहा है। जिसकी संपत्ति जल रही है, वह शांति से चल रहा है। उसने फिर से कहा, मकान में आग लग गई है। आप समझे कि नहीं? आप किस ख्याल में डूबे हैं? दौड़िये! राख हुआ जा रहा है सब!

मुसलमान ने अपने नौकर से कहा, नासमझ, क्या साधारण से मकान के जलने के कारण अपने जीवनभर की चाल छोड़ दूं? और फिर मकान तो जल ही रहा है। मेरे दौड़ने से मैं भी जलूंगा? जलने दे मकान! और मेरे दौड़ने से कुछ बुझेगा नहीं, लेकिन मैं भी जल उठूंगा। अब मेरा ख्याल इतना ही है कि मकान तो गया, अपने को बचा लूं।

विद्यासागर पीछे-पीछे थे, सुनी यह बात, चोट कर गई। सोचा कि यह आदमी--मकान मे आग लग गई है—और चाल बदलने को राजी नहीं है और मेरे मकान मे आग नहीं लगी है, और मैं कपड़ा बदलने को राजी हूं। नहीं, कल ऐसे ही, जाऊंगा।

तुम जब जल्दी में हो, तब आग तुम्हारे भीतर लग जाती है। संसार तो वैसे ही जल रहा है। तुम अपने को बचा लो, बस इतना ही काफी है। ससार जल ही जायेगा। और तुम्हारे बचने का एक ही रास्ता है, कि तुम्हारी शांति में, तुम्हारे धर्म में, तुम्हारी प्रतीक्षा में कोई अंतर न पड़े।

धैर्य को ही ध्यान बनाओ; प्रतीक्षा को प्रार्थना। फिर देखो, कितनी जल्दी उसकी घटना घट जाती है। इस क्षण भी घट सकती है। एक क्षण भी रुकने की कोई जरूरत नहीं है और रुकना पड़ रहा है, तो इसलिए क्योंकि तुम

बहुत जल्दी मे हो, अगर तुम पूरी तरह छोड़ दो, तो इसी क्षण घटना घट जायेगी। एक और क्षण खोने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि तुम शांत हो गए। तुम्हारी भाग-दौड़ के कारण ही तुम नही देख पाते हो। जो मौजूद है, भाग-दौड़ के कारण दिखाई नहीं पडता। आँखें धुधली हैं, दौड़ में लगी हैं। रुको और पा लो।

तो मेरा सूत्र ध्यान रख लो—जो दौड़ेगा, वह चूकेगा। जो रुकेगा, वह पा लेगा। माँगोगे, कभी न मिलेगा। चुप रहो, मिला ही हुआ है।

और सूर्य-त्राटक इत्यादि सब शारीरिक बातें हैं। उन सब उलझनों में मत पड़ना। भीतर की आँख के खुलने का तो पक्का नही, बाहर की आँखे खराब हो सकती है।

तीसरा प्रश्न ध्यान का फल आत्मदर्शन है क्या? और श्रद्धा को कैसे उपलब्ध हुआ जाये?

श्रद्धा को उपलब्ध होने का एक ही उपाय है, श्रद्धा करना। और कोई उपाय नही।

जैसे कोई पूछे कि तैरना कैसे सीखा जाए? क्या करो? तैरना ही एक उपाय है। उतरो पानी मे, हाथ-पैर तड़फड़ाओ। एकदम से न आ जायेगा तैरना। लेकिन हाथ-पैर तड़फड़ाना तैरने की शुरुआत है। तैरना है क्या? हाथ-पैर तडफड़ाने की प्रक्रिया को थोड़ा व्यवस्थित कर लेना, और तो तैरना कुछ है नही।

एकदम आदमी को फेंक दो पानी में, वह भी हाथ-पैर तड़फड़ाता है। वह भी तैरता है, लेकिन उसके तैरने मे कला नही है। कुशलता नही है। और अक्सर तो ऐसा होता है, कि वह डूबता है अपने इस तैरने की प्रक्रिया के कारण। वह इतना घबडा जाता है कि उलटे-सीधे हाथ फेंकता है, उसी में, दबोच मे आ जाता है, उसी मे पानी मुँह मे चला जाता है। घबड़ाहट और बढ जाती है, और जोर से हाथ फेंकता है, मुश्किल में पड जाता है। अपने ही चक्कर मे डूब जाता है।

तुमने एक मजे की घटना देखी कि मुर्दा कभी नही डूबता, जिन्दा डूबता है! मुर्दा जरूर कोई कला जानता होगा, जो जिन्दा आदमी नहीं जानता। जिंदा तो डूब जाता है पानी मे, मुर्दा ऊपर आ कर तैरने लगता है। मुर्दा एक ही कला जानता है, वह यह, कि वह कुछ करता ही नही। जब कुछ करता ही नही, तो कौन डुबायेगा उसे? तो नदी हार जाती है, कि इस मुर्दे को क्या डुबाओ, कैसे डुबाओ? यह कोई सहारा ही नही देता।

अन्त में जो लोग तैरने की कला में पारङ्गत हो जाते हैं, वे भी मुर्दे की भाँति पानी पर तैरने लगते हैं। उनको हाथ-पैर नहीं चलाना पड़ता। पानी में फेंक दो किसी को, तड़फड़ाता है। रोज फेंकते रहो, धीरे-धीरे तड़फड़ाने में कुशलता आ जाती है। रोज अनुभव से सीखता है। हाथ सुचारु ढंग से फेंकने लगता है, मुंह को बंद रखता है, पानी के साथ संबंध बनते हैं, मैत्री सधती है, पानी के ढंग समझ में आ जाते हैं। अपनी भूलें समझ में आ जाती हैं। वही आदमी एक दिन तैरना सीख जाता है। तैरने को सीखने के लिए और क्या करोगे, सिवाय तैरने के?

श्रद्धा भी वैसी ही घटना है---श्रद्धा करो। पहले तो हाथ-पैर तड़फड़ाओ। संदेह पकड़-पकड़ लेगा। किनारे से भागने का मन होगा, कि डूबे। सीखना पड़ेगा। थोड़ा ढाढस रखना पड़ेगा। थोड़ा साहस रखना पड़ेगा। किनारे की तरफ भागने की जल्दी न करनी पड़ेगी। भाग भी गए, तो फिर उतर आना पड़ेगा। संदेह पकड़ेगा बार-बार, धीरे-धीरे श्रद्धा से संबध बनने लगेगा। रस उत्पन्न होगा। सुचारु हो जायेगी व्यवस्था। तब धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ेगी।

पहले उथले पानी में कोशिश चलती है, फिर आदमी गहरे पानी मे उतरता है, फिर अनंत गहराई मे उतर जाता है।

गुरु किनारा है---जहाँ पानी बहुत गहरा नही; जहाँ डूबे तो भी मरोगे नही। गुरु सिर्फ उथला किनारा है, जहाँ तुम थोड़ा तैरना सीख लो। तो फिर तुम अनंत गहराई की तरफ चले जाओ, जहाँ परमात्मा है। और जिसने तैरना सीख लिया उसके लिए गहराई से कोई फर्क नही पडता। गहराई और उथले का फर्क गैर तैरने वालों को है। तैरने वालो को क्या फर्क पड़ता है, कि नीचे पाँच मील गहराई है कि चार मील कि तीन मिल, कि दो मील---सब बराबर है। तैरना आता हो, तो गहराई का सवाल ही मिट जाता है।

एक बार गुरु मे श्रद्धा को थोडा जगा लो, तो फिर तुम अपने हाथ अनत की तरफ बढ़ा सकते हो। तो गुरु तो, छोटा सा प्रयोग है श्रद्धा का। और अगर तुम उससे बचे, तो तुम उस बडी श्रद्धा में न जा सकोगे, जिसको हम परमात्मा कहते हैं।

और यह तो पूछो ही मत, कि श्रद्धा को पैदा करने का क्या उपाय है? कोई उपाय नहीं। श्रद्धा कोई ऐसी चीज नही है, जिसे तुम सीख सको। उसे सीखने का एक ही उपाय है, और वह अनुभव है। प्रेम को कोई कैसे सीखता है? कहीं कोई विद्यापीठ खुले है, जहाँ कोई प्रेम को सीखता है? नही!

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस बच्चे को बचपन में माँ-बाप का प्रेम न मिले, वह जीवन भर फिर प्रेम नहीं सीख पाता। सीख ही नहीं पाता, क्योंकि उथला किनारा चूक गया। फिर वह उपाय करता रहता है लाख! किताबें पढ़ता है, शास्त्र पढ़ता है, मगर उससे कुछ नहीं होता। क्योंकि पहली जो सभावना थी, वह चूक गई, जहाँ से बीजारोपण होता।

बच्चा प्रेम कैसे सीखता है? पहले वह माँ में तैरना सीखता है। माँ उसका पहला प्रेम है। इसलिए जिस व्यक्ति का संबंध अपनी माँ से गड़बड़ हो गया, उसके सारे जीवन के संबंध अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। फिर बड़ा मुश्किल है। जिस व्यक्ति का संबध अपनी माँ से ठीक न जुड़ा, वह किसी स्त्री से कभी ठीक से न जुड़ पायेगा, क्योंकि वह पहली स्त्री थी। फिर सभी स्त्रियों में वही स्त्री बार-बार मिलनेवाली है। क्योंकि स्त्रियों का थोड़े ही सवाल है, स्त्रैण गुण का सवाल है।

और माँ से प्रेम कैसे होता है? बच्चा क्या करेगा? बच्चा कुछ भी नहीकर सकता। जानता भी नही। माँ उसे प्रेम देती है। माँ के प्रेम की छाया में वह भी प्रत्युत्तर देना सीखने लगता है। माँ मुस्कराती है, तो धीरे-धीरे वह भी अपने होठ खीचने लगता है। माँ उसे थपथपाती है, उसे स्पर्श करती है, तो वह भी माँ को स्पर्श करना सीखने लगता है। माँ उसे कठ से लगा लेती है, तो वह भी माँ को कण्ठ से लगाने का अभ्यास करने लगता है। ऐसा अभ्यास करते-करते वह माँ का प्रेम सीख लेता है। प्रेम की कला आ गयी! अब वह जीवन में बहुत प्रेम से भर सकेगा, और कभी सवाल न उठेगा।

पश्चिम मे बडा सवाल उठा है। प्रेम बड़ी समस्या बन गई है; क्योंकि माँ का प्राथमिक प्रेम ही नष्ट हो गया है। कोई माँ पश्चिम में अपने स्तन से बच्चों को दूध पिलाने को राजी नही है। क्योंकि स्तन का आकार, रूप, रंग-ढंग, दूध पिलाने से बिगड़ जाता है। माँ बूढ़ी मालूम होने लगती है। स्तन की ताजगी चली जाती है। तो कोई माँ स्तन से दूध पिलाने को राजी नही है। और स्तन से ही बच्चे का पहला संबंध था, जब वह माँ के शरीर से जुड़ता था और माँ की ऊष्मा को अनुभव करता था।

वह सेतु टूट गया। अब यह बच्चा जीवन भर कोशिश करेगा, लेकिन जहाँ भी कोशिश करेगा, वही असफल होगा। तब मनोवैज्ञानिक खड़े होंगे, पागलखाने भरेंगे।

आज अमरीका में करीब-करीब सत्तर प्रतिशत अस्पतालों की जगह मन के मरीज घेरे हुए हैं। और मन का एक ही रोग है। अगर प्रेम न उपलब्ध

हो पाया, तो मन रुग्ण हो जाता है। अगर प्रेम उपलब्ध हो गया, तो मन स्वस्थ हो जाता है। वह जो पहली घटना थी, पहला सूत्रपात था, नदी के किनारे उथले में तैरने की जो सुविधा थी, वह चूक गई। अब यह गहरे में कैसे जाये? अब डर लगता है।

मेरे पास रोज आते हैं लोग, जो कहते हैं कि स्त्री से भय लगता है, प्रेम करने में डर लगता है। डरेंगे ही! क्योंकि उनको हम सागर में बुला रहे हैं और किनारे पर चूक गये। उनको किनारे पर मौका न मिला तैरने का।

जैसे माँ के पास बच्चा सीखता है प्रेम का ढंग, वह कोई कला नहीं है, जो सिखाई जा सके। माँ अपने प्रेम में उसे निमंत्रण देती है, उस प्रेम में डूब कर ही वह सीख जाता है, ऐसे ही गुरु के पास व्यक्ति सीखता है श्रद्धा। गुरु तुम्हें अपने प्रेम से भर देता है। और कोई कला नहीं है। गुरु तुम्हारे बिना माँगे तुम्हें देता चला जाता है। गुरु के होने के ढंग में, तुम पर वर्षा होती रहती है। उसके देखने में, उसके बोलने में, उसके चुप होने में, उसकी मौजूदगी में, वह चारों तरफ एक वातावरण खड़ा करता है, जहाँ तुम थोड़ा तैरना सीख लो।

लेकिन तुम पूछते हो, श्रद्धा कैसे? क्या करें?

कुछ करना नहीं है, सिर्फ थोड़ा अपने को छोड़ो। गुरु बुलावा देता है, थोड़ा अपने को छोड़ो। थोड़ा-सा तो भरोसा करो, कि इस थोड़े से उथले पानी में उतर सको।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन तैरने गया था, सीखने। पैर फिसल गया घाट पर, गिर पड़ा। अभी पानी में उतरा ही न था, भागा घाट से। जो गुरु सिखाने ले गया था, उसने कहा कि मुल्ला, कहाँ भागे जा रहे हो? ऐसे तो तैरना न हो पायेगा। मुल्ला ने कहा, अब जब तक तैरना न सीख लूंगा, नदी के पास न आऊँगा। यह तो जान पर खतरा है। वह तो बच गए। अगर नदी मे गिर गए होते, जब पैर फिसला था, तो गये! अब तो तैरना सीख कर ही आऊँगा। गुरु ने कहा अब तुम वही रहो, मैं पहले...

वह अभी तक नहीं पहुँच पाया। वह कभी नही पहुँचेगा। क्योंकि तैरना सीख कर अगर नदीं में आने का नियम बनाया हो, तो तुम तैरना कहाँ सीखोगे? कोई घर में गद्दे-तकिये बिछाकर थोड़े ही तैरना सीखा जाता है, कि अपने गद्दे पर लेटे हैं और हाथ-पैर चला रहे हैं। चलाते रहो! उससे कुछ तैरना नहीं आ जायेगा। उतरना ही पड़ेगा।

श्रद्धा अगर सीखनी है, तो साहस चाहिये। गुरु जब बुलावा दे, तब रुकना मत। जब गुरु निमंत्रण दे, तो चले जाना। जैसे-जैसे रस आयेगा, जैसे-जैसे स्वाद आयेगा, वैसे-वैसे हिम्मत बढ़ेगी। और गहरे में जाने की हिम्मत बढ़ेगी। और जब उथले में इतना सुख पाओगे, और उथले में ऐसा महासुख तुम्हें घेरने लगेगा, जो कभी नही जाना, तो तुम खुद ही कहोगे, कि अब और गहरे में जाना है।

तो गुरु तो एक इशारा है---और गहरे की तरफ। जब तुम तैयार हो गये, तब वह कह देगा, अब जाओ गहरे की तरफ। वह तुम्हें खुद ही धक्के देगा कि अब तुम गहरे की तरफ जाओ। कही मुझे पकड़ कर मत रुक जाना।

गुरु सीढी है, जिससे पार हो जाना है; जिस पर पैर रखना है और जिससे पार हो जाना है। गुरु एक सहारा है, जिससे स्वतंत्र हो जाना है। कोई गुरु तुम्हे परतंत्र नही कर सकता, अगर वह गुरु है। क्योंकि गुरु की गुरुता इसमें है, कि वह स्वतंत्र करे। कोई गुरु तुम्हें पंगु नही बना सकता, पंगु तो तुम हो। गुरु तुम्हे हाथ का सहारा देगा, जैसे ही तुम्हारे पैर सम्हल जायेंगे, वह अपना सहारा अलग कर लेगा, ताकि तुम अपने पैरों पर चल पड़ो।

तो गुरु के प्रति दो धन्यवाद देता है शिष्य। पहला धन्यवाद तो तब देता है, जब वह उसकी पंगुता मे हाथ का सहारा देता है। और दूसरा उससे भी बडा धन्यवाद तब देता है, जब उसके पैर चलने लगते है और वह अपना हाथ खींच लेता है। दूसरी घडी और भी बड़ी घड़ी है। क्योंकि पहली घड़ी इतनी बडी घडी नही थी, शिष्य पकडना ही नही चाहता था।

यह बडे मजे की बात है, कि शिष्य पहले पकड़ना नही चाहता, गुरु उसे पकडता है। फिर शिष्य छोडना नही चाहता और गुरु उससे छुड़ाता है। और जिस दिन ये दोनों कदम पूरे हो जाते है, उस दिन द्वार खुलता है। उस दिन तुम मंदिर के पास आ गये।

"और ध्यान का फल आत्मदर्शन है क्या?"

ध्यान का फल नही है आत्मदर्शन, ध्यान की गहराई है। फल और गहराई मे थोडा फर्क है। फल तो होता है भविष्य में। बीज आज बोओगे, तो आज ही फल नही आ जायेगा। लेकिन ध्यान ऐसा बीज है कि फल आज भी आ सकता है। इसलिए उसे फल कहना उचित नही। उसे गहराई कहना उचित है। वह ध्यान की ही गहराई है आत्मदर्शन। जिस दिन ध्यान में गहराई पूरी हो जाती है, आत्मदर्शन हो जाता है। अगर तुम डुबकी आज लगा लो, आज

हो जायेगा। कल लगा लो, कल हो जायेगा। वर्षों तक ऐसे ही बैठे सोच-विचार करते रहो, कभी न होगा।

ध्यान ही आत्मदर्शन है। जिस दिन पूरा ध्यान हो जाता है, पूरा आत्मदर्शन हो गया। तो ध्यान में कोई फल नही लगता आत्मदर्शन का। ध्यान के बाहर कोई आत्मदर्शन नही है। ध्यान की परिपूर्णता ही आत्मदर्शन है।

और श्रद्धा शुरुआत है, आत्मदर्शन अंत है।

चौथा प्रश्न : सक्रिय ध्यान के अंतिम चरण मे एक शान्ति किंतु उदासी सी घेर लेती है, जबकि आप उत्सव मानने को कहते हैं। इस उदासी मे कैसे उत्सव मनायें, और कैसे नाचें?

उदासी में क्या बुराई है? उदास नृत्य नही हो सकता? और बड़ा मजा तो यह है, कि अगर तुम उदास हो कर नाचो, तो जल्दी ही तुम पाओगे, उदासी बदल गई। नाच उदासी को बदल देगा। इसलिए रुको मत, आज अगर उदासी का क्षण है, तो उदासी में ही नाचो। नाच को रोको मत, क्योंकि रोकने से तो उदासी गहन हो जायेगी, बोझ हो जायेगी। नाचने से उदासी बिखर जायेगी। जैसे सूरज निकल आया और बादल हट जाये, ऐसे तुम अगर सच मे नाचे, तो बादल हट जायेंगे।

इसे तुम समझने की कोशिश करो। उदास व्यक्ति नाच सकता है, लेकिन, नाचनेवाला व्यक्ति उदास नही रह सकता। उदासी में कोई बाधा नही है, चलो, थोड़े पैर उठेंगे। घूघर मे पूरी झनकार न आयेगी, ठीक सही! आज ऐसा ही सही! हाथ-पैर पूरे उमग से नही उठते, सुस्ती घेरे हुए हैं, चलो ऐसा ही सही। लेकिन उठाओ हाथ-पैर, नाचो गाओ, उदास गीत गाओ, मगर गाओ।

अगर तुमने गाया और नाचे, तो तुम जल्दी ही पाओगे, तुम्हे पता ही न चलेगा, कब उदासी में शुरू हुआ गीत, उदासी को मिटा गया। कब उदासी में उठे पैर, नृत्य...। उदासी कब खो गई, पता नही चलेगा। अचानक तुम पाओगे, उदासी नही है, अब तुम नाच रहे हो।

जीवन के प्रत्येक अनुभव से नृत्य निकल सकता है। जीवन के प्रत्येक अनुभव को उत्सव बनाया जा सकता है। और यही तो कला है धर्म की, कि तुम जीवन के प्रत्येक अनुभव से...

तुम क्रोधित हो, कोई फिक्र नही, आज तुम नाचो। ताण्डव सही! आज तोड़-फोड़ का मन हुआ है, नाचो! तुम्हारे नृत्य को तोड़-फोड़ होने दो। मगर

तुम जल्दी ही पाओगे, कि नृत्य ने तुम्हारी क्रोध की ऊर्जा को निष्कासित कर दिया, रेचन हो गया। क्रोध विलीन हो गया, झंझावात जा चुका, अब तुम नाच रहे हो बड़े हल्के हो कर, पंख लग गये है तुम्हें।

उदासी हो या क्रोध, उत्सव तो हो ही सकता है। उत्सव में किसी चीज से कोई बाधा नही पडती। यह एक गलत दृष्टि है तुम्हारी, कि आज उदास है तो कैसे नाचे, जब खुश होगे, तभी नाचेगे। तब तुम कभी भी न नाचोगे। क्योकि उदास तुम आज हो। इसी उदासी को ढोओगे, इससे खुशी कैसे निकलेगी ? तुम्हारी खुशी मे भी उदासी का बोझ होगा। तुम्हारी खुशी भी उदासी से दबी होगी। तुम खुश भी होओगे, तो समग्रता से न हो पाओगे। तुम हँसोगे भी, तो तुम्हारी हँसी पूरी न होगी, पीछे पत्थरों का बोझ अटका रहेगा।

तुम लोगों को हँसते देखते हो, कभी निरीक्षण किया? बहुत कम लोग है, जो हृदयपूर्वक हँसते है। मुश्किल से कभी कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये, उसके पैर छूना, जो हृदय से हँसता हो। बस, होंठ पर ही आती है। बहुत गहरी गई, तो कठ तक जाती है, लेकिन हृदय तक नही जाती। क्योंकि हृदय मे तो जन्मो-जन्मो की उदासी घिरी है।

वहाँ से तो आ नही सकती हँसी। वहाँ तो द्वार बंद हैं। वहाँ तो कभी दीया जलाही नही। वहाँ तो कभी किसी ने अर्चना नही की, धूप नही जलाई। वहाँ तो सब गदा हो गया है। उस अधेरे में तो सिर्फ साँप-बिच्छू रहते है और इसलिए तो आदमी भीतर जाने से डरते है। लोग कहते है, भीतर जाओ, भीतर-जाओ। वे घबडाते है भीतर जाने मे, क्योंकि भीतर सिवाय अंधकार के कुछ दिखाई नही पडता।

कबीर कहते है, सूर्यो का सूर्य जल रहा है भीतर, पर तुम जब जाते हो वहाँ, तो अँधेरो का अँधेरा दिखाई पड़ता है। कबीर गलत नही कहते, दादू गलत नही कहते। मगर वह अँधेरे की सीमा पार करनी पड़ेगी। उस अँधेरे के मरघट मे ही छिपा है सूरज।

और अँधेरा तुम इकट्ठा करते गये हो। और तुम रोज इकट्ठा करते जा रहे हो, उसकी मात्रा बढती चली जाती है। उदासी को इकट्ठा मत करो। क्रोध को इकट्ठा मत करो। नाचो, और तुम पाओगे कि तुम हल्के हो गये हो। न केवल मन हल्का हुआ, शरीर हल्का हुआ।

जिस दिन कोई समाज नाचना भूल जाता है, उसी दिन समाज रुग्ण हो जाता है। जंगल मे आदिवासी है, नाचते है, उनके स्वास्थ्य की बात ही और!

रात, आधी-आधी रात तक नाचते हैं। तारो तले नाचते हैं, तारों के नीचे। तारों की तरह ही नाचते हैं। सो जाते है थके-मांदे। लेकिन उस थकान में थकान नहीं हैं, उस थकान मे एक हलकापन है। फिर जब सुबह आदिवासी उठता है, तो उस उठने में फर्क हैं तुम्हारे उठने से। तुम सोते थोड़े ही हो। तुम सोते में भी सपना ही रहते देखते हो, सोते मे भी तुम जागने का सारा व्यापार जारी रखते हो। सोते में भी तुम वही दुःस्वप्न देखते रहते हो, जो तुमने जागने मे देखे। वही बाजार, वही मित्र, वही शत्रु, वही गोरखधधा। नीद मे भी तुम तड़फते ही रहते हो। नीद भी तुम्हारी शात घटना नही है। आदिवासियों से पूछो, कि तुमने सपना देखा? तुम्हे मुश्किल से कभी कोई आदिवासी कहेगा कि हाँ, एक बार जीवन मे देखा था।

मनोवैज्ञानिक जब पहली दफा आदिवासियो का अध्ययन करने लगे, तो चकित हुए, क्योंकि वे कहते ही नही कि कभी उनने सपना देखा। सपने की कोई जरूरत नही, कुछ इकट्ठा ही नहीं होता। सुबह ताजे उठते हैं पशुओं और पक्षियो की भाँति, और पौधो की भाँति। फिर दिनभर का काम है, व्यवसाय है। वह काम भी छोटा-मोटा है, भोजन के लिए, छप्पर के लिए। जीवन की उनकी जरूरतें थोडी है, वह पूरी हो जाती है। साझ फिर नाच है। नाच उनकी प्रार्थना है। नाच उनका धर्म है।

सभ्यता सबसे पहले नाच का छुड़वा देती है। सभ्य आदमी नाचने से डरने लगता है। कोई सभ्य जाति नाचती नही। और अगर नाचती भी है, तो उसका नाच सिर्फ कामुक होता है। कामुक नाच नाच का एक बहुत ही निम्नतम ढग है।

मै तुमसे कह रहा हूँ उत्सव। नृत्य को तुम उत्सव बनाओ। मै तुमसे कह रहा हूँ, वह तुम्हारे पूरे जीवन-ऊर्जा का खिलाव बन जाये, फूल की तरह खिल जाये। तुम पाओगे, उस नृत्य से तुम्हारा जीवन बदलना शुरू हो गया। तुम उदास कम होते हो, क्रोधित कम होते हो, क्योकि तुम इकट्ठा ही नही करते। वह कचरा तुम नाच मे फेंक देते हो। तुम्हारे हाथ मे एक कीमिया लग गयी, एक तरकीब, जिससे तुम लोहे को सोना बना लेते हो, जिससे तुम व्यर्थ को सार्थक बना लेते हो। हर नाच के बाद तुम पाओगे, तुम इतने ताजे हो कर वापस आये, जैसे भीतर का एक स्नान हो गया। तुम मत रुको कभी इस कारण, कि उदासी मालूम पडती है।

सच तो यह है, कि मेरे अनुभव मे अनेक लोगो को निरीक्षण करने से यह पता चला है, कि तुम शाति से इतने अपरिचित हो गए हो, कि जब

शांति आती है, तो तुम समझते हो कि यह उदासी है। तुम शांति भूल ही गए हो। तुम्हे याद ही नहीं कि शांति का गुणधर्म क्या है? शांति के निकटतम जो तुम्हारी अनुभूति है, वह उदासी की है, बस! तो शांति जब पहली दफा उतरती है, तो तुम समझते हो, ढीले-ढाले, उदास हो गए हो। एक्साइटमेंट नही है, उत्तेजना नही है, उदास हो गए।

सुख के नाम पर तुमने उत्तेजना जानी है और शांति के नाम पर तुमने उदासी जानी है। तुम्हारा जीवन बिलकुल झूठा है। तुम नकली सिक्कों में जी रहे हो। इसलिए तुम्हारी व्याख्या मैं समझता हूँ, कि तुम्हारी व्याख्या भ्रात है, लेकिन तुम भी क्या करोगे? तुम उसी से तो पहचानोगे नये अनुभव को, जो तुम्हारा पिछला अतीत का अनुभव रहा है। ज्ञात से ही तो तुम अज्ञात की लक्षणा को जानोगे।

तुम उदासी जानते हो, तो जब भी तुम शांत होते हो, तुम्हें उदासी पकड़ लेती है। वह उदासी नही है, एक नई घटना का आविर्भाव हो रहा है। तुम्हारे भीतर शांति घनीभूत हो रही है। और अगर तुम समझ जाओ कला को, तो तुम हर उदासी को शान्ति में रूपातरित कर सकते हो। और अगर तुम न समझो तो हर शांति को तुम उदासी समझोगे और उससे छूटने का उपाय करोगे।

ध्यान तुम्हे जो दे जाये, कोई फिक्र नही, कि वह क्या है! शर्त मत लगाओ, कि हम कब नाचेंगे। ध्यान तुम्हें जो दे जाये, समझो कि परमात्मा का वही प्रसाद है आज के दिन। नाचो!

कल साँझ ही मैं कह रहा था कि, एक सूफी फकीर निरंतर कहा करता था, कि परमात्मा तेरा धन्यवाद। अहोभाग्य है मेरे, कि मेरी जो जरूरत होती है, तू तत्क्षण पूरी कर देता है।

उसके शिष्य उससे धीरे-धीरे परेशान हो गए। यह बात सुन-सुन कर, क्योंकि वे कुछ देखते नही थे, कि कौन सी जरूरत पूरी हो रही है? फकीर गरीब था। शिष्य भूखे मरते थे। कुछ उपाय न था। और यह रोज सुबह साँझ पाँच बार मुसलमान फकीर पाँच बार प्रार्थना करे और पाँच बार भगवान को धन्यवाद देता और ऐसे अहोभाव से! तो शिष्यों को लगता कि यह भी क्या मामला है?

एक दिन हद हो गई। यात्रा पर थे, तीर्थ-यात्रा के लिए जा रहे थे। तीन दिन से भूखे-प्यासे थे। एक गाव मे साँझ थके-माँदे आये। गाँव के लोगों ने ठहराने से इन्कार कर दिया। तो वृक्षों के नीचे, भूखे, थके-मांदे पड़े हैं। और

आखिरी प्रार्थना का क्षण आया, कोई उठा नहीं। क्या प्रार्थना करनी है? किससे प्रार्थना करनी है? हो गई बहुत प्रार्थना! यह क्षण नहीं था प्रार्थना का। लेकिन गुरु उठा, उसने हाथ जोड़े। वही अहोभाव कि धन्यवाद परमात्मा, जब भी मेरी जो भी जरूरत होती है, तू तभी पूरी कर देता है।

एक शिष्य से यह बर्दाश्त न हुआ, उसने कहा, बंद करो बकवास। यह हम बहुत सुन चुके। अब आज तो यह बिलकुल ही असंगत है। तीन दिन से भूखे-प्यासे हैं, छप्पर सिर पर नही है। ठंडी रेगिस्तानी रात में बाहर पड़े हैं, किस बात का धन्यवाद दे रहे हो?

उस फकीर ने कहा, आज गरीबी मेरी जरूरत थी। आज भूख मेरी जरूरत थी, वह उसने पूरी की। आज नगर के बाहर पड़े रहना मेरी जरूरत थी। आज गाँव मुझे स्वीकार न करे, यह मेरी ज़रूरत थी। और अगर इस क्षण में उसे धन्यवाद न दे पाया, तो मेरे सब धन्यवाद बेकार हैं। क्योंकि जब वह तुम्हें कुछ देता है, जो तुम्हारी मन के अनुकूल है, तब धन्यवाद का क्या अर्थ? जब वह तुम्हे कुछ देता है, जो तुम्हारे मन के अनुकूल नहीं है, तभी धन्यवाद का कोई अर्थ है।

और जब उसने दिया है, तो जरूर मेरी जरूरत होगी, अन्यथा वह देगा ही क्यों? आज यही जरूरी होगा मेरे जीवन-उपक्रम मे, मेरी साधना में, मेरी यात्रा में कि आज मैं भूखा रहूँ, कि गाँव अस्वीकार कर दे, कि रेगिस्तान में खुली रात, ठंडी रात पड़ा रहूँ। आज यही थी जरूरत। और अगर इस ज़रूरत को उसने पूरा किया है और मैं धन्यवाद न दूं, तो बात ठीक न होगी।

ऐसे व्यक्ति को ही परमात्मा उपलब्ध होता है। तो तुम जब उदास हो तो समझ लो कि यही थी तुम्हारी ज़रूरत। आज परमात्मा ने चाहा है कि उदासी में नाचो। पर नाच नहीं रुके, धन्यवाद बंद न हो, उत्सव जारी रहे।

पाँचवाँ प्रश्न : आपने अनेक बार कहा है कि सद्‌गुरु शिष्य को पास भी बुलाता है, फिर दूर भी करता है। कैसे पता चले कि सद्‌गुरु ने अप्रसन्नता से, नाराज होकर दूर किया है, या आशीर्वाद रूप से, प्रसन्नता से, आगे के विकास के लिए शिष्य को दूर किया है?

पहली बात, जो गुरु नाराज हो, वह गुरु नहीं। और दूसरी बात, जो शिष्य दूर किए जाने पर ऐसा सोचे, कि अप्रसन्नता से दूर किया होगा, वह शिष्य की योग्यता का नहीं।

गुरु नाराज नहीं होता। नाराज होने की बात ही समाप्त हो गई है। अगर कभी गुरु नाराज भी दिखे, तो जानना कि अभिनय करता होगा; क्योंकि अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

गुरजिएफ बहुत बार नाराज़ हो जाता था। ऐसा नाराज हो जाता था कि जैसे खून-खराबा कर देगा। जो भाग जाते थे, वे वंचित रह जाते थे। जो फिर भी टिके रहे, वे जानते थे, कि उस जैसा कोमल हृदय पाना कठिन है।

लेकिन फिर वह इस तरह नाराज क्यों हो जाता है? शायद वही शिष्य के लिए जरूरी था। ऐसी भी घटनाएँ घटी हैं—और वह गुरजिएफ ही कर सकता था, कि दो व्यक्ति मिलने आये हैं, एक बाएँ बैठा है, एक दाएँ, जब वह बाएँ की तरफ देखे, तो नाराजगी से और दाएँ की तरफ देखे तो बड़े प्रेम से। और दोनों जब बाहर गए तो विवाद में पड गए, कि यह आदमी कैसा है? एक कहे, कि बिलकुल दुष्ट प्रकृति का मालूम होता है, और दूसरा कहे कि इतना प्रेमी आदमी मैंने नहीं देखा।

और दोनों सही थे, क्योंकि दोनों को पता नहीं था कि वह क्या कर रहा था। वह एक को इन्कार कर रहा था, कि तू जा। वह एक को कह रहा था, कि तू आ। उसको इन्कार कर रहा था, जिसकी अभी जरूरत न थी, जिसका आना अभी व्यर्थ होगा, जो अभी आने के लिए परिपक्व नहीं था, शायद दूसरे के साथ चला आया होगा, शायद कुतूहलवश चला आया होगा, लेकिन कोई प्यास न थी।

तो गुरु उस पर तो मेहनत नहीं करेगा, जिसकी कोई प्यास न हो। वह तो ऐसा ही होगा, जैसे कोई पत्थरों पर बीज फेंके। वे तो बीज भी नष्ट हो जायेंगे। वह उस पर ही मेहनत करेगा, जहाँ भूमि है, जहाँ हृदय राजी है—बीज को स्वीकार करने को, अंगीकार करने को।

तो गुरु कई बार नाराज हो सकता है, लेकिन गुरु नाराज कभी नहीं होता। और शिष्य तो वही है, जो गुरु की नाराजगी में भी करुणा देख पाये। अगर गुरु की नाराजगी में नाराजगी दिख जाए, तो तुम्हें शिष्यत्व का कुछ पता ही नहीं। तब तुम सीखे ही नहीं झुकना।

झुकने का मतलब ही यह होता है, जिस दिन शिष्य बने, उस दिन ये सब परिभाषाएँ और व्याख्याएँ तुमने छोड़ दीं। अब तुमने कहा, कि इस आदमी के साथ मैं राजी हूँ चलने को। यह नर्क ले जाए तो नर्क, स्वर्ग ले जाये तो स्वर्ग; भटकाये तो उसके साथ भटकूँगा, पहुँचाये तो उसके साथ पहुँचूँगा।

इसलिए इस के साथ नहीं हूँ, कि यह पहुँचायेगा; इसलिए इसके साथ हूँ... शिष्य का मतलब ही यह है, कि इसके साथ हूँ, अब पहुँचना हो जाय, तो इसके साथ हूँ, भटकना हो जाये तो इसके साथ हूँ। असल में इसके साथ होना ही अब पहुँचना है। कोई विकल्प नहीं छोड़ा, तब ही कोई शिष्य बनता है।

शिष्य बनना एक महान क्रांति है; एक बड़ी भारी छलांग है।

छठवाँ प्रश्न : अतीत मे जितने सद्गुरु हुए, उनमें भगवान कृष्ण पूर्णावतार कहे गए हैं। मेरा विश्वास है कि आपकी अभिव्यक्ति इतनी ऊँची और श्रेष्ठ है, कि आनेवाला युग आपको कृष्ण से भी ऊपर रखेगा। क्या इस पर आप कुछ प्रकाश डालेंगे?

उस जगत में न तो कोई छोटा होता, न बड़ा। न तो कृष्ण बड़े हैं, न राम छोटे। न कृष्ण बड़े हैं, न क्राइस्ट छोटे हैं। न कृष्ण बड़े हैं, न महावीर छोटे हैं। सब मापदण्ड खो जाते है।

लेकिन भक्त के पास प्रेम की आँख होती है। इसलिए जो कृष्ण को प्रेम करता है, स्वभावतः, कृष्ण उसके लिए सबसे बड़े है। इसमें भी कुछ भूल नहीं है। यह भक्त की तरफ से बताई गयी बात है। भक्त तो अँधेरे में खड़ा है। उसे तो सिर्फ एक दिये का दर्शन हुआ है, वह कृष्ण का दिया है। उसे महावीर के दिए का कोई पता नही। उसे तो एक ही दिए से पहचान हुई है, वह कृष्ण का दिया है। तो वह कहता है, यह दिया सबसे बड़ा है। कोई दिया इतना बडा नही है, सब दिये इससे छोटे हैं। वह असल मे कह ही नही रहा है कि सब दिए इससे छोटे हैं, वह इतना ही कह रहा है कि मेरे हृदय को इस दिये ने ऐसा भर दिया है कि इससे बड़ा कोई दिया नहीं हो सकता। जगह ही नही बची मेरे हृदय में, अब और बड़ा क्या हो सकता है?

मजनू पागल था लैला के पीछे। गाँव के नरेश ने उसे बुलाया, क्योंकि दया आने लगी लोगों को। पागल की तरह दिन रात लैला...लैला...की रट लगाये रहता। नरेश ने अपने महल की बारह जवान सुन्दरतम लड़कियाँ ला कर खड़ी कर दी, और कहा, तू पागल है। लैला साधारण सी लड़की है। मैंने भी उसे देखा है। तू भरोसा मान। मेरी परख तुझसे ज्यादा है। जिंदगी भर औरतों के बीच रहा हूँ। वह बिलकुल साधारण काली-कलूटी लड़की है। तू नाहक पागल है। अगर वह इतनी सुन्दर होती, जैसा तू समझ रहा है, तो मेरे राजमहल में होती, सड़क पर हो ही नहीं सकती थी। तू भरोसा मान। ये बारह लड़कियाँ तेरे सामने खड़ी है, ये सुन्दरतम है। इस राज्य में इन से सुंदर लड़कियाँ तू न खोज पायेगा। कोई भी चुन ले।

मजनू हँसने लगा। उसने कहा, "आपने लैला को देखा ही नहीं।"

सम्राट ने कहा, "तू पागल है? मैंने देखा। तेरी वजह से देखना पड़ा। तू महल के आस-पास चिल्लाये फिरता है, लैला...लैला...। यह कौन लैला है? एक आदमी पागल हुआ, देखना है। बुला कर देखा।"

मजनू ने कहा कि नहीं, आप देख ही नहीं सकते। लैला को देखने के लिए मजनू की आँख चाहिये। आपके पास मेरी आँख कहाँ? मेरी आँख से ही सिर्फ लैला देखी जा सकती है। उस जैसी सुन्दर न तो कभी कोई स्त्री हुई है, न कभी होगी। और मैं आज की ही नही कहता, भविष्य की भी कहता हूँ।

भक्त की आँख तो मजनू की आँख है। शिष्य की आँख तो मजनू की आँख है। वह एक के प्रेम मे पड़ गया। बात बिलकुल सही है। कोई जरूरत भी नही है मजनू को, कि लैला से सुन्दर कोई स्त्री कहीं हो, ऐसा वह माने। कोई कारण भी नही है। श्रद्धा तो पूर्ण होती है। जब श्रद्धा पूर्ण होती है, तो सब खो जाता है, एक ही रह जाता है। श्रद्धा तो अनन्य होती है। दूसरे कोई बचते नही।

तो जिसने कृष्ण को प्रेम किया है, कृष्ण उसके लिए पूर्णावतार हैं। जिसने महावीर को प्रेम किया है, उसके लिए महावीर तीर्थंकर है, कृष्ण कुछ भी नहीं।

जैनों ने कृष्ण को नर्क में डाल रखा है। उनके शास्त्र कहते है, कृष्ण सीधे नर्क गए है—सातवे नर्क! क्योंकि इसी आदमी ने महाभारत का युद्ध करवाया। अर्जुन तो जैन मालूम पडता है। उसमें तो बड़ी सद्बुद्धि पैदा हुई थी। उस कृष्ण ने उसको भटकाया और भरमाया। और उस बेचारे ने लाख उपाय किया कि निकल जाये पंजे से। हजार उसने संदेह उठाये। बाकी यह आदमी भी एक था, जिसने सब तरफ से घेर-घार कर उसको फँसा दिया। युद्ध करवा दिया। भयंकर उत्पात हुआ, हिंसा हुई। शायद महाभारत जैसा बड़ा युद्ध फिर कभी हुआ ही नही। भारत की तो रीढ ही टूट गई उस युद्ध मे। उसके बाद भारत फिर कभी खड़ा ही नही हो सका। वह सारा जिम्मा कृष्ण का है

तो जैनों ने बड़ी हिम्मत की, उन्होंने सातवें नर्क मे डाल दिया। और आदमी बलशाली था, यह तो मानना ही पड़ेगा। नहीं तो अर्जुन को भी कैसे भटका देता? और आदमी बलशाली है, हजारों लोग उसको प्रेम करते हैं, यह भी मानना पड़ेगा। तो जैनों ने इतनी उदारता बरती है, कि अगली सृष्टि में, जब यह सृष्टि पूर्ण नष्ट हो जायेगी, तब तक तो कृष्ण को नर्क में रहना ही

पड़ेगा। फिर अगली सृष्टि में वे पहले तीर्थंकर होंगे। मगर तब तक तो नर्क की महाअग्नि में जलना पड़ेगा।

अब तुम सोचो। किसी को कृष्ण पूर्ण अवतार है, उनके सामने सब फीके हैं, सब अधूरे हैं। और किसी के लिए कृष्ण नर्क में डालने योग्य है। और मैं किसी को, इन दोनों में से, सही-गलत नहीं कह रहा हूँ। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूँ, एक प्रेमी की नजर है। एक मित्र की नजर है, एक शत्रु की नजर है। ये दोनों ही अपनी नजर के संबंध में कुछ कह रहे हैं, कृष्ण के संबंध में कुछ भी नहीं कह रहे हैं।

अगर तुम्हें मुझसे प्रेम हो गया, तो जो तुम कह रहे हो, मेरे संबंध में नहीं है, वह तुम अपने प्रेम के संबंध में कह रहे हो, वह मेरे संबंध में नहीं, वह तुम अपनी श्रद्धा के संबंध में कह रहे हो।

आदमी सदा अपने संबंध में ही कहता है। किसी और के संबंध में कहने का उपाय नहीं है। अगर तुम्हें मेरी अभिव्यक्ति बहुत प्रीतिकर मालूम पड़ती है, तो तुम अपने संबंध में कुछ कह रहे हो, कि यह अभिव्यक्ति तुम्हें जमती है। यह तुम्हारे हृदय को छूती है। यह तुम्हारे हृदय में कोई तार छेड़ देती है। बस, इतनी बात है। उस लोक में कोई आगे नहीं, कोई पीछे नहीं, कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं, मुहम्मद महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट--

जैसे ही अँधेरे का जगत समाप्त हुआ, सभी एक जैसे हो जाते। सब रंग, सब भेद, सब भिन्नताएँ अँधेरे में हैं। जागे हुए पुरुषों में कोई भेद नहीं है।

लेकिन तुम सभी जागे पुरुषों को प्रेम तो न कर पाओगे। सभी जागे पुरुषों को प्रेम करना हितकर भी नहीं होगा; क्योंकि जितने तुम्हारे प्रेम-पात्र होंगे, उतना ही तुम्हारा हृदय बँट जायेगा। और अगर हृदय बँट जाये, तो श्रद्धा भी बँट जायेगी। और बँटी हुई श्रद्धा से तुम कभी सत्य तक न पहुँच सकोगे।

इसलिए, मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम, गांधी जैसा भजन करवाते हैं-- अल्ला ईश्वर तेरा नाम! नहीं कहता, कि वह करो। तुमको नाम अपना चुन लेना है। यह तो अल्लाह या ईश्वर। क्योंकि दोनों नाम तुम लेते रहोगे, तुम्हारा हृदय सदा ही बँटा रहेगा। वह कभी पूरा न हो पायेगा।

और गांधीजी अपनी ही बात को पूरा मान न सके, मरते वक्त जब गोली लगी, तो "राम" निकला, 'अल्लाह" न निकला। वह बात-चीत थी। वह राजनीति होगी, धर्म नहीं था। जब गोली लगी, तब "अल्लाह" नहीं निकला, तब तो राम निकला, "हे राम" वह बिलकुल ठीक है। वह बिलकुल गैर-

राजनीतिक आवाज है। मरते वक्त कोई राजनीतिज्ञ हो सकता है? मरते वक्त तो जो था हृदय में, वह निकला, जिंदगी में तो सब लीपा-पोती थी।

मैं तुम से नहीं कहता, चुन लो। मैं तुम से नहीं कहता कि तुम महावीर को पूजो, बुद्ध को भी पूजो, कृष्ण को भी पूजो-नहीं। पूजा तो अनन्य होती है। तुम चुन लो। क्योंकि मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कि तुम किसको चुनते हो। फर्क इससे पड़ता है, तुम पूजा करते हो या नहीं, बस!

पूजा पूरी हो। तुम पत्थर चुन लो, वृक्ष के नीचे रखा, दुनिया कहे पत्थर है, तुम फिक्र मत करो। तुम्हारा अगर हृदय वहाँ गया, और पत्थर से तुम्हारा राम जम गया और तुम नाचने लगे पत्थर के पास, तो वहाँ भगवान है तुम्हारे लिए । तुम उसी पत्थर से पहुँच जाओगे। तुम फिर किसी की मत सुनो। तुम फिर अंधे होकर पत्थर के पागल हो जाओ, तुम नाचो, तुम पूजा करो। पत्थर ही तुम्हारी अर्चना और तुम्हारा आराध्य बन जाये। तुम वही से पहुँच जाओगे। क्योंकि कोई पात्र मे नही पहुँचता, प्रेम-पात्र स; प्रेम से। पहुँचता है। श्रद्धा-पात्र मे नही पहुँचता है, श्रद्धा से पहुँचता है।

तुम कृष्ण, राम, बुद्ध से नही पहुँचते, तुम्हारी पूजा के भाव मे पहुँचते हो वह पूजा का भाव जहाँ तुम्हे आ गया हो, फिर तुम बिलकुल फिक्र नही करना, फिर तुम कहना कि कृष्ण पूर्ण अवतार है, और इनसे ऊपर कोई भी नही। कोई चिंता मत करना। वह अँधेरे की भाषा है। लेकिन तुम अँधेरे मे हो। अभी तुम प्रकाश की भाषा बोलोगे, तो भाषा ही गलत होगी। झूठी होगी। अँधेरे को पार कर लो कृष्ण के सहारे। जिस दिन तुम प्रकाश मे पहुँचोगे, उस दिन तुम हँसोगे कि मैं भी कैसा पागल था, कि किसी को छोटा कहा, किसी को बडा कहा, किसी को आगे कहा, किसी को पीछे कहा। यहाँ प्रकाश के लोक मे तो सब समान हो गये है।

सातवाँ प्रश्न मैं खुद तो निःसदेह मार्ग पर चल पडा हूँ और मार्ग ही मंजिल होता जा रहा है। लेकिन जब प्रवचन मे बैठता हूँ, तो जो कुछ आप कहते है, उसे दूसरो को बताने के लिए मेरा मन सगृहीत किए जाता है। दूसरो के सामने. विशेषकर प्रियजनो के सामने, उसे प्रतिपादित करने की इतनी आतुरता मुझमे क्यों है?

स्वाभाविक है। जिन्हे हम प्रेम करते है, उन्हे हम वह दे देना चाहते है जो हमें मिला है, जिसमे हमने आनद जाना है जिसमे हमे सत्य की झलक मिली है। जो स्वाद हमने चखा है वह अपने प्रियजनों को चखा देना चाहते । हम उन्हें साथीदार बनाना चाहते है। बिलकुल स्वाभाविक है।

बाँटो ! जो तुम्हें लग रहा है ठीक, उसे तुम कहो। पता नहीं, किसी को, और को भी ठीक लग जाये।

एक ही बात ख्याल रखना। बाँटने की आतुरता तो ठीक है, आग्रह ठीक नहीं है। ऐसा किसी की छाती पर मत बैठ जाना कि हमने माना, तुम्हें भी मानना पड़ेगा; क्योंकि तू मेरी पत्नी है, अगर तू मेरी नहीं मानेगी तो बस, ठीक नहीं है, या तू मेरा पति है। आग्रह मत करना, निराग्रह! वह माने या न माने इसकी पूरी स्वतंत्रता देना।

लेकिन तुम्हारे हृदय में भाव उठता है, उसे भी दबाना मत। तुम्हें लगता है सुख, रस प्रतीत होता है, बाँटो, उलीचो! जितना उलीच सको, उतना अच्छा है। इससे तुम्हारे हृदय का रस और बढ़ेगा। जितना तुम उलीचोगे, बाँटोगे, जितनी आँखों में तुम्हारा रस झलकने लगेगा, उतना तुम्हारा रस भी बढ़ेगा। बस, एक ही बात ख्याल रखना, किसी पर थोपना मत। आग्रह मत करना।

और मजे की बात यह है, अगर तुम आग्रह करो, तो तू दूसरा दूर हटता है। अगर तुम निराग्रह भाव से कहो, दूसरा पास आता है। अगर दूसरा यह बात देख ले, कि तुम्हारी कोई आकांक्षा किसी को "कन्वर्ट" करने की, किसी को अपने मार्ग पर लाने की नहीं है, तो दूसरे को तुम्हारे मार्ग पर आ जाना आसान हो जाता है। और जैसे ही तुम दूसरे को अपने मार्ग पर लाने की चेष्टा में रत हो जाते हो, वैसे ही दूसरे में एक प्रतिरोध, एक रेसिस्टेंस खड़ा होता है। उसका अहंकार बचाव करने लगता है।

बाँटो ज़रूर, लेकिन कोई अगर न लेना चाहे, तो जबरदस्ती किसी के कण्ठ मत उतारना।

जबरदस्ती दिया गया अमृत भी जहर हो जाता है। प्रेम, सहजता से, जितना बन सके! इसमें कुछ बुरा मत मानना कि तुम्हारे मन में यह क्यों ऐसी वासना उठती है? यह वासना नहीं, यही करुणा है। वासना का अर्थ है:

जब तक तुम अपने लिए पाना चाहते हो, तब तक वासना। जब तक दूसरे को बाँटना चाहते हो तब करुणा।

साधक के जीवन में करुणा का क्षण भी आयेगा। मेरे पास जब तुम पहली दफा आना शुरू होते हो, तब तुम वासना से ही आना चाहते हो, तुम अपने लिए पाना चाहते हो। तुम्हारी खोज स्व-केंद्रित है। लेकिन जैसे जैसे तुम्हें प्रतीति होगी, जैसे-जैसे तुम्हारा अनुभव बढ़ेगा, जैसे-जैसे तुम थोड़े जागोगे

होश सधेगा, वैसे-वैसे तुम्हें लगेगा कि जो तुम्हें मिला है, इसे बाँट देना है। यह करुणा का जन्म है।

वासना की ऊर्जा करुणा बन जाती है। इसलिए बाँटो! बेफिक्री से बाँटो, निश्चित होकर बाँटो! बस, बाँटते वक्त एक ही ख्याल सदा रखना, किसी पर बोझ न पड़े।

आठवाँ प्रश्न : आपने पहले कहा, कि मेरा सारा बोलना मात्र बहाना है। फिर आपका होना क्या है?

अगर वह भी मुझे बोलना पड़े तो वह भी बहाना हो जायेगा। होने को जानना हो, तो बिना बोले ही जानना पड़ेगा। आँख हो, तो मुझे देखो। हृदय हो तो मुझे अनुभव करो।

होने का तो एक ही उपाय है, कि मेरे होने के साथ सत्संग करो। तब मैं क्या कहता हूँ, इसकी फिक्र छोड़ो। मैं क्या हूँ, उस मौन क्षण में, दो शब्दों के बीच, दो विचारों के बीच जो अंतराल है, दो पंक्तियों के बीच जो खाली जगह है, वहाँ उतरो।

अगर तुम वह भी मुझसे पूछते हो कि आप का होना क्या है, तो मैं फिर बोलूँगा। उस बोलने में तो बोलना ही होगा, वह बहाना हो जायेगा।

मैं बोलने को बहाना कहता हूँ इस कारण, क्योंकि अगर मैं यहाँ चुप बैठ जाऊँ, तो तुम में से दो-चार ही यहाँ मेरे पास बैठे रहेंगे, बाकी जा चुकेंगे। दो-चार ही यहाँ बैठे रहेंगे, जो मौन सत्संग करने में समर्थ हो गये हैं। वे तो बड़े प्रफुल्लित होंगे। वे तो कहेंगे, यह बोलने की बाधा थी बीच में, यह भी हट गई। ये शब्द बीच में पर्त बनाते थे, ये भी जा चुके। अब तो सीधा हृदय और हृदय का खालिस मिलन है। अब तो सीधा-सीधा साक्षात्कार है।

वे तो बड़े आनंदित होंगे, वे तो बड़े प्रफुल्लित होंगे, लेकिन वे दो-चार होंगे, बाकी जा चुकेंगे। बाकी से मैं बोल रहा हूँ। क्योंकि वे जो दो-चार हैं, वे तो मेरे बोलते समय भी मेरे मौन को सुन सकते हैं। वे तो मेरे बोलते समय भी, बोलने को जानेंगे, कि ऊपर सागर की लहरें हैं, फिर भीतर के सागर की शांति उन्हें सुनाई पड़ती रहेगी। उनको तो कुछ हर्ज नहीं हो रहा है, लेकिन दूसरे जो मेरे मौन को न सुन सकेंगे, न समझ सकेंगे, उनको बहाना है, कि उनके लिए मैं बोलता रहूँ। और धीरे-धीरे-धीरे वे भी राजी होने लगेंगे। बोल-बोल कर मैं उन्हें राजी कर लूँगा कि वे मेरे होने को, शून्य को, मौन को समझने में समर्थ हो जायें।

जिस दिन तुम सब होने को समझने में समर्थ हो जाओगे, मैं बोलना बंद कर दूँगा। कोई जरूरत न रह जायेगी। क्योंकि फिर मुझे जो कहना है, वह सीधा ही कह दिया जायेगा। शब्द के माध्यम का कोई उपाय न रहेगा। लेकिन फिर बहुत जो अभी नही, उस होने मे डूब सकते है, वे वंचित रह जायेंगे।

ऐसा हुआ, बुद्ध की मृत्यु हुई। तो जब तक बुद्ध जीवित थे, किसी ने फिक्र भी न की थी, कि उन के वचनों का सग्रह हो जाये। बुद्ध जीवित थे, किसी को याद भी न आया। फिर अचानक होश हुआ, जैसे एक सपना टूटा। इतने बहुमूल्य वचन खो जायेंगे ऐसे ही। तो संग्रह ही करो।

तो जो जाग चुके थे बुद्ध के समय मे बुद्ध के बहुत शिष्य, जो बुद्धत्व को पा चुके थे, उनसे प्रार्थना की गई। उन्होंने कहा, हमने कुछ सुना ही नहीं, कि बुद्ध ने क्या कहा। यह बकवास बद करो। बुद्ध कभी बोले ही नही। इनका तो मन के मौन से सबध जुड गया था। तो उन्होने कहा, हमने तो सुना ही नही, तुम भी क्या बात कर रहे हो? बुद्ध और बोले? कभी नही! बुद्धत्व के बाद चालीस साल चुप रहे, हमने तो चुप्पी सुनी।

बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। जिन पर भरोसा किया जा सकता था, जो जाग गये थे, जिनकी वाणी का मूल्य होता, जिनकी रिपोर्ट सही होने की संभावना थी, वे कहते है हमने सुना ही नही, कहाँ की बात कर रहे हो? सपने मे हो?

उनमे जो परमज्ञानी था एक महाकाश्यप, उसने तो कहा—बुद्ध कभी हुए ही नही। किस की बात उठाते हो? कोई सपना देखा होगा!

यह तो द्वार बद हो गया। जो सर्वाधिक कीमती व्यक्ति था महाकाश्यप, जिसको बुद्ध ने कहा था—जो मै शब्द से दे सकता हूँ, वह मैंने दूसरो को दे दिया महाकाश्यप, और जो शब्द से नही दिया जा सकता, वह मै तुझे देता हूँ। उस आदमी ने तो कह दिया, बुद्ध कभी हुए ही नहीं। कौन बोला? किसने सुना? कहाँ की बातें करते हो?

तब आनद का सहारा लेना पड़ा। आनद, बुद्ध के समय में ज्ञान को उपलब्ध नही हुआ। वह अज्ञानी ही रहा। वह अँधेरे मे ही रहा, उसने शून्य को नही सुना, उसने शब्द को सुना। लेकिन उसके पास पूरा संग्रह था। उसकी स्मृति ने सब सम्हाल कर रखा था। उसने सब बोल दिया, सब संग्रहीत कर लिया गया।

अब सवाल यह है, कि अगर आनंद भी ज्ञान को उपलब्ध हो गया होता बुद्ध के जीते, तो बुद्ध के संबंध में तुम्हें कुछ पता भी नहीं हो सकता था। रेखा भी न छूट जाती क्योंकि महाकाश्यप तो यह भी मानने को राजी नहीं कि यह आदमी कभी हुआ!

अज्ञानी आनंद की ही अनुकंपा है, कि बुद्ध के वचन संग्रहीत हैं।

तो मेरे मौन को जो समझ सकते हैं, वे तो एक दिन कह देंगे कि यह आदमी कभी हुआ? कहाँ की बात कर रहे हो? यह कुर्सी सदा से खाली थी। सपना देखा है।

लेकिन जो नहीं मेरे मौन को समझ पा रहे हैं, मेरे शब्द को ही समझ सकते हैं, उनका भी उपयोग है। शायद वे ही उस शब्द की नौका को दूसरों तक पहुँचा देंगे। शब्द की नौका का प्रयोजन तो शून्य के तट पर लगना है। लक्ष्य तो शून्य है। लेकिन लक्ष्य तो मिलेगा, तब मिलेगा। आज तो नौका भी मिल जाये, तो काफी है।

सबदै ही सब उपजै

प्रवचन पाँच, दिनांक १५-७-१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

सबद बंध्या सब रहै, सबदैं सब ही जाय।
सबदैं ही सब उपजै, सबदैं सबै समाय॥
दादू सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही स्थिर भया, सबदैं ही भागा सोक॥
दादू सबदैं ही मुक्ता भया, सबदैं समझै प्राण।
सबदैं ही सूझै सबै, सबदैं सुरझै जाण॥
पहली किया आप थैं उतपत्ती ओंकार।
ओंकार थैं उपजै, पंच तत्त आकार॥
दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागै सो ऊबरै, सूते लिये जगाइ॥
सबद सरोवर सूभर भरया, हरिजल निर्मल नीर।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर॥



नानक ने कहा है: इक ओंकार सत्नाम।

सत्य का एक ही नाम है, वह है ओंकार। ओंकार में भारत की सारी खोज समा जाती है। इस एक छोटे-से शब्द में भारत की अनंत-अनंत काल की खोज का रस समाया हुआ है। जिसने इस एक शब्द को समझ लिया, उसने सब समझ लिया। जो इस एक शब्द से वंचित रह गया, वह कुछ और समझ ले, उस समझने का कोई भी मूल्य नहीं। इसलिए इस एक शब्द को बहुत ध्यान से समझने की कोशिश करना।

पहले कुछ प्राथमिक बातें।

पहली तो बात: ओंकार को शब्द कहना ठीक नहीं, मजबूरी है। कुछ कहना पड़ेगा, इसलिए शब्द कहते हैं; लेकिन ओंकार शब्द नहीं है। जैसे और सब शब्द हैं, वैसा ओंकार शब्द नहीं है। क्योंकि, सभी शब्दों का कुछ अर्थ है, ओंकार का कोई अर्थ नहीं। ओंकार अर्थातीत है। शब्द में तो अर्थ होता है; ओंकार में कोई अर्थ नहीं है, ओंकार शुद्ध ध्वनि है। लेकिन उसे ध्वनि कहना भी मजबूरी है। कुछ कहना पड़ेगा, इसलिए कहना पड़ता है।

बहुत ध्वनियां हैं जगत में, लेकिन सभी ध्वनियां दो वस्तुओं के आघात से पैदा होती हैं। उनके लिए पारिभाषिक शब्द है: आहतनाद। दो हाथ को टकराओ, ताली बजती है। दो पत्थरों को टकराओ, आवाज होती है। ओंकार अनाहत नाद है। वह दो वस्तुओं के टकराव से पैदा नहीं होता। वह भी एक हाथ की ताली है। शब्द नहीं कह सकते, क्योंकि अर्थातीत है; शब्द में तो अर्थ होना चाहिए। ध्वनि नहीं कह सकते, क्योंकि सभी ध्वनियां आघात से पैदा होती हैं। ओंकार अनाहत है। वह आघात से पैदा नहीं होता।

तीसरी बात, तुम जिस ओंकार का पाठ करते हो, जिस ओंकार की रटन लगाते हो, जिस ओंकार का जाप करते हो, नानक या दादू उस ओंकार की बात नहीं कर रहे हैं। क्योंकि तुम तो जिसकी रटन लगाओगे, वह भी आहत नाद हो जायेगा, वह भी कंठ की टकराहट होगी। तो ओंकार का जाप कोई कर नहीं सकता। ओंकार के जाप के लिए तैयार हो जाओ तुम, एक दिन जाप उतरता है। इसलिए ओंकार को जाप नहीं कह सकते हैं।

ज्ञानियों ने उसे अजपा कहा है। उसका जाप नहीं किया जा सकता। क्योंकि जाप तो तुम कर सकते हो-ओंकार ओंकार, ओंकार; लेकिन वह तो तुम्हारी कंठ की टकराहट है। वह तो तुम्हारा ही पैदा हुआ ओंकार है। वह तो तुमसे पैदा हुआ, तुम्हारी संतान है। और जिस ओंकार की चर्चा हो रही है, वह तो वह ओंकार है, जिसकी हम सब संतान हैं। तुम अपने पिता के पिता नही बन सकते। जब तुम ओंकार को जपते हो, तब तुम पिता को पैदा करने की कोशिश कर रहे हो; तब तुम पिता के पिता बनने की चेष्टा में लगे हो।

नहीं, साधक ओंकार को जप नहीं सकता; जपने के द्वारा केवल अपने भीतर उस व्यवस्था को निर्मित करता है जिसमें अजपा उतर आये। सारी साधनाएँ सिर्फ निमंत्रण हैं, चेष्टाएँ है तुम्हे तैयार करने की, ताकि तुम्हारी तैयारी में वह संबंध, वह साज बैठ जाए जहाँ अनाहत बजने लगता है।

ओंकार जपा नहीं जाता, ओंकार सुना जाता है। ओंकार जपा नही जाता, ओंकार हुआ जाता है। जब ओकार उतरता है तब तुम नही बचते, ओकार ही रहता है। ओंकार महामृत्यु है, इसलिए वह महामंत्र है। बाकी सब मंत्र मंत्र हैं, ओंकार महामंत्र है।

एक बहुत आश्चर्य की बात है कि भारत मे तीन बड़े धर्म पैदा हुए-हिंदू, जैन, बौद्ध। तीनो में बडा विभेद है, सिद्धान्तों की बडी टकराहट है। तीनों की मान्यताएँ ऐसी अलग-अलग है कि उनमे कोई तालमेल बिठालना सभव नहीं है। कोई लाख समन्वय बिठाये, इन तीन मे समन्वय बैठ नही सकता। वे तो त्रिकोण के तीन कोन हैं, उनको तुम पास नही ला सकते। लेकिन एक मत पर वे सब राजी है, वह है ओंकार। बौद्ध, जैन, हिंदू इस एक अनूठे शब्द पर राजी है। इस संबंध मे कोई विरोध नही है। इस संबंध में एकदम मतैक्य है।

तो, ऐसा लगता है कि ईश्वर भी गौण है। उस पर भी विवाद हो सकता है कि है या नहीं; आत्मा भी गौण है—उस पर भी चर्चा चलने की सुविधा है कि

हैं या नहीं। जैन ईश्वर को नहीं मानते। बौद्ध तो आत्मा को भी नहीं मानते। लेकिन ओंकार को तीनों ही मानते हैं। ओंकार लगता है, आत्मा और परमात्मा से भी बड़ा है। निर्विवाद वही एक मालूम होता है।

और ऐसा केवल भारत के धर्मों के संबंध मे ही सच नही है, भारत के बाहर पैदा हुए धर्म भी ओंकार को अनजाने रूप से मानते हैं। उनकी व्याख्या मे थोड़ी भूल हो गई है। व्याख्या मे भूल का कारण है।

जब ओंकार की ध्वनि सुनी जाती है तो अगर तुम ठीक-ठीक सजग न हुए, अगर तुम बिलकुल ही न मिट गए और तुम्हारे मन की कही किसी कोने-कातर में छाया छिपी रही तो तुम शुद्ध ध्वनि को न पकड़ पाओगे। तुम्हारा मन ध्वनि को उतना तोड़ देगा।

भारत के तो सभी धर्मो ने मन को मिटाने की चेष्टा की है। इसलिए जब मन मिट जाता है तो ओंकार की शुद्ध ध्वनि सुनाई पड़ती है। भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुआ—ज्यू, इस्लाम, ईसाइयत—उन तीनो ने मन को मिटाने की चेष्टा नही की है, बल्कि मन को शुद्ध करने की चेष्टा की है। शुद्ध हो कर भी मन बचता है, पूरा नहीं मिट जाता। बिलकुल शुद्ध हो जाता है, पारदर्शी हो जाता है, हवा की तरह हो जाता है; तुम छू भी नही सकते; पता भी नही चलता कि है लेकिन होता है।

मन के न हो जाने पर जो ओंकार सुनाई पड़ा था, तब तो हमने ओंकार को सीधा पकड लिया। मन के होने पर; शुद्ध मन के होने पर जो सुनाई पड़ा तो रूप थोड़ा बदल गया। मन ने थोड़ी-सी झंझट थोड़ी-सी विकृति पैद की। इसलिए मुसलमान, यहूदी और ईसाइयत अपनी प्रार्थनाओं के अन्त में जिस शब्द से पूर्ण करते हैं प्रार्थना को—ओमीन या अमीन—वह ओऽम् का ही रूप है। और उनके पास भी उसका कोई उत्तर नही है कि अमीन का क्या अर्थ होता है। वह ओऽम् का ही रूप है—ओऽम्, ओमन, अमीन।

अँग्रेजी मे तीन शब्द हैं—ओमनीप्रेजेंट, ओमनीपोटेंट, ओमनीसाइट। अँग्रेजी भाषाविद् बड़ी कठिनाई मे पड़ते हैं, क्योंकि वे इन शब्दों का मूल नही खोज पाते। ये आते कहाँ से हैं? ये शब्द बड़े अनूठे हैं। ओमनीसाइंट का अर्थ होता है, जिसने सब देख लिया। लेकिन ओमन कहाँ से आता है? वह ओऽम् का ही रूप है। जिसने ओऽम् देख लिया, उसने सब देख लिया।

ओमनीप्रेजेंट का अर्थ है, जो सब जगह मौजूद है। लेकिन वह ओमन कहाँ से आता है? वह ओऽम् का ही रूप है। ओमनीप्रेजेंट का अर्थ है, जो ओऽम् के साथ एक हो गया, वह सब जगह मौजूद हो गया। तुम एक जगह

हो। जिस दिन तुम ओऽम् के साथ एकरूप हो जाओगे, तुम सब जगह हो जाओगे। ऐसी कोई जगह न होगी जगत में जहाँ तुम न होओगे। तुम अस्तित्व के साथ एक हो जाओगे।

ओमनीपोटेंट का अर्थ होता है, जिसके पास सारी शक्ति है। लेकिन मतलब इतना ही होता है कि जिसके पास ओऽम् की शक्ति है। जिसने ओऽम् को पा लिया, सब पा लिया। जो ओऽम् के साथ एक हो गया, वह सब हो गया। जो ओऽम् में डूब गया, वह सर्वशक्तिशाली हो गया।

यह ओऽम् बड़ा अनूठा शब्द है!

भारत ने जो भी खोजा है अन्तर्जगत मे, वह इस एक छोटे-से सूत्र मे समाहित है। जैसे आइंसटीन की सापेक्षतावाद की सारी खोजना एक छोटे-से सिद्धांत में समा जाती है, ऐसे ही ओऽम् के छोटे-से सूत्र मे, छोटे-से सिद्धांत मे भारत की सारी अन्तर्खोज समा गयी है। बाहर की खोज मे तो अभी बहुत कुछ बाकी है। इसलिए आइंसटीन जल्दी ही तिथिबाह्य, आउट ऑफ डेट हो जाएँगे। कोई दूसरा उनकी जगह ले लेगा; ले ही ली है जगह। लेकिन ओऽम् के आगे भीतर की कोई खोज बाकी नहीं बची। वह यात्रा पूरी हो गई है। वहां हम मंजिल पर पहुँच गये है। इसलिए ओऽम् को कभी भी विस्थापित नहीं किया जा सकता। वह सिंहासन पर रहेगा ही। तुम उससे दूर भटक सकते हो। तुम उसे भूल सकते हो। लेकिन उसे तुम सिंहासन से नहीं उतार सकते। जब भी तुम घर आओगे, तुम ओऽम् को सिंहासन पर विराजमान पाओगे।

यह जो ओऽम् है, इसके संबंध में कुछ और बात खयाल ले ले।

विज्ञान कहता है कि सारा जगत विद्युत-तरंगो से बना है—पत्थर भी, सोना भी। सारा अस्तित्व, सारी वस्तुएं, सारा पदार्थ—पदार्थ नही है—विद्युत-तरंगों का घनीभूत रूप है।

हमने कुछ और जाना है। हमने यह जाना है इधर पूर्व में, भीतर प्रवेश करते-करते कि सारा जगत ध्वनियो का ही सघ्रहीभूत रूप है और विद्युत ध्वनि का एक प्रकार है। वैज्ञानिक कहते है, ध्वनि विद्युत का एक प्रकार है और सारा जगत विद्युत की तरंगो का जाल है। हम कहते है, सारा जगत ध्वनि का जाल है और विद्युत भी ध्वनि का एक प्रकार है। तुमने कहानियाँ सुनी होंगी कि तानसेन ने दीपक राग से दीपक जला दिये। इसकी संभावना है। ध्वनि का आघात अग्नि को पैदा कर सकता है। इसकी संभावना है। इस पर बहुत प्रयोग चलते है।

और इस बात को इनकार नही किया जा सकता, क्योंकि आघात ही से तो विद्युत पैदा होती है। पहाड से जल गिरता है, उसकी चोट से विद्युत पैदा होती है। दो चकमक पत्थरों को तुम टकरा दो, आग पैदा हो जाती है। तुम दो हाथो को रगडो, हाथ गरम हो जाते हैं। रगड से गरमी पैदा होती है, विद्युत पैदा होती है।

दो ध्वनियो की रगड से भी विद्युत पैदा होती है, लेकिन बडी सूक्ष्म कला है। शायद शास्त्र भूल गया हो, हमे याद न रहा हो, कैसे हम दो ध्वनियो को टकरायें। लेकिन कभी किसी ने तानसेन ने या किसी ने भी, दो ध्वनियो को टकराना सीख लिया हो तो दीये जल सकते हैं। जब दो पत्थरो के टकराने से आग पैदा हो सकती है तो दो ध्वनियो के टकराने से क्यो पैदा नही हो सकती? टकराहट उष्मा पैदा करती है, गरमी पैदा करती है।

और अब तो विज्ञान भी धीरे-धीरे शिथिल हुआ है। उसकी पुरानी जिद नही रही, पुरानी अकड नही रही। रस्सी तो जल गई है। पर जली हुई रस्सी मे पुरानी अकड तो रह ही जाती है, बस उतनी ही अकड विज्ञान में बची है।

हजारो प्रयोग चल रहे है सारी पृथ्वी पर, जो विज्ञान को जडो से उखाड़े डाल रहे हैं। ध्वनि पर बहुत प्रयोग हुए है।

इग्लैड मे एक बहुत प्रसिद्ध प्रयोगशाला है—दि ला वार। वहा उन्होने बड़े प्रयोग किए है। विशेष सगीत के प्रभाव में बे-मौसम मे वृक्षो मे फल आ जाते है। विशेष सगीत के प्रभाव मे वृक्ष दुगनी गति से बढते हैं। विशेष सगीत के प्रभाव मे मा के गर्भ का बच्चा बहुत तीव्रता से परिपुष्ट होने लगता है। जो पौधा बिना सगीत के साल भर मे बडा होता, वह दो महीने मे उतना बडा हो जाता है सगीत के साथ।

पौधे सुनते हैं।

कनाडा मे एक छोटा-सा प्रयोग किया गया। वहा रविशकर पन्द्रह दिन तक सितार बजाता था। उसके दोनो तरफ बीज बोये गए थे। जो पौधे पैदा हुए वे सब रविशकर की तरफ झुके थे, दोनो तरफ से, जैसे की बहरा आदमी कान झुका लेता है। वे सब पौधे झुके हुए पैदा हुए। एक भी पौधा नही था जो सगीत सुनने को उत्सुक न हो। भवन के बाहर दूसरे बीज बोये गए थे, वे सब सीधे पैदा हुए थे। क्या हुआ? पौधे सुनने को आतुर थे। और बाहर जो पौधे थे वे आधे ही बढे। पद्रह दिन के प्रयोग में भीतर के पौधे दुगने बढ़ गए। उनकी शान और थी।

ध्वनि में भोजन है, जीवन है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो संगीत से आन्दोलित न होता हो, जिसके पैर न थिरकने लगते हों, जिसके हाथ ताल न देने लगते हों, जिसके भीतर कोई धुन न बजने लगती हो।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि धातुएं भी—पौधे तो ठीक, धातुएं भी—पौधे तो ठीक, धातुएं भी, सगीत से प्रभावित होती हैं। अगर कोई धातु को संगीत सुनाया जाए, उसमें जंग लगना मुश्किल हो जाता है। इस बात की बहुत संभावना है कि अशोक की लाट जो दिल्ली में खड़ी है—जिसको वैज्ञानिक नही समझ पाये अब तक कि उस पर जंग क्यों नही लगती, क्योंकि सदियों से खडी है, वर्षा, धूप, सब मौसम आते हैं, जाते हैं, अभी तक वैज्ञानिक ऐसा कोई स्टेनलेस स्टील पैदा नही कर सके जो सदियों तक धूप में, वर्षा मे बाहर पड़ा रहे और जिस पर जंग का एक दाग न आया हो। मेरी अपनी समझ यह है, कि बहुत गहन संगीत में उस लाट को तैयार किया गया है, बडे मन्त्रोच्चारो के बीच उस लाट को तैयार किया गया है। मंत्र उसे अब भी सुरक्षित किए है। वे अब भी उसकी रक्षा कर रहे है।

इजिप्त के पिरामिड है। वे पिरामिड इतने बड़े पत्थरों से बने है कि हमारे पास अभी जो क्रेने है, विकसिततम, वे भी उन पत्थरों को उठाने में समर्थ नही है। और आज से पांच हजार या चार हजार साल पहले उन पत्थरों को ले जाने का कोई उपाय नही मालूम पडता। और जहां वे पिरामिड बने है, वहां पास पत्थरो का कोई खदान नही है; सैकड़ों मील दूर खदाने हैं। रेगिस्तान मे खडे है पिरामिड। तो पत्थरो को सैकडों मील दूर से लाया गया है। उन दिनो क्रेनो का कोई सवाल नही उठता, क्योकि प्रमाण नही मिलता कि एक भी क्रेन थी या कोई यंत्र था। निहत्थे आदमियो ने उनको ढोया है। यह बिलकुल असभव है। यह हो कैसे सकता है? लेकिन ध्वनि का शास्त्र कहता है कि एक विशेष ध्वनि की अवस्था मे वस्तुएँ निर्भार हो जाती है।

तुमने शायद कभी गौर किया होगा कि जब तुम नाचते हो, प्रसन्न होते हो, गीत तुम्हारे हृदय मे गूंजता है तो तुम्हे बोझ नही मालूम पड़ता, तुम एकदम हलके हो जाते हो। जब पैर जमे होते है और नाच पैदा नही होता, जब हृदय बंद होता है और गीत नही फूटता और कही चारो तरफ कोई नृत्य की पुकार नही आती, तब तुम अपने को पाते हो जैसे पत्थर हो गए और वजनी हो गये।

तुमने खयाल किया होगा, साधारण मजदूर आज भी जब किसी बड़े पत्थर को उठाते हैं तो बड़ा हो-हल्ला मचाते है। लेकिन उस हो-हल्ले में एक सगीत

होता है—हैय्या हे! यह ध्वनि अगर बार-बार दोहराई जाये तो मजदूर बड़े-से-बड़े पत्थर को उठा लाता है।

तुमने नाविकों को मझधार मे नदी को पार करते देखा हो पूर की, तो हैया—हे करते है। जब नदी बहुत टक्कर देने लगती है और आदमी की ताकत कमजोर पडने लगती है, तब स्वर को पुकारा जाता है। स्वर तत्क्षण बचा लेता है। बड़ी ताकत दौड़ जाती है भीतर।

स्वर मे छिपी हुई ऊर्जा है। ओंकार का अर्थ है: मूल स्वर, जिससे फिर स्वर पैदा हुए, मूल स्रोत। आज उससे हमारे सारे संबंध छूट गये है, नाता नही रहा। हम भूल ही गए उन शिखरों को जो छू लिए गये थे।

हम सोचते है, दुनिया जैसे पहली बार सभ्य हो रही है। भ्रान्ति है। दुनिया बहुत बार सभ्य हो चुकी है। और दुनिया ने बहुत बार बडी उत्तुग ऊचाईया पा ली है। और फिर वे उत्तुग ऊचाईया खो जाती है।

अब आज प्रार्थना कोरा शब्द है, पूजा एक औपचारिकता है।

मैं एक घर मे मेहमान था। इकलौता बेटा घर का देर तक सो कर नही उठा था, तो मा उससे कह रही थी कि बेटा उठो, तुम ऋषि-मुनियों के देश मे पैदा हुए हो, ब्रह्ममुहूर्त मे उठना चाहिए। उस बेटे ने बिस्तर मे ही पड़े-पड़े करवट ले कर कहा, "मा, तुमको पता नही, ऋषि कपूर नौ बजे के पहले कभी नही उठता और दादा मुनि अशोककुमार तो दो बजे तक सोते है।"

ऋषि-मुनि खो गये, ऋषि कपूर, अशोककुमार रह गये!

प्रार्थना कोरा शब्द है। पूजा एक ढोंग है। जाप निरर्थक मालूम होता है। भगवान का नाम लोग जानते ही नही, कैसे ले, कब ले।

मैं एक मित्र के बेटे से पूछ रहा था कि तुम्हारे पिता कभी प्रार्थना करते है? उसने कहा: "कल ही कर रहे थे।" मैं थोडा चौका, क्योकि उनके पिता से प्रार्थना का कोई सबध जुडेगा, इसकी आशा भी नही की जा सकती। मैंने पूछा: "बताओ, क्या प्रार्थना की?" उसने कहा: "शाम को ही भोजन के वक्त प्रार्थना कर रहे थे। बोले—हे भगवान! फिर वही मूग की खिचड़ी?"

बस प्रार्थना इतनी हो गयी है! प्रार्थना एक शिकायत है।

एक मित्र कल साझ को ही मुझे मिलने आये थे। वे कहते हैं कि परमात्मा से वे नाराज हो गए। प्रार्थना करते थे, पूजा करते थे, ध्यान करते थे, और बच्चा पैदा नही हुआ, तो वे नाराज हो गए!—'हे भगवान! फिर मूग की खिचड़ी!' तो अब वे प्रार्थना नही करेंगे, पूजा नही करेंगे—नाराज है।

यह प्रार्थना कैसी, यह पूजा कैसी, यह अर्चना कैसी? यह कोई सौदा है? तुम परमात्मा पर कोई एहसान कर रहे थे? कहने लगे: "मैंने कभी कुछ मांगा नही, इतनी पूजा-प्रार्थना की, फिर भी बच्चा पैदा नही हुआ।"

अगर मागा ही न था, तो यह सवाल ही क्यों उठता है कि फिर बच्चा पैदा क्यो न हुआ? माग तो रही ही होगी। तुम्हारी पूजा झूठी है। तुम्हारी पूजा रुश्वत से ज्यादा नही। तुम परमात्मा की रिश्वत कर रहे हो। तुम कोशिश कर रहे हो फुसलाने की उसे, ताकि तुम्हारे भीतर छिपी हुई जो वासना है, उसे वह पूरा कर दे। तुम परमात्मा को अपनी वासना का चाकर बनाना चाहते हो।

भक्त तो कहते हैं: 'म्हाने चाकर राखो जी!' प्रार्थना जो करते है, तो मीरा कहती है, 'गिरधर! मुझे अपना नौकर बना लो!' तुम परमात्मा को नौकर बनाने की कोशिश मे लगे हो। बस, वही चूक हो जाती है। अगर कुछ भी मांगा तो प्रार्थना खो गयी। अगर कुछ भी चाहा तो पूजा पूजा न रही, भ्रष्ट हो गई, कुरूप हो गयी। और ओंकार तो तब उतरता है जब तुम मंदिर की तरह शुद्ध, पवित्र हो जाते हो, निर्दोष हो जाते हो, जब तुम एक छोटे बच्चे की तरह कुँआरे हो जाते हो।

इजरायल मे एक बहुत अनूठा आदमी है, उसका नाम है यूरी गैलर। वह सिर्फ इशारे से बिना वस्तुओं को छुए, उनको तोड-मरोड देता है। चाकू उसके सामने करो, बस वह सिर्फ हाथ का इशारा करेगा, चाकू मुड़ कर गोल हो जायेगा। सींखचे मजबूत उसके सामने करो, वह दस फीट, बीस फीट की दूरी से उनको झुका देगा, सिर्फ इशारे से, जिनको तुम ताकत लगा के नही झुका सकते।

पिछले वर्ष एक बहुत अनूठी घटना घटी। इग्लैंड में बी. बी. सी. टेलिविजन पर उसने अपना प्रयोग दिखलाया और सिर्फ उत्सुकता, सिर्फ एक अनहोनी घटना की सभावना के कारण उसने टी. वी. पर प्रयोग बतलाते समय कहा कि जो लोग भी टी वी. देख रहे है, वे भी अपने घरों मे प्रयोग करे, मेरे साथ, कौन जाने उनमे से कुछ लोग (क्योंकि करीब लाखों लोग टी.वी. देख रहे थे, यूरी गैलर टी. वी. पर था), शायद कुछ लोगों के पास ऐसी क्षमता हो जिनका उन्हे भी पता नही है। तो हजारों लोगों ने प्रयोग किये। दूसरे दिन जो रिपोर्ट आयी, उसमे पद्रह सौ लोग सफल हो गए थे, जिन्होंने यूरी गैलर के साथ ही टी. वी. पर देखते वक्त चीजों को आज्ञा दी, वे मुड़ गईं। मगर एक बडी आश्चर्य की बात थी कि वह जो पंद्रह सौ लोग सफल हुए थे, वे सब बच्चे थे। उनकी कोई की भी उम्र चौदह साल से ज्यादा नहीं

थी और किसी की भी उम्र सात साल से कम नहीं थी। सात और चौदह के बीच में थे, वे सभी बच्चे थे।

सात और चौदह के बीच कुँआरापन होता है। वीर्य की ऊर्जा अपनी परिपूर्ण शुद्धता में होती है। शक्ति होती है और एक भोलापन होता है। जहां शक्ति और भोलेपन का मिलन हो जाता है, वहीं परम की घटना घटती है।

यूरी गैलर भी भरोसा न कर सका कि यह कैसे हुआ? और बड़ी तो बात यह थी कि सात और चौदह के बीच क्यों हुआ?

चौदह के बाद जीवन में वासना, कामना घेर लेती है। मन फिर स्वच्छ नहीं रह जाता। मंदिर की पूजा में वासना प्रविष्ट हो जाती है। सात के पहले मन तो पवित्र होता है, लेकिन ऊर्जा नहीं होती।

तो सात और चौदह जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय है और वही बरबाद किया जा रहा है। इसलिए इस देश मे तो हम उन सारे क्षणों का बड़ा उपयोग करते थे। सात वर्ष का होते ही बच्चे को हम गुरुकुल भेज देते थे; वह जंगल चला जाता था। वहां से हम उसे इक्कीस के पहले नहीं बुलाते थे। चौदह की उम्र के सात वर्ष पहले हम उसे भेज देते थे और चौदह के बाद सात वर्ष तक और उसे वहां रहने देते थे, ताकि जिस पावनता को उसने अनुभव किया है, उसमें गहन हो जाये, सुदृढ़ हो जाए। फिर जब वापस लौटे जगत में तो जगत उसे छू भी न सके। वह जगत से गुजर जाए लेकिन जगत उसे स्पर्श भी न कर सके। फिर विवाह भी करेगा, लेकिन उसका ब्रह्मचर्य खंडित न होगा। उसके बच्चे भी पैदा होंगे लेकिन कामना कभी उसको विकृत न करेगी। यह सब कर्तव्य होगा। करना है, इसलिए वह करेगा। लेकिन उसका बिस्तर सदा बंधा रहेगा, कि कब यह पूरा हो जाए और मैं वापस लौट जाऊं। क्योंकि जो स्वाद उसने चख लिया है उन थोड़े से शक्ति के क्षणों में, वह बुलाये चला जाता है, उसकी पुकार अहर्निश सुनाई पड़ती है—सोता है, जागता है, दुकान पर काम करता है, बच्चों को बड़ा करता है, लेकिन वह पुकार खींचती है, स्वाद एक बार लग जाए परमात्मा का, तो फिर बात ही और हो जाती है।

तुम पूजा तो करते हो बिना स्वाद के। प्रार्थना करते हो बिना स्वाद के। और प्रार्थना भी करते हो, पूजा भी करते हो, कुछ पाने के लिए। नहीं, तुम ओंकार को भी जान न पाओगे। अगर ओंकार को जानना है, सब काम छोड़ देनी होगी; मांग ही छोड़ देनी होगी; खाली हो जाना होगा।

दादू इसी महामंत्र के संबंध में बात कर रहे हैं। समझने की कोशिश करें।

सबदै बध्या सब रहै, सबदै सब ही जाय।
सबदैं ही सब उपजैं सबदैं सबै समय ।।
सबद से अर्थ है ओंकार—शब्दों का शब्द ओंकार।

'सबदै बध्या सब रहै'–अगर तुम्हारे भीतर ओंकार की धुन बजे तो तुम्हारे भीतर एक एकता होगी, तुम बंधे रहोगे। टूट-फूट न जाओगे, खंड-खंड न हो जाओगे, अखंड रहोगे। जैसे माला में पिरोया हुआ धागा माला के मनकों बांधे रखता है, ऐसे ओंकार की ध्वनि अगर तुम्हें सुनाई पड़ने लगे तो तुम्हारे जीवन के सब मनके अनुस्यूत हो जाएंगे, एक माला बन जायेगी। अभी तुम सिर्फ मनकों का एक ढेर हो, माला नहीं, क्योंकि धागा नहीं है, जो तुम्हारे सब कृत्यों में, सब भावों में, सब विचारों में समा जाये और सबको एक एकता में बांध ले।

मनस्विद कहते हैं कि, आदमी एक भीड़ है। वे ठीक कहते हैं। तुम भीड़ हो। तुम्हारे भीतर बहुत आदमी हैं। आदमी ही आदमी हैं। तुम एक बाजार हो। तुम्हारे भीतर एक का अभी जन्म नहीं हुआ, क्योंकि एक के जन्म के लिए तो तुम्हें एक होना पड़ेगा, तुम्हें भीड़ को समेटना होगा, तुम्हें खण्ड-खण्ड, जो तुम बंट गए हो, उस सबको जोड़ना होगा।

ओंकार सीमेंट है, जोड़ता है, खण्ड को खण्ड से एक कर देता है, अखण्ड का जन्म होता है। और जिस दिन तुम अखण्ड होते हो, उस दिन कैसी चिंता, कैसा तनाव? सारा तनाव, सारी चिंता, सारी बेचैनी भीड़ की वजह से है। कोई पश्चिम की तरफ खींच रहा है तुम्हारे भीतर का हिस्सा, कोई पूर्व की तरफ खींच रहा है। कोई नरक जाना चाहता है, कोई स्वर्ग जाना चाहता है। कोई पूजा करना चाहता है, कोई वेश्या का विचार कर रहा है। कुछ भी तुम कर नहीं पाते। एकस्वरता नहीं है। करने भी हो तो अधूरा होता है। प्रार्थना करने भी बैठे हो तो वहां मन नहीं होता। बस एक छोटा-सा हिस्सा गुनगुनाये चला जाता है। वह ऐसी हालत होती है जैसे तुम रेडिओ सुन रहे हो और बैटरी बिलकुल फीकी हो गयी, बामुश्किल सुनाई पड़ता है कुछ। ऐसी ही तुम्हारी प्रार्थना है -पूरी ऊर्जा नहीं बहती। ऊर्जा कहीं और जा रही है।

तुम स्वर्ग भी पहुंच जाओ तो भी तुम पूरे न पहुँचोगे। तुम्हारा एकाध टुकड़ा पहुचेगा, बाकी तुम नरक में पड़े रहोगे। और दोनों के बीच जो दूरी होगी, वही तुम्हारा तनाव है। तनाव का एक ही अर्थ है कि तुम्हारे टुकड़ों के

बीच बड़ी दूरी है, बड़ा खिचाव है। एक हाथ एक तरफ खींचा जा रहा है, दूसरा हाथ दूसरी तरफ खींचा जा रहा है। यही तो बेचैनी है।

एक ही चैन है दुनिया में, और वह है जब तुम एक हो जाओ।

दादू कहते हैं: 'सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाय। सबदै ही सब उपजै, सबदै सब समाया।' उसी से तो बंधन, उसी में तो तुम एक होते हो। वही तो तुम्हे जोड़ता है। और तुम्हें ही नही, सारा अस्तित्व ओंकार से जुड़ा है।

जब तुम परिपूर्ण शून्य हो जाओगे, तब भी तुम्हे धुन सुनाई पड़ती रहेगी। वह शून्य की धुन होगी। वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार।

तुमने कभी रात का सन्नाटा सुना है? सन्नाटे का भी एक संगीत है। जब कोई भी आवाज नही होती, तब भी एक आवाज बच रहती है। जब सब शोरगुल खो जाता है तब उस सन्नाटे मे भी एक स्वर होता है। ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर की सब भीड, सब शोरगुल खो जायेगा, तब तुम्हारे भीतर तुम्हें एक स्वर सुनाई पडेगा, वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार।

और तुम्हे ही नहीं बाँधे हुए है; सारे अस्तित्व को बाधे हुए है, साधे हुए है। वही है आधार। उसके बिना सब बिखर जाएगा।

'सबदै बध्या सब रहै, सबदै सब ही जाय।'

और अगर वह शब्द तुमसे खो जाये तो तुम एक बिखरी हुई स्थिति में हो जाते हो। तब तुम्हारी आकृति विकृत हो जाती है; तुम्हारा रूप कुरूप हो जाता है; तुम्हारे कंठ में बासुरी नही बजती; तुम्हारी आँखों में ओज नही रह जाता; तुम्हारे जीवन की धारा जगह-जगह टूट जाती है, जैसे कभी ग्रीष्म के दिनों में नदिया टूट जाती है--एक डबरा भरा है, फिर रेत आ गयी, फिर थोडा सा डबरा रह गया, फिर रेत आ गयी।

जो ओंकार से जुड़ा है, वह पूर आयी नदी की भांति है, अखण्ड है। स्रोत से लेकर अंत तक, गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक एक है।

'सबदै ही सब उपजै'--इस ओंकार से ही सबका जन्म हुआ है और इस ओंकार में ही सबको लीन हो जाना है। क्योंकि, हमारी समझ से, अन्तर खोजियों की दृष्टि से, ओंकार की ध्वनि इस जगत का सारभूत तत्व है। ओंकार के ही संघात से, चोट से सब पैदा हुआ है, और ओंकार की ही पर्त-दर-पर्त जमती जाती है और विभिन्न रूप पैदा होते है।

इसमें कुछ आश्चर्य जैसा नही है। क्योंकि विज्ञान कहता है, विद्युत से सारी चीजें पैदा हुई हैं। क्या फर्क पड़ता है, विद्युत से पैदा हों या ध्वनि से पैदा

हों? दोनों ही बातें समझ मे आने जैसी है। लेकिन यह भेद क्यों है? क्योंकि विज्ञान बाहर से खोजता है। बाहर से जो चीज विद्युत जैसी दिखाई पड़ रही है, वही चीज भीतर से ध्वनि जैसी दिखाई पड़ती है।

एक तो है मकान के बाहर से देख जानेवाला आदमी और एक है अतिथि की तरह मकान के भीतर आ जानेवाला आदमी—धर्म और विज्ञान में यही फर्क है। विज्ञान बाहर-बाहर घूमता है, तो बाहर की रेखा और परिधि को पहचान लेता है ठीक से। धर्म अंतर्गृह मे प्रवेश करता है और भीतर से चीजों को जानता है।

दोनो के मध्य मे कला का जगत है—कवि का, चित्रकार का, मूर्ति का। मूर्तिकार दोनो के बीच है। चित्रकार दोनो के बीच है। कवि दोनों के बीच है। कवि साधारणत तो बाहर हो जाता है, साधारणतः तो बाहर रहता है, लेकिन कभी मौका मिल जाये तो चोर की तरह भीतर प्रविष्ट हो जाता है। कला एक तरह की चोरी है। कभी-कभी चोर तुम्हारे घर मे रात के अंधेरे मे घुस आता है। वह अतिथि नही है। वह निमंत्रित भी नही है। सामने के द्वार से भी प्रवेश नही किया है। वस्तुत तो जब मेजवान सोया है, तब वह आता है। अगर मेजवान जागा हो तो वह आयेगा ही नहीं।

विज्ञान बाहर घूमता रहता है। कवि कभी-कभी चोरी से भीतर प्रवेश कर जाता है। इसलिए कविता मे कभी-कभी धर्म की धुन सुनाई पडती है। काव्य मे कभी-कभी परम अनुभूति का थोडा सा प्रकाश मालूम पड़ता है। और अक्सर यह होता है कि अगर किसी कवि की कविता पढो तुम तो तुम्हारे मन मे एक छाया पैदा होती है कवि की, कि कितना सुदर, कितना भव्य कितना, दिव्य न होगा यह व्यक्ति।

मगर भूल कर इस व्यक्ति को मिलने मत जाना, नही तो तुम उसे बैठे किसी होटल मे चाय पीते पाओगे, या बीडी सुलगाते पाओगे। और तुम बड़े हैरान होओगे और बडे उदास कि इतनी ऊचाई थी कविता की और यह यह कवि कहा पडा है! और कवि तुम्हे बिलकुल साधारण आदमी मालूम पडेगा। उसका कोई कसूर भी नही है। साधारणत वह बाहर रहता है। मौके-बेमौके, अंधेरे-उजाले, कभी समय पाकर चोरी से भीतर घुस जाता है।

धर्म अतिथि की तरह भीतर प्रवेश करता है—आमंत्रित अतिथि की तरह तैयार हो कर प्रवेश करता है। इसलिए हमने इस मुल्क में कवियों को दो शब्द दिये है, दोनो का मतलब एक होता है। और दुनिया की किसी भाषा में कवि के लिए दो शब्द नही है, सिर्फ भारत की भाषाओं में है। एक को हम

कवि कहते हैं, दूसरे को हम ऋषि कहते हैं—दोनों का मतलब एक ही है। दोनों का मतलब है द्रष्टा, जिसने देखा।

लेकिन दोनों में फर्क क्या है? एक ने चोर की तरह देखा। घुसा वह घर के भीतर, मगर डरा-डरा घुसा। घुसा वह भी, लेकिन बिना तैयारी के घुसा। घुसा वह भी, लेकिन योग्य न था और घुसा। घुसा वह भी, लेकिन मालिक जब सोया था, तब घुसा। थोडी खबर ले आता है, जैसा कि चोर भी घर के भीतर की थोड़ी खबर देगा, लेकिन अंधेरे में बहुत ज्यादा देखा नहीं जा सकता। और घबड़ाया हुआ, डरा हुआ, दूसरे के घर मे कितना देख पायेगा, थोडी-बहुत खबर ले आता है।

धर्म तैयार हो कर भीतर आता है। साधक तैयारी करता है, अपने को योग्य बनाता है, पात्र बनाता है। प्रतीक्षा करता है तब तक द्वार पर, जब तक कि बुला न लिया जाये। द्वार पर दस्तक भी नही देता—क्योंकि जब योग्य हो जाऊंगा, बुला लिया जाऊंगा—प्रतीक्षा करता है। तब वह जो देखता है, वह बात ही और है। वह है ऋषि।

उपनिषद् के कवियो को हम ऋषि कहते हैं। बडी मुश्किल से कभी हजार कवियो मे एक कवि ऋषि होता है। ऋषि का मतलब है जो उसने जाना है वह सिर्फ जाना ही नही, वह उसका जीवन भी है। और कवि का अर्थ होता है जिसने जाना है वह अलग, उसका जीवन अलग। तुम उसके जीवन में खोजबीन करने मत जाना। तुम उसकी कविता को पढ़ना और कविता में कुछ पा सको तो पा लेना, लेकिन कवि को खोजने मत जाना, अन्यथा निराशा हाथ लगेगी।

अगर कवि को खोज के भी तुम्हे कविता ही दिखाई पडे कवि मे तो वह ऋषि है। ऐसा कभी-कभी होता है। कोई एक रविंद्रनाथ, कोई एक खलील जिब्रान, सिर्फ कवि नही होता, ऋषि भी होता है। तब वह सिर्फ गाता ही नही, जो गाता है, उसे जीता भी है। उसके शब्द शब्द ही नही होते, उसके शब्द मे उसके प्राण की धडकन होती है। तब वह अपने को उंडेलता है। और जो जाना है उसने, जी कर जाना है। चोरी से, खिडकी से, पीछे के द्वार से झलक नही ली है, मेहमान की तरह परमात्मा के भवन का वासी बना है। और जो वहा मेहमान की तरह रहा है, वह सदा के लिए रूपातरित हो जाता है।

'सबदै बध्या सब रहै, सबदै सब ही जाय।
सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाय॥'

उसको, जिसको विज्ञान बाहर से देखता है, और कहता है विद्युत, उसे धर्म भीतर से देखता है और कहता है शब्द। और दोनो के बीच में कवि है, कला है। वह उसे कहती है रस--रसो वै सः। रस से ही सब बना है। लेकिन सारा रस झरता है उस ओंकार से और जिसको विज्ञान विद्युत की तरह जानता है, वह उसी ओंकार की उष्मा है, गरमी है; उसी ओंकार के प्राण का स्पन्दन है।

दादू सबदै ही सचु पाइये, सबदै ही संतोष।
सबदै ही स्थिर भया, सबदै ही भागा सोक॥'

'दादू सबदै ही सचु पाइये'--सच के पाने का और कोई उपाय नही है। सोचने से न पाओगे, विचारने से न पाओगे। लाख सिर पटको, लाख पहेलियां सुलझाओ, तर्क जमाओ, सिद्धात बनाओ, शास्त्र निर्मित करो--नही, सत्य को ऐसे न पाओगे। सत्य को पाने का ढंग दर्शनशास्त्र नही है। सत्य को पाने का ढंग साधना है, योग है, प्रार्थना है, ध्यान है, समाधि है।

कितना ही तुम सोचो, तुम ही तो सोचोगे! तुम्हारा सोचना तुमसे ऊपर नही जा सकता। तुम्हारे सिद्धात तुमसे बड़े नही हो सकते। तुम्हारे सिद्धात तुमसे बहुत छोटे होंगे। तुम्हारे हाथ की पकड़ मे जो आ गया, वह तुम्हारे हाथ की मुट्ठी से छोटा होगा। अगर तुम्हें परमात्मा को पकडना हो तो रास्ता और है। तुम्हें उतना ही विराट हो जाना पडे, तुम्हें उतना ही शून्य हो जाना पड़े, तुम्हे इतना खाली हो जाना पड़े, इतना खाली कि अगर पूरा परमात्मा भी आये तो जगह मिले, जगह बनानी पडे।

'दादू सबदै ही सचु पाइये।'

ओंकार जगह बनाना है। जब तुम ओंकार की धुन से भर जाते हो, तब सब शात हो जाता है, सब शून्य हो जाता है। वही एक धुन बजती रह जाती है। जैसे मंदिर के सब यात्री जा चुके और घंटा ही बजता रह गया। हर मंदिर के द्वार पर हमने घंटा लटका रखा है। कारण है। द्वार के बाहर ही घंटा लटका रखा है। और हर मंदिर के यात्री को घंटे को बजा कर ही प्रवेश करना है। तुम यह मत सोचना कि घंटा बजाना कोई कालबैल जैसा मामला है कि दरवाजे पर घंटी लगी है ताकि भीतर के मालिक को पता चल जाये। वह कोई भगवान झपकी खा रहे हैं, उनको जगाने के लिए नही है, कि शायद सो रहे हो, या शायद कोई निजी गुफ्तगू मे लगे हों, तो जरा घंटा बजा के खबर कर दें, जैसा घर मे लोग खांस-खखार के प्रवेश करते हैं। नहीं, मंदिर के द्वार पर घंटा प्रतीक है कि ध्वनि उसका द्वार है, ध्वनि से उस तक पहुंचोगे। वह जो घंटनाद है, वह तो सिर्फ सूचना है, इस बात की कि

असली द्वार ध्वनि है। और अगर उसमें प्रवेश करना है तो ध्वनि को साधो, ध्वनि के योग्य बनो।

तुमने कभी देखा, शास्त्रीय संगीतज्ञ बैठता है अपने सितार को लेकर, तो लोग तो ऊब जाते हैं। अभी संगीत शुरू ही नही हुआ, वह साज ही बिठा रहे हैं, ठोकाठाकी कर रहे हैं, तार ठीक कर रहे हैं, तबलेबाज तबले को ठोंक रहा है। लोगों को बड़ी हैरानी होती है कि यह क्या कर रहे हो; यह घर से ही कर के आ गये होते! यह आधा घंटा इसमें खराब करना!

लेकिन प्रतिपल साज को बिठाना पड़ता है, नही तो बासा हो जाता है। बासे साज पर ताजा संगीत पैदा नही होता। घर से बिठाकर वे भी आ सकते थे, कोई अड़चन न थी, वही ठोकठाक कर लेते; लेकिन जितनी देर में आते, जितना समय व्यतीत हो जाता, उतना ही साज बासा हो जाता। प्रतिपल ही साज को ताजा करना पड़ता है। और ताजे साज पर ही ताजा संगीत पैदा होगा। जरा भी बासा न हो जाये, इसलिए बेचारा संगीतज्ञ वही बैठ कर ठोक-पीट करता है। उसके पीछे राज है। और जब तार ठीक बैठ जाते हैं, तो संगीत पैदा करना बहुत कठिन नही है।

कहावत है कि संगीत तो कोई भी पैदा कर सकता है, लेकिन साज सिर्फ बड़ा अधिकारी पात्र ही बिठा सकता है। क्योंकि साज बिठाना बड़ी सूक्ष्म बात है। फिर तार छेड़ देना उतनी बड़ी बात नही है। तार बिठाना बड़ी बात है।

सारा धर्म तुम्हारी हृदय की वीणा की ठोकठाक है, साज बिठाना है। जिस दिन साज बैठ जाएगा, उस दिन तो बच्चा भी तार छेड़ दे तो भी संगीत उत्पन्न होने लगेगा। असली बात साज का बैठ जाना है और उस साज को बिठाने के लिए ही सारी साधना है। ओंकार के रटन को कहा जाता है। वह सिर्फ साज को बिठाना है, वह संगीत नही है। वह सिर्फ हथौड़ी से ठोक रहे हैं तबले को, कस रहे है तारों को।

ओंकार के पाठ को कहा जाता है। मैं भी तुमसे कहूँगा। एक घडी चौबीस घड़ी में निकाल ही लेनी चाहिए जब तुम कुछ भी न करो। खाली बैठ जाओ, ओंठ बंद कर लो, जीभ को तालू से लग जाने दो, रीढ सीधी हो और तुम भीतर ओंकार का नाद करने लगो। ओंकार के नाद को भीतर करने का मतलब है कि तुम ओंठ से आवाज बाहर मत निकालो। अंदर ही गुंजाओ लेकिन गुंजाओ इतने जोर से कि बाहर लोगों को सुनाई पड़े। ओंठ से न निकले, सुनाई जरूर पड़े। तुम्हारे रोएं-रोएं से निकले। तुम एक गूंज बन जाओ।

बड़ा मीठा अनुभव होता है। भीतर जैसे अमृत झरने लगता है थोड़े ही दिनों में। और यह अभी असली ओंकार नहीं है। नकली ओंकार इतना कर देता है तो असली की तो बात ही मत करो। उसकी तो कोई तुलना ही नहीं हो सकती। तुम सिर्फ आंख बंद कर के—रीढ़ सीधी इसलिए ताकि तुम्हारी भीतर सारा शून्य सीधा खड़ा हो जाए और तुम ओंकार को गुंजाने लगो।

जब श्वास बाहर जाये तो तुम ओंकार की ध्वनि करो—ओऽम्...ओऽम्। जब श्वास भीतर जाएगी तब तो ध्वनि न कर पाओगे। तो एक रिदिम, एक लय पैदा हो जाएगी। श्वास बाहर जायेगी। श्वास बाहर जाएगी, तुम श्वास को ओंकार की ध्वनि से भर दो। फिर श्वास भीतर जाएगी, शून्य रहेगा। फिर श्वास बाहर जाएगी, फिर ओंकार की ध्वनि करो इतने जोर से कि बाहर कोई गुजरता हो तो सुनाई पड़े। जैसे एक मधुमक्खियों का जत्था जा रहा हो तो एक गूंज मालूम पड़ती है, ऐसी ही गूंज बाहर मालूम पड़ेगी। और वह गूंज तुम्हारे शरीर को भी स्वस्थ करेगी, तुम्हारे बिखरे मन को बांधेगी और तुम्हारे भीतर एक अपूर्व शान्ति का जन्म होगा और एक मस्ती छा जाएगी।

ध्वनि की अपनी सुरा है। इसीलिए तो संगीत सुनते-सुनते तुम्हारा सिर हिलने लगता है, जैसे शराबी का हिल रहा हो।

मैंने सुना है, लखनऊ में वाजिद अली के दिनों में ऐसा हुआ, एक बड़ा संगीतज्ञ आया और उसने वाजिद अली से कहा कि मैं संगीत तो प्रस्तुत करूंगा, लेकिन शर्त है एक—कोई सिर न हिलाए। वाजिद अली तो पागल था ही। उसने कहा. "तुम फिक्र मत करो। जो सिर हिलाएगा, कटवा देंगे।" गांव में डुंडी पीट दी गई कि जिसने भी सिर हिलाया, उसका कट जाएगा। इसलिए अगर सिर हिलाना हो तो आना ही मत।

जहां सुनने दस हजार लोग आए होते—क्योंकि बड़ा ख्यातिनाम संगीतज्ञ था—वहां मुश्किल से सौ-पचास आदमी आए और वह भी ऐसे आदमी जिसको अपने पर भरोसा है। हठयोग के साधक होंगे या इस तरह के लोग, कसरती, पहलवान, जिनको कि पक्का है भरोसा कि सिर न हिलने देंगे। क्योंकि खतरा है, वाजिद अली पागल है। मक्खी सिर पर बैठ जाए और तुम हिला दो तो वह फिर सुनेगा ही नहीं, कि हमने संगीत के लिए नहीं हिलाया था।

तो लोग बिलकुल सध कर बैठे, बुद्ध की प्रतिमाओं की तरह बैठे। संगीत शुरू हुआ। घड़ी भी न बीती होगी। कुछ सिर हिलने लगे, बेतहाशा हिलने लगे। वाजिद अली तो घबड़ाया खुद भी। उसने सोचा कि वह तो नाहक हत्या हो

जाएगी। अब इन नासमझों को कहलवा दिया, डुंडी पिटवा दी, फिर भी आ गये हैं, और सामने ही बैठे हैं और संगीतज्ञ को भी दिखाई पड़ रहा है।

उसने नंगी तलवारे लिये आदमी खड़े कर रखे थे। संगीत पूरा हुआ। वे आदमी पकड़ लिए गए। और वाजिद अली ने कहा संगीतज्ञ को, बोलो, कटवा दू इनके सिर? उसने कहा कि नही, किसी और कारण से मैंने ऐसा कहा था। बाकी सब को विदा कर दो, अब इनके साथ रात बिताऊगा। यही असली हकदार है सुनने के।

क्योंकि जिनके भीतर संगीत से शराब पैदा न हो जाये, वे भी कोई सुनने वाले है? यह तो परीक्षा थी सिर्फ। क्योंकि अब ये शराब की हालत में हैं, अब ये होश में नही है। जब तक होश था, तब तक तो ये भी साधे रहे। जब बेहोशी आ गई, तब ये न साध पाये। उन लोगो ने भी कहा, हमने सिर हिलाए नही, सिर अपने से हिले। हम तो अपनी तरफ से न हिलाने की ही जिद किए थे। हमने तो कई बार रोकने की भी कोशिश की, मगर परवश! सिर था कि हिले जा रहा है, जैसे हमारा हिस्सा ही न हो।

तुमने शराबी को चलते देखा है? वह काफी सभल कर चलता है। कोई आदमी इतना संभल के नही चलता, जितना शराबी सभल के चलता है। क्योंकि उसको पता है कि वह डावाडोल रहा है। वह बहुत सभल के चलता है, लेकिन इससे क्या फर्क पडता है?

सगीत की अपनी सुरा है; वैसी सूक्ष्म कोई भी सुरा नही। और सब शराबें स्थूल है।

अगर तुमने अपने भीतर ओंकार के नाद को गुजाया—और ध्यान रखना कि यह तुम्हारा नाद है; अभी तुम्हे असली नाद का पता ही नही है—तो भी तुम्हारे भीतर एक मस्ती पैदा होगी; तुम एक मदमस्ती मे जीने लगोगे। तुम चलोगे और ढंग से! स्फूर्ति और होगी! उठोगे और ढग से! आखों में एक नशा छाया रहेगा, जैसे जिंदगी मे एक पहली दफा उत्सव की घडी आयी है।

अगर तुम इस तरह ओंकार की ध्वनि करते रहो, करते रहो, करते रहो, करते रहो, किसी दिन अचानक तुम पाओगे कि तुम्हारी धुन तो जारी है ही, एक और धुन तुम्हारे भीतर पैदा हो रही है। यह उसी दिन पैदा होती है जिस दिन तुम्हारी वीणा पूरी कस जाती है और तैयार होती है, साज राजी होता है। उस दिन तुम पाओगे, एक धुन तो तुम कर रहे हो, जो अब कुछ भी नहीं है; एक फीका स्वर है, कार्बन कापी है। असली धुन अब पैदा हो रही है। तब तुम अपनी धुन को बंद कर देना। तब तुम सुननेवाले बन जाना। अब तक तुम कर्ता थे; अब तुम प्राणों को थाम लेना। अब तुम आंखें मूंदा

लेना भीतर। अब तुम प्राणों को थाम लेना। क्योंकि भीतर जो घट रहा है, वह अपूर्व है; वह अतुलनीय है, उसकी कोई उपमा नहीं है। भीतर अमरस की धार बहने लगेगी। रोआ-रोआ किसी अपूर्व प्रकाश से भर जाएगा। अधकार गया! दुर्दिन गये, महासुख बरसेगा! मिलन का क्षण करीब आ गया।

ओंकार तुम शुरू करो। मगर तुम खीचे मत जाना और प्रतीक्षा करना उस दिन की जिस दिन भीतर का ओंकार फूटने लगे। उस दिन तुम बिलकुल चुप हो जाना। तुम्हारा ओंकार तो सिर्फ आयोजन था, ताकि रास्ता बन जाये उस ओंकार के बहने के लिए, ताकि तुम्हारे यंत्र मे मार्ग बन जाये उस ओंकार को झेलने के लिए। तुम्हारा ओंकार तो सिर्फ पूर्व-तैयारी थी, रिह-र्सल था, असली नाटक तो तब शुरू होता है जब तुम्हारा ओंकार तो गया और उसका ओंकार शुरू हुआ—एक ओंकार सत्नाम!

'दादू सबदै ही सचु पाइये'—और उस घडी में ही सत्य से मिलन है। 'सबदै ही सतोष'—और सन्तोष उस सत्य की छाया है। उसके पहले तुम लाख सतोष की बाते करो, तुम्हारा सतोष सात्वना है, संतोष नही। और सात्वना को भूल कर सतोष मत समझना। वह तो बड़ी नपुसक स्थिति है। सात्वना नपुसक स्थिति है, सतोष महा ऊर्जा से भरी हुई घड़ी है।

तुम भी सोचते हो कि सतोष है। तुम भी कहते हो कि जो है, सब ठीक है, लेकिन जैसा तुम कहते हो, जो है सब ठीक है, उसमे भी शिकायत मौजूद है। जरा भीतर झाक कर देखोगे तो पाओगे, तुम भी ठीक नही हो। कह रहे हैं—मन को समझा रहे हैं। न कहेगे तो कोई हटने वाला नहीं है। दुख और नाहक फजीहत होगी, और लोग भी जान लेगें। तुम किसी तरह झूठी मुस्कराहट अपने दुख के सरोवर के चारो तरफ बाध रखते हो। किसी तरह अपने को सभाले रखते हो, कि सब ठीक है।

कुछ भी ठीक नही है। ठीक हो भी नहीं सकता। सत्य के बिना कभी कुछ ठीक हुआ भी नही है। इसलिये मै नही करता कि तुम संतोष साधो, मैं तो कहता हूं, तुम ओंकार साधो। ओंकार के साधने से सत्य आएगा।

सत्य की छाया है सतोष, सत्य के पीछे चला आता है। जिसका सत्य से मिलन हो गया वह सतुष्ट हो जाता है। उसके पहले संतुष्ट हो भी कैसे सकते हो? और दुर्भाग्य होगा अगर सतुष्ट हो जाओ। क्योंकि अगर सतुष्ट हो गये तो फिर सत्य को कौन खोजेगा? फिर तो खोज ही बंद हो गई।

इसलिये परमात्मा की बडी कृपा है कि सत्य से पहले वह तुम्हे संतुष्ट नही होने देता। अगर तुम सतुष्ट हो गये हो तो यात्रा ही समाप्त हो गई।

धर्म संतोष नहीं है, धर्म महा संतोष है, असंतोष की प्रबल ज्वाला है। अग्नि की भट्टी की तरह तुम जलोगे तुम असतोष में और तभी कभी यात्रा पूरी हो सकती है। तुम जल्दी सतोष की करते हो।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है, जल्दी सतोष मिल जाए। सतोष इतनी जल्दी मिल जाए तो दुर्भाग्य होगा। फिर तुम वही बैठ रहोगे जहां हो, फिर तुम आगे न बढ़ोगे। तो मै तुमसे कहता हूँ, बाहर की चीजो मे चाहे संतोष साध लेना; भीतर के जगत मे सतोष मत साधना।

ठीक है मकान छोटा है, समझ लेना कि ठीक है, चल जायेगा काम, क्योंकि ऐसे तो बड़े से भी नही चलता। बडा भी मिल जाएगा तो भी छोटा ही रहेगा। जो भी मिल जाये, वह छोटा हो जाता है। असल मे छोटे की एक ही परिभाषा है—जो तुम्हारे पास है, वह छोटा है। जो दूसरे के पास है, वह बडा है। और तो कोई परिभाषा नही है छोटे की। इसलिये जो भी मिलेगा, छोटा हो जाएगा।

ठीक है, बाहर के काम में सतोष साध लेना, लेकिन भीतर के जगत में जब तक परमात्मा न मिल जाए, उससे कम पर राजी मत होना। उससे कम पर अगर तुम राजी हो गये तो चूक जाओगे।

तुमने पढी है वह कथा? नचिकेता को उसके पिता ने भेज दिया यम के द्वार पर। यम तीन दिन बाद आया। यम की पत्नी ने बहुत कहा कि तू कुछ भोजन कर ले, विश्राम कर ले। उसने कहा कि नही। पहले तो जिस काम से आया हूँ, वह निपटाऊ। अभी कैसा विश्राम ? अभी कैसा भोजन ? कहीं भोजन, विश्राम मे भूल न जाऊँ, पहले तो मिलना है।

द्वार पर ही नचिकेता को यम मिला। इस छोटे-से लड़के की अदम्य जिज्ञासा देखकर यम का हृदय भी पसीज गया। वह सबसे कठिन हृदय होना चाहिए, क्योंकि मृत्यु का देवता है यम। वह भी पसीज गया। उसने कहा, तू माग ले—घोड़े-हाथी, धन-दौलत, हीरे-जवाहरात। नचिकेता ने कहा, "इनके मिल जाने से तृप्ति होगी ?" यम मुश्किल मे पडा। उसने कहा "तू साम्राज्य माग ले सारी पृथ्वी का, चक्रवर्ती बन जा।" पर नचिकेता ने कहा "मेरे सवाल का जवाब दे। उससे मै सतुष्ट हो जाऊगा ?"

यम झूठ न बोल सका। जिज्ञासा प्रबल हो, मृत्यु भी झूठ नही बोल सकती। जिज्ञासा गहन हो तो यम भी धोखा नही दे सकता। इस छोटे बच्चे को धोखा देना मुश्किल था। उसने कहा कि नही, यह तो मै न कह सकूगा। नहीं, इससे सतोष तो न मिलेगा। तू अनत काल तक जीवन माग ले। तुझे जितना जीना हो उतना जीना।

पर वह नचिकेता अपनी जिद पर अड़ा रहा। उसने कहा कि उससे क्या होगा? एक दिन तो फिर आखिर में मरूंगा। क्या इससे अमृत मिला जायेगा-लम्बा जीवन? अमृत का मिलन हो जायेगा? संतुष्ट हो जाऊंगा?

यम ने कहा, तू जिद्दी है। नहीं, उससे भी संतोष न मिलेगा?

तो नचिकेता ने कहा, जब आप दे ही रहे हैं वरदान ऐसे उदार हृदय से, तो मुझे वही रास्ता बता दें जिससे अमृत मिल जाए, और संतुष्टि हो जाये।

नचिकेता की तरह बैठे रहना द्वार पर, जब तक कि संतुष्टि न मिल जाये। तब तक जीवन कुछ भी दे-कई भुलावे देगा जीवन—कहना कि ठीक है सब, धन्यवाद! पर अपने भुलावे अपने पास रखो। मेरे अग्नि मेरे पास, मेरी प्यास मेरे पास, मेरी जलन मेरे पास, मेरा विरह मेरे पास, जलूंगा; लेकिन अब वर्षा तो वही चाहिए जो आखिरी हो। इन छोटी-मोटी वर्षाओं से क्या होगा? फिर आग पैदा होगी, फिर जलूंगा। आखिरी वर्षा चाहिए।

इसलिये मैं कहता हूँ, धर्म असंतोष है, महा असंतोष है, दिव्य असंतोष है—डिवाइन डिसकंटेंटमेंट। और जो उस असंतोष से गुजरता है, वही किसी दिन संतोष को उपलब्ध हो पाता है लेकिन संतोष सीधा नहीं मिलता। वह तुम्हारी चेष्टा से नहीं मिलता।

'दादू सबदैं ही सच्चु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही स्थिर भया, सबदैं भागा सोक॥'

उस ओंकार की ध्वनि में ही सत्य से मिलन होता है, संतोष आ जाता है। उस ओंकार की धुन में ही स्थिरता आती है, स्थिर हो जाता है प्राण, सारी चंचलता खो जाती है, सारी भाग-दौड़, आपा-धापी मिट जाती है, और उसी क्षण—"सबदैं ही भागा सोक"—और सारा दुख तिरोहित हो जाता है।

जानने वालों की दृष्टि में चंचलता दुख है। जानने वालों की दृष्टि में स्थिर हो जाना सुख है। जो स्थिर है वह सुखी है। जो दौड़ रहा है, भाग रहा है, वह दुखी है। तुम सोचते हो उलटा। तुम्हारा तर्क यह है कि दुखी हूँ, इसलिये भाग रहा हूँ। और तुम किसी को बैठे देखते हो, किसी बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे, तुम कहते हो, सुखी है इसलिये बैठा है।

मामला उलटा है। यह बैठा है इसलिये सुखी है। तुम दौड़ रहे हो सलिये दुखी हो। तुम भी बैठ कर देखो। तुम कहते हो, बैठूं कैसे?, जब तक सुख न मिलेगा तब हम बैठेंगे न। तब तो सुख कभी मिलेगा नहीं, क्योंकि वह बैठने से मिलता है। तुम कहते हो, अभी अगर दौड़धूप बंद कर दी तो क्या होगा? अभी तो बहुत सुख बाकी पड़े हैं। दुख ही दुख जीवन

में पाये हैं; थोड़ा तो सुख ले लेने दो; थोड़ा तो दौड़ लेने दो, थोड़ा तो कुछ पा लेने दो–फिर बैठ जाएंगे।

(किसी ने कभी दौड़ कर कुछ पाया? इतिहास में कोई सबूत है, एकाध भी? किसी ने कभी दौड़ कर कुछ नही पाया। दौड़ कर खोया भला, पाया नहीं। जिन्होंने पाया बैठ कर पाया। बैठ जाने की कला ही बड़ी भारी कला है। बस तुम बैठ जाओ। दौड़ो मत। स्थिर हो जाओ। उसको कृष्ण ने गीता में स्थितप्रज्ञ कहा है—जिसकी प्रज्ञा ठहर गई; ऐसे ठहर गई जैसे किसी भवन में जिसके द्वार-दरवाजे बद हों, हवा के झोंके न आते हों और दीये की ज्योति थिर होकर जलती है, कपती नही–ऐसी जिसकी प्रज्ञा ठहर गई।)

'सबदै ही थिर भया, सबदै ही भागा सोक॥'

'दादू सबदै ही मुक्ता भया'—शब्द से ही मुक्त हुआ। सबदै समझे प्राण–और शब्द से ही जीवन का रहस्य जाना। 'सबदै ही सूझै सबै'–शब्द से ही आंख खुली, सूझना शुरू हुआ। 'सबदै सुरझै जाण'–और शब्द से ही जितनी उलझनें थी, सुलझी।

यह शब्द ओंकार की तरफ इशारा है।

क्यो नानक, दादू, कबीर शब्द कहते है? कारण है। वे कहते है, ओंकार सीधा-साधा कहना ठीक नही, वह बडी नाजुक बात है। उसे इशारे से कहते हैं।

यहूदियो मे एक पुराना रिवाज है कि परमात्मा का नाम मत लो, क्योंकि नाम लेना बहुत सीधा हो जाता है शोभा नही देता। भारत में रिवाज है कि पत्नी पति का नाम नही लेती। शोभा नही देता। थोड़ा सा बेहूदा लगता है। इतना सीधा? न, प्रेम नाजुक बात है। पत्नी पति का नाम नही लेती। भक्त भगवान का नाम नही लेता।

सत उसको बार-बार शब्द कहते है, इशारा करते है।

'सबदै ही सूझै सबै, सबदै सुरझै जाण।'

'पहली किया आप थे, उतपत्ती ओंकार।'

दादू कहते हैं, परमात्मा से जो पहली होने की घटना घटी, वह है ओंकार, जो पहला उद्घोष हुआ, वह है ओकार, जो पहली सृष्टि हुई, वह है ओकार; जो पहली लहर उठी, वह है ओकार।

ध्यान रखना, परमात्मा में जो पहली लहर है, वही तुममें अंतिम लहर होगी, अगर परमात्मा में जाना है। ओकार पहली लहर है परमात्मा की अर्थात्, हुआ, परमात्मा ससार में आया; स्रष्टा सृष्टि बना, लहर उठी। अगर

तुम्हें वापस जाना है तो उसी मार्ग से लौटाना होगा। ओंकार अंतिम बात होगी तुम्हारे जीवन में। उसके आगे परमात्मा है। उसके आगे फिर कुछ भी नहीं है। जिस दिन ओंकार भी शांत हो जाएगा, और महाशून्य रह जायेगा, उस दिन सिर्फ परमात्मा रह जाएगा, उस दिन तुम परमात्मा हो।

'पहली किया आप थे, उतपत्ती ओंकार।
ओंकार थे उपजे, पच तत्त आकार।।'

और दादू कहते है कि फिर ओंकार में पांच महा तत्त्व पैदा हुए—पृथ्वी आकाश, जल, अग्नि इत्यादि। सारा संसार फिर उसी शब्द की, अलग-अलग जोड़ों में निर्मित हुआ।

'दादू सबदै बाण गुरु साध के, दूरि दिसतर जाइ।
जेहि लागै सो उबरै, सूते लिये जगाइ।।'

'दादू सबदै बाण गुरु साध के'—और उसी ओंकार को गुरु अपनी प्रत्यंचा पर साधता है। उसी ओंकार को गुरु बाण की तरह अपने जीवन की प्रत्यंचा पर साधता है, खींचता है।

'सबद बाण गुरु साध के'—और फिर कोई भी दिशा, और कितनी ही दूरी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर शिष्य राजी है तो कहीं भी हो, गुरु का बाण उसे छेद देता है।

'दूरि दिसतर जाइ।'—क्योंकि उस ओंकार की ध्वनि के लिये न तो कोई दिशा है, न कोई दूरी है। अगर शिष्य खुला है और राजी है, और हृदय के वातायन उसने खोल रखे है तो तीर लग जायेगा। तीर पहले तो पीड़ा देगा, पहले तो मारेगा, फिर जिलायेगा। और फिर ऐसा जिलायेगा कि फिर कोई मरना नहीं होता। तो तीर मृत्यु भी है और पुनर्जीवन भी।

'दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसतर जाइ।
जेहि लागै सो उबरै, सूते लिये जगाइ।।'

जिसको लग जाता है बाण वह उबर जाता है।

'सूते लिये जगाइ—' इसे थोड़ा समझें। जो सो रहे है, उन्हें बाण मार कर जगा लिया।

दो बातें हैं, अगर शिष्य राजी न हो और गुरु बाण मारे तो ज्यादा-से ज्यादा सोये को जगा सकता है। अगर शिष्य राजी हो और गुरु बाण मारे तो उबार ले सकता है, परम मुक्ति घटित हो सकती है। अगर शिष्य राजी न हो, तो शिष्य फिर सो जाएगा। अगर शिष्य राजी हो तो फिर कोई सोने का उपाय न रहा। वही मुक्ति का अर्थ है। मुक्ति का अर्थ है,

ऐसे जागे ऐसे जागे कि फिर कोई सोना न रहा, फिर सोने का कोई उपाय न रहा।

तो बहुत बार गुरु तब भी बाण मारता है जब तुम राजी नहीं हो, तब तुम्हें सिर्फ जगाता है। उतना तो गुरु अपनी तरफ से भी कर सकता है कि तुम्हें थोड़ा हिला दे, कंपा दे और जगा दे। अगर तुम इस जागने का उपयोग कर लो और राजी हो जाओ तो दूसरी घटना भी घट सकती है। लेकिन वह तुम पर निर्भर है।

कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को उसकी इच्छा के खिलाफ मुक्त नहीं कर सकता। और स्वभावतः यह ठीक भी है। क्योंकि अगर कोई तुम्हें मुक्त भी जबरदस्ती कर दे तो वह मुक्ति ही क्या रही! अगर तुम मुक्त भी तुम्हारी इच्छा के खिलाफ किये जा सको तो वह तो गुलामी हो गई।

तो मुक्ति की परम घटना तुम्हारे राजी होने से घटती है। लेकिन तुम्हें जगाया जा सकता है, तुम्हे हिलाया जा सकता है, तुम्हें चौंकाया जा सकता है। और अगर तुम थोड़े भी समझदार हो तो उस चौंकाई हुई हालत का तुम उपयोग कर लोगे। अगर तुम बिलकुल नासमझ हो कि तुम फिर करवट ले कर सो जाओ और शायद गुरु को एक गाली भी दोगे कि क्यों नाहक नींद खराब कर रहे हो; अपना काम देखो और हमें सोने दो।

'दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागै सो ऊबरै, सूते लिये जगाई॥'

'सबद सरोवर सूभर भरया, हरि जल निर्मल नीर।'

वह जो शब्द का सरोवर है, वह लबालब भरा है परमात्मा के जल से।

'हरि जल निर्मल नीर'

'दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर॥' और जो उसे प्रेम से पी लेते हैं, वे अखिल ब्रह्म के साथ एक हो जाते हैं।

उस जल को पीने की कला प्रेम है। तुम उसे अपनी प्यास के कारण भी पी सकते हो; लेकिन तब परमात्मा का तुम उपयोग कर रहे हो। तुम उसे प्रेम से भी पी सकते हो, तब तुम परमात्मा को समर्पित हो रहे हो।

इसे थोड़ा समझ लो। तुम ऐसी भी प्रार्थना कर सकते हो कि तुम चाहो कि परमात्मा तुम्हारे काम आ जाए। तब तुम्हारी जरूरत महत्वपूर्ण है, परमात्मा गौण है। और जिसने परमात्मा को गौण रखा, वह नास्तिक है। और तुम इसलिए भी प्रार्थना कर सकते हो, क्योंकि परमात्मा की प्रार्थना आनंद है। वह तुम्हारा प्रेम है। तुम इसलिए नही कि कुछ चाहते हो, इसलिए

नहीं कि कुछ हो जायें; सिर्फ इसलिए प्रार्थना करते हो जैसे कि कोई प्रेम करता है।

तुमने कभी पूछा कि प्रेम किसलिए करते हो? तुम कहोगे, बस प्रेम प्रेम के लिए, प्रार्थना प्रार्थना के लिए, ध्यान ध्यान के लिए।

दादू कहते हैं: 'दादू पीवै प्रीति सौं'—जो प्रेम से पीता है—प्रेम का मतलब ही यह है कि जो साधन की तरह नहीं पीता, बल्कि साध्य की तरह पीता है। तिनके अखिल सरीर'— वह ब्रह्मांड के साथ एक हो जाता है। उसकी सब दूरी मिट जाती है, फासले गिर जाते हैं। वह एक बूंद की तरह उस सागर में उतर जाता है। वह सागर पूरा का पूरा उस बूंद में उतर जाता है।

कहां से शुरू करो? यात्रा की शुरुआत है तुम्हारे ओंकार के नाद से। तुम्हारा ओंकार का नाद सिर्फ तैयारी है, पूर्व-तैयारी है। फिर जब असली नाद उठने लगे और तुम्हारी वीणा उस नाद से थिरकने लगे, तब अपने हाथ खींच लेना, तब तुम एक अनूठे अदृश्य अनाहत संगीत से भर जाओगे। तुम नाद-ब्रह्म से भर जाओगे। उस भरी हुई अवस्था में नशा होगा एक।

उमरखयाम उसी शराब की बात कर रहा है। वह कोई इस संसार की शराब की बात नहीं कर रहा है। तब तुम मदमाते जीओगे। तब तुम्हारे उठने बैठने में रस छलकेगा। तुम्हारे पास जो आ जाएगा, तुम्हारी गंध जिसको छू जाएगी, वह नशे में डूब जाएगा और नाचने लगेगा।

उस मदमस्त दशा को ही जो पा लेता है उसे सत्य की प्रतीति होनी शुरू होती है। उस बेहोशी में ही मिलता है सत्य, क्योंकि वह बेहोशी ही सबसे बड़ा जागरण है। और जिसको मिला सत्य—संतोष सत्य की छाया है—उसके जीवन में परम संतोष छा जाता है।

परमात्मा को साध्य समझना, साधन नहीं। प्रेम से पीना, कारण से नहीं। लाभ की दृष्टि से मत सोचना, नहीं तो वंचित रह जाओगे। उपयोगिता का भाव ही मत ले जाना वहां। जो उपयोगिता से चलता है, वह हमेशा बाजार में पहुंच जाएगा, मंदिर कभी नहीं आ सकता। उपयोगिता के सभी रास्ते बाजार की तरफ जाते हैं। वहां तो प्रेम के दीवानों की बस्ती है। मंदिर की तरफ आना हो तो पागल प्रेमियों की तरफ आना होता है।

'दादू पीवै प्रीति सौ, तिनकै अखिल सरीर।

सबद सरोवर सूभर भरया, हरि जल निर्मल नीर॥'

वह सरोवर तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। जिस क्षण तुम राजी हो जाओगे, अचानक पाओगे, आंख के सामने सरोवर है। जिस क्षण तुम्हारे भीतर का

अनाहत बज उठेगा, अचानक पाओगे, सब तरफ वही सरोवर है। हैरान होवोगे, इतने दिन तक कैसे चूकते रहे। मछली सागर में प्यासी !

कबीर कहते हैं : 'एक अचंभा मैंने देखा !' वह अचंभा यह है कि मछली सागर में प्यासी है। वह अचम्भा तुम्हारे संबंध में है। वह अचम्भा मैं भी देखता हूं। चारों तरफ सरोवर भरा है। तुम सरोवर में ही पैदा हुए हो। तुम्हारे रोए-रोएं मे सरोवर की तरंगें हैं। तुम सरोवर हो और प्यासे !

जिज्ञासा-पूर्ति : तीन

प्रवचन : छह, दिनांक १६.७.१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना



पहला प्रश्न क्या भय नकारात्मक होते हुए भी सोये को जगाने या होश को बढाने मे सहायक है? बहुत-से झेन गुरु, शिष्यो को क्यो हमेशा डडे से ही भयभीत करते है? बहुत बार आपने भी हमे ऐसी कहानियाँ सुनाई है और डडा भी मारा है।

झेन गुरु डडे का उपयोग करते है लेकिन तुम्हे भयभीत करने को नही। गुरु के हाथ मे डडा देखकर तुम्हे भय लग सकता है। यह तुम्हारी व्याख्या है। यह तुम्हारी भूल है।

गुरु के हाथ मे डडा देखकर तुम भयभीत हो जाते हो क्योकि डडे मे तुमने सदा भय ही देखा है, गुरु का प्रेम नही, करुणा नही। उस तरफ तुम्हारी आँखे अधी है। और उस तरफ तुम्हारे हृदय मे कोई सवेदना नही होती।

गुरु डडा उठाता है करुणावश—तुम्हें भयभीत करने को नही, तुम्हे जगाने को। चोट भी करता है। तुम्हे मिटाने को नही, तुम्हे बनाने को। मारता भी है ताकि तुम्हे जिला सके। लेकिन तुम्हे तो लगेगा भय। तुम्हे तो हर चीज से भय लगता है। क्योकि भय तुम्हारे भीतर है। और जब तक तुम्हारे भीतर का भय न मिट जाय तब तक तुम गुरु की करुणा को समझ भी नही पाओगे। उसकी करुणा भी तुम्हे भयभीत करती ही मालूम पडेगी।

बहुत बार मुझसे लोग पूछते है कि झेन गुरुओ ने तो डडा उठाया है लेकिन ऐसा भारत में जैन गुरु हुए है, बौद्ध गुरु हुए है, हिंदू गुरु हुए है, उन्होने तो ऐसा डडा नही उठाया। क्या कारण है?

कारण इतना ही है कि झेन गुरु की करुणा तुम्हारे गुरुओ से ज्यादा है। भारत के गुरुओं की एक धारणा है—वह है, तटस्थ होने की। तुम्हारे प्रति एक तटस्थता को साधने की उनकी दृष्टि है। तुम लाभ ले सको तो ले लो;

न कर सको, तुम्हारी मर्जी। लेकिन भारतीय परम्परा, भारतीय गुरु सीमा से बाहर जाकर तुम्हें लाभ पहुँचाने की चेष्टा न करेगा। वह उदासीन रहेगा।

करुणा की कमी है। क्योंकि करुणा उदास नहीं हो सकती। और करुणा उदासीन भी नहीं हो सकती। करुणा तो आयेगी तुम्हारे मार्ग में। तुम्हें खींचेगी तुम सोये हो, तो तुम्हें हिलायेगी।

भला तुम्हें अपनी नींद में लगे, कि यह तो मेरा सपना तोड़ दिया। कितना प्यारा सपना था! भला तुम्हें नींद में लगे कि यह आदमी तो दुष्ट है, हिंसक है। मेरी सुखद-सुहावनी नींद थी, नष्ट कर दी, चौंका दिया। सपने में तो प्रकाश से भरा था, जाग कर तो रात अंधेरी मालूम पड़ती है। सपने में थोड़ी बहुत रोशनी थी वह भी इस आदमी ने बुझा दी और जगाकर इस महाअंधकारपूर्ण रात्रि में छोड़ दिया।

यह तुम्हारी दृष्टि है क्योंकि तुम्हें जागने का अभी रस ही नहीं है। तुम्हें जागने का अभी पता ही नहीं है। तुम्हें यह भी पता नही है, कि सपने के प्रकाश से जागने का अंधकार करोड़ गुना मूल्यवान है, क्योंकि सत्य है। मूल्य तो सत्य का है। तुम्हें डराने को नही, तुम्हें जगाने को झेन गुरुओं ने डंडा उठाया है।

और यह भी ठीक है कि मैंने भी तुम्हे बहुत बार डंडे मारे हैं। उतने स्थूल नहीं, कि तुम्हारा सिर तोड दें। लेकिन तुम्हारा अहकार तोड़ सकें, उतने सूक्ष्म जरूर! उतने स्थूल नही, कि तुम्हारे शरीर को चोट पहुँचायें लेकिन उतने सूक्ष्म जरुर, कि तुम्हारे भीतर छिद जाये और हृदय तक तीर की तरह पहुँच जायें। निश्चित ही मैंने वे डंडे मारे हैं।

लेकिन अगर तुम्हें लग गये होते तो यह प्रश्न न उठता। वे लगे नहीं। मेरी तरफ से कोशिश जारी रही, तुम्हारी तरफ से बाधा जारी रही। तो ऐसा भी हो सकता है, कोई तुम्हे जगाये, हिलाये, लेकिन तुम न जागो। तुम और जिद में गहरी नींद मे सो जाओ। तुम जाग भी जाओ तो आँख न खोलो, और जिद पकड लो आँख को बद ही रखने की। नहीं जागने की जैसे तुमने कसम खा ली है। तो हिलाकर भी तो तुम्हे नही जगाया जा सकता। और जो आदमी सोया हो वह तो जगाया भी जा सकता है लेकिन जिसने सोये रहने की जिद कर रखी हो, वह तो जागा ही हुआ है, सिर्फ अहंकार की वजह से सो रहा है, उसे तो उठाना भी बहुत मुश्किल है।

सच है! मैंने तुम्हें डंडे मारे हैं, लेकिन तुम्हें लगे नहीं। जिस दिन लग जायेंगे उस दिन डंडे नही रह जायेंगे। उसी दिन तुम पाओगे कि डंडा तो

खो गया। एक करुणा की वर्षा तुम पर हो जायेगी। उस दिन जो कांटे की तरह लगा था कल तक, अचानक फूल हो जायेगा। उस दिन गुरु का डंडा तुम्हारे ऊपर फूलों की वर्षा मालूम होगी। तो यह प्रश्न न उठता।

तुम भी तैयार होओ, थोड़ा अपने को उघाड़ो, ताकि डंडा तुम्हारे मर्म-स्थल में लग जाय। मैं तुम्हें रोज-रोज डंडे मारता हूँ, तुम रोज-रोज मलहम-पट्टी करके वापिस आ जाते हो। तुम फिर वही हो। तुम्हें थोड़ा चौंकाता हूँ, तुम करवट लेकर फिर सो जाते हो।

काफी समय ऐसे ही व्यतीत किया। और ज्यादा समय किसी के भी हाथ में नहीं है। कोई भी नहीं जानता, कल होगा, नहीं होगा! इसलिये कल पर बहुत भरोसा मत करो। आज ही उपयोग कर लो। जागना है, आज ही जाग जाओ, कल पर मत टालो।

लेकिन क्षुद्र बातों के लिये आदमी विराट बातों को टाले चला जाता है। दुकान है, बाजार है, परमात्मा को टाल देता है, मोक्ष को टाल देता है। नोन-तेल, लकड़ी खरीदना है, उसमें निर्वाण को छोड़ देता है।

एक छोटे से स्कूल में ऐसा हुआ, शिक्षक पूछ रहा था बच्चों से, कि तुममें से जो स्वर्ग जाना चाहते हो, हाथ ऊपर कर दे। एक को छोड़ कर सबने हाथ ऊपर कर दिये। शिक्षक थोड़ा हैरान हुआ। उसने पूछा, कि अब तुममें से जो नर्क जाना चाहते हो वे हाथ ऊपर कर दे। किसी ने भी हाथ ऊपर न किया, उसने भी नहीं, जो स्वर्ग के समय भी हाथ नीचे रखे बैठा रहा था। शिक्षक ने उससे पूछा, तेरी क्या मर्जी है? न तुझे स्वर्ग जाना है, न तुझे नर्क जाना है, तुझे जाना कहां है? उसने कहा, मेरी मजबूरी यह है, कि मेरी माँ ने घर से चलते वक्त कहा, स्कूल में छुट्टी होते ही सीधे घर आना।

स्वर्ग को छोड़ने को राजी हो तुम क्योंकि कुछ छोटी-मोटी बात कहीं इस संसार में अटकी रह गई है जिसे पूरा करना है। छुट्टी होते ही घर लौट कर आना है!

पर ऐसा भी होता, कि तुम बिलकुल ही सोये होते तो भी ठीक था। बिलकुल ही जो सोये हैं वे तो यहाँ आये ही नहीं। तुम्हारी नींद में थोड़ा सा भान आना शुरू हो गया है। तुम्हारी नींद गहरी नहीं है अब। जरा सी... जरा-सी हिम्मत, जरा से साहस और सहयोग की जरूरत है, कि तुम जाग जाओगे।

और सो कर तो कुछ भी किसी ने कभी पाया नहीं है, सिर्फ खोया है। और जाग कर सब मिल जाता है। कुछ-कुछ पाने को शेष नहीं रह जाता है।

यह सौदा बड़ा सस्ता है। खोते तुम कुछ भी नहीं, पाते सब हो। फिर भी तुम हिम्मत नहीं जुटा पाते हो। यह गणित बिलकुल सीधा है।

जब मेरा डंडा तुम्हारे सिर पर पड़े तो तुम बचाव मत करना। उसे पड़ ही जाने देना। और जब तुम्हारे हृदय में तीर लगे तो तुम रुकावट मत डालना, तुम उसे छिद ही जाने देना। तुम मलहम-पट्टी बंद करो। तुम मरने को राजी हो जाओ क्योंकि वही पुनर्जन्म है। वही पुनरुज्जीवन का सूत्र है।

दूसरा प्रश्न : क्या एक कवि को भीतर प्रविष्ट होने के लिये काव्य-सर्जना के साथ-साथ ध्यान की साधना भी आवश्यक है? यदि आवश्यक है, तो रवीन्द्रनाथ और खलील जिब्रान ने अपने जीवन में कौन-सी ध्यान-साधना का आश्रय लिया? यदि आवश्यक नहीं, तो बतायें कि काव्य-सृजना ही कैसे जीवन-साधना बन जाय, कि कवि को एक चोर की भाँति भीतर न घुसना पड़े। वह भी एक अतिथि की तरह मंदिर में प्रविष्ट होने का आनन्द अनुभव कर सके।

दो बातें : पहली, अगर कवि जन्मजात प्रतिभा का है, तब तो किसी साधना की कोई जरूरत नही। और अगर कवि केवल तुकबंद है, कोशिश कर-करके कविता बना लेता है, व्यवस्था और शास्त्र से भला वह कवि हो, प्राण से और आत्मा से कवि नही है, तो ध्यान-साधना की जरूरत पड़ेगी।

प्रतिभा से कवि का अर्थ है, जन्मजात स्फुरण। उसका अर्थ है, अनन्त जन्मों मे सौंदर्य की जो अभिलाषा, अनन्त जन्मो मे सौन्दर्य का जो अनुभव, अनन्त-अनन्त जन्मों में अनन्त-अनन्त प्रकार से सौन्दर्य को पाने का जो उपाय उसने किया है, वह अब उस जगह आ गया है, कि उसका घट भर गया है। अब वह इतना भरा हुआ है, कि ऊपर से बह रहा है, वही काव्य है प्रतिभाजन्य कवि मे।

रवीन्द्रनाथ या खलील जिब्रान प्रतिभाजन्य कवि है। वे अगर कविता न भी लिखते तो कवि थे। बुद्ध ने कोई कविता नही लिखी लेकिन बुद्ध कवि हैं। उनके उठने में काव्य है, उनके बैठने मे काव्य है, उनकी मुद्रा-मुद्रा कविता है, उनकी आँख की पलक का हिलना एक महाकाव्य है। उनकी आँख के पलक के सामने कालिदास फीके होगे। उनके उठने की मधुरिमा में बड़े-से-बड़े कवि हार जायेगे। उनका जीवन काव्य है।

जरूरत नहीं है, कि प्रतिभाजन्य कवि कविता लिखे ही। उसके होने मे उसके रोएं-रोएं में काव्य सिक्त होता है। वह बोलता है तो कविता बोलता है। चुप होता है, तो उसकी चुप्पी में काव्य होता है।

तो बहुत प्रतिभाजन्य कवियों ने कविता लिखी ही नहीं। जीसस, बुद्ध जरथुस्त्र, लाओत्से—कोई कविता नहीं लिखी। लेकिन जो भी उन्होंने कहा है, सभी काव्य है। नहीं कहा है, वह भी काव्य है। उनसे कुछ और निकल ही नहीं सकता। जैसे गुलाब के पौधे से गुलाब का फूल निकलता है, ऐसे उनसे जो निकलता है वह काव्य है। उनमें से कुछ ने कविता की है। उपनिषद के ऋषियों ने की है, वेद के ऋषियों ने की है। उन्होंने अनूठे छंद गाये। वह गौण बात है, वे गायें, न गायें।

लेकिन प्रतिभाजन्य अगर क्षमता हो, तो कोई और साधना की जरूरत नहीं है। काव्य ही तब पर्याप्त साधना है। तब सौंदर्य ही तुम्हारा सत्य है। तब सौंदर्य ही तुम्हारा परमात्मा है, उससे अन्य कोई भी नहीं। तब तुम सौंदर्य को खोजते ही सत्य के पास पहुँच जाओगे। तब तुम गीत को साधते-साधते ही पाओगे, कि गीतकार भी सध गया।

इसे थोड़ा समझना। थोड़ा बारीक है। जब गीतकार गीत को साधता है, तो अकेला गीत थोड़े ही साधेगा, गीतकार भी सधेगा। जब चित्रकार चित्र को बनाता है, तो अकेला चित्र थोड़े ही बनेगा, चित्रकार भी साथ-साथ बनेगा। दोनों का जन्म साथ-साथ होगा।

ऐसा समझो, कि एक स्त्री का बच्चा पैदा हुआ, तुमने एक तरफ से देखा है, तो तुम कहते हो, कि बच्चे का जन्म हुआ। दूसरी तरफ से देखो, तो माँ का भी जन्म हुआ क्योंकि इसके पहले वह माँ न थी। दो जन्मे हैं उस दिन। बच्चा तो एक तरफ से देखने पर तुम कहते हो। दूसरी तरफ से माँ भी जन्मी है। क्योंकि अब तक वह एक साधारण स्त्री थी। माँ और स्त्री मे बड़ा फर्क है। माँ होना एक अलग ही अनुभव है, जो साधारण स्त्री को उपलब्ध न था। माँ होना तो ऐसे है, जैसे वृक्ष मे फल लगते हैं। माँ न होना ऐसा था जैसा वृक्ष बिना फल का रह जाता। एक बाझ दशा थी, जिसमे फूल न लगे, फल न लगे। एक पीड़ा थी। माँ तो एक खिलाव है। जिस दिन बच्चा पैदा होता है, उस दिन दो जन्मते हैं। एक तरफ बच्चा, उस तरफ माँ।

लेकिन दुनिया एक ही को देखती है क्योंकि माँ का जन्म बड़ा सूक्ष्म है। उसके लिये न तो अस्पताल मे भर्ती होने की जरूरत मालूम पड़ती है, न चिकित्सक की जरूरत पड़ती है, न दाई की। वह बड़ी सूक्ष्म भाव-दशा है। भीतर चुपचाप घटित हो जाता है। स्त्री विलीन हो जाती है, माँ का आविर्भाव हो जाता है। जहाँ कल तक एक साधारण स्त्री थी, वहाँ अब एक माँ है—भरी-पूरी!

जब कवि कविता को साधता है, तो कविता ही थोड़ी सधती है! दुनिया कविता को देखेगी। गहरी आँख होगी, तो उसके साथ-साथ कवि भी पैदा हो रहा है, कवि भी सध रहा है। चित्रकार भी पैदा हो रहा है चित्र के साथ। मूर्तिकार मूर्ति के साथ। तुम जो भी करते हो उससे तुम्हारा जीवन निर्मित हो रहा है। तुम जब भी स्रष्टा बनते हो, तब तुम्हारे भीतर परमात्मा करीब आ रहा है। परमात्मा का स्वरूप है स्रष्टा होना। तो जब भी तुमने कुछ सृजन किया तुम परमात्मा के पास पहुँचे। अगर तुम स्रष्टा हो गये, तो तुम परमात्मा हो गये।

परमात्मा को स्रष्टा कहना बड़ी मधुर बात है। इस कारण नहीं, कि उससे कोई दर्शनशास्त्र की पहेली सुलझती है। नहीं, कुछ भी नहीं सुलझता। उलझन और बढ़ जाती है। मेरे लिये परमात्मा को स्रष्टा कहने का अर्थ बिलकुल ही दूसरा है। वह अर्थ यह है, उसमें परमात्मा पर जोर नहीं है, स्रष्टा पर जोर है। वह अर्थ यह है, कि जो भी स्रष्टा हो जायेगा, वह परमात्मा हो जायेगा। स्रष्टा होना परमात्मा का गुणधर्म नहीं है, परमात्मा का स्वभाव है।

जब भी तुम कुछ निर्मित कर पाते हो तब एक पुलक, तब एक आनन्द एक अहोभाव तुममें भर जाता है। अभागे हैं वे लोग, जो अपने जीवन में कुछ भी सृजन नहीं कर पाते। जिन्होंने न कभी कुछ बनाया, न कभी बनाने का आनन्द जाना। जिन्होंने कभी कुछ सृजन न किया, दो पंक्तियाँ गीत की पैदा न हुईं, एक मूर्ति न बनी, एक चित्र न उभरा जिनके जीवन में कुछ सृजन जैसी घटना न घटी। ऐसे लोग अभागे हैं।

तो अगर सौंदर्य की दिशा खुली है जन्म के साथ, तब तो किसी और साधना की जरूरत नहीं। तब कला ही ध्यान हो जायेगी। तब तुम कला में डूब-डूब कर ही उसे पा लोगे, जो परम कलाकार है। तब कला ही तुम्हारा मार्ग होगी।

परमात्मा तक पहुँचने के तीन मार्ग हैं। एक मार्ग है, सत्य के खोजी का। ध्यान उसकी प्रक्रिया है। दूसरा मार्ग है, सौंदर्य के खोजी का—कला। इतना लीन हो जाना कला में, कि कलाकार मिट जाय। उसकी प्रक्रिया है। और तीसरा है, शिवम्। सत्यम्, सुन्दरम्, शिवम्!

शिवम का अर्थ है शुभ। वह जीवन को निखारने और पवित्र करने की प्रक्रिया है। उसे योग कहा, तंत्र कहा, वह जीवन को निखारने की प्रक्रिया है शुभ की दिशा में। तुम धीरे-धीरे अपने को पवित्र और कुँआरा करते चले जाते हो। तुम सारी अपवित्रता छोड़ देते हो। तुम ऐसे हो जाते हो, जैसे सद्यस्नात, सदा ही स्नान किये हुए है।

अगर नीतिशास्त्र अपनी परम ऊंचाई पर पहुंचे तो वह शिवम् का मार्ग है। तब तुम आचरण को शुद्ध करते हो, परिशुद्ध करते हो, निखारते हो। निखारते-निखारते एक दिन तुम पाते हो, तुम खो गये, सिर्फ आचरण की आभा बची। सिर्फ ज्योति बची, धुआं न रहा।

या सौंदर्य को खोजते हो तुम और सौदर्य में लीन हो जाते हो। इतने लीन हो जाते हो, कि तुम बचते ही नही। तुम्हारी रेखा भी नहीं बचती। या तुम सत्य को खोजते हो तब तुम ध्यान मे लीन होते हो।

सार की बात इतनी है, कि हम तीनों मार्गों पर अगर गौर से खोजेंगे तो एक ही सूत्र काम करता है, वह है, लीनता, तल्लीनता, डूब जाना। ये तीन मार्ग तीन नही हैं। दुनिया में तीन तरह के लोग हैं, मार्ग तो एक ही है। मगर जब तीन तरह के लोग चलते है तो वे तीनों अपने-अपने ढंग से चलते हैं।

बुद्ध भी उसी मार्ग पर चलते हैं, जिस पर रवीन्द्रनाथ चलते हैं। लेकिन बुद्ध सत्य की धारणा करते हैं, रवीन्द्रनाथ सौदर्य की। अगर तुम बुद्ध से पूछोगे, तो वे कहेंगे सौदर्य तभी सुदर है, जब वह सत्य हो। अगर तुम रवीन्द्रनाथ से पूछोगे तो वे कहेंगे, सत्य तभी सत्य है, जब वह सुदर हो। बस, इतना फर्क होगा। रवीन्द्रनाथ सौदर्य के आधार पर सब तौलेंगे; बुद्ध सत्य के आधार पर सब तौलेंगे।

महावीर का मार्ग शिवम् का मार्ग है। वे पवित्र आचरण को निखारते चले जाते हैं। अगर तुम उनसे पूछोगे, तो वे कहेंगे जो शुभ है, वही सत्य है। इसलिए महावीर के मार्ग पर अहिंसा महत्वपूर्ण हो गई, सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गई। क्योंकि हिंसा ही अशुभ है। अहिंसा शुभ है। बुद्ध के मार्ग पर ध्यान सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया। जैन तो धीरे-धीरे भूल ही गये ध्यान करना। क्योंकि उसका कोई सबंध ही न रहा—आचरण...!

रवीन्द्रनाथ या खलील जिब्रान—सौदर्य, रस, उसका स्वाद!

ये तीन तरह के लोग हैं दुनिया मे। यह त्रिवेणी है। मगर ये तीनो उस तीर्थ पर मिल जाते हैं, जहाँ परमात्मा है। वहाँ सगम हो जाता है।

तो जो प्रतिभाजन्य कवि है, प्रतिभासम्पन्न कवि है, उसे तो कुछ साधन का सवाल ही नही है। लेकिन अगर कोई तुकबन्द है—अब इसे थोड़ा समझ लेना। अगर कोई तकनीकी रूप से कवि है, और ऐसा हो सकता है कि बड़ा कवि हो, सारी दुनियां को धोखा दे दे, अपने को धोखा न दे पायेगा। और अगर दुनिया को धोखा देने के कारण भरोसा कर ले कि मैं कवि हूँ, तो बड़ी भ्रान्ति में पड़ जायेगा।

क्योंकि या तो काव्य बहता है हृदय की रस-धार से, या मस्तिष्क से तुम काव्य का निर्माण करते हो। हृदय से तो होता है सृजन, क्रियेशन; और मस्तिष्क से होता है कंस्ट्रक्शन, निर्माण। इन दोनों में बड़ा फर्क है। क्रियेशन और कंस्ट्रक्शन का फर्क बड़ा भारी है।

सृजन का तो अर्थ होता है, शून्य से लाना अस्तित्व को। जहां कुछ भी न था, वहां अचानक शून्य से कुछ अवतरित होता है। तुम भी नहीं थे और शून्य से कुछ उतरता है, वहां तो काव्य है, असली काव्य है। और दूसरा एक काव्य है, जहां तुम्हारा मस्तिष्क काम करता है। तुम जमाते हो, खोजते हो, सुन्दर शब्द बिठाते हो, व्याकरण, छंद का शास्त्र, सब तरह से मात्रायें, संगीत सब व्यवस्थित कर देते हो, कि कोई तुम्हारे गीत को देखे, तुम्हारी कविता को देखे, तो एक भूल न निकाल पाये। लेकिन वह कविता वैसी ही है, जैसे किसी मुर्दे को कोई डाक्टर जांचे और एक भी बीमारी न खोज पाये। माना, कि बीमारी बिलकुल नहीं है, मुर्दा बिलकुल स्वस्थ है, लेकिन मुर्दा है।

दुनिया में सौ कवियों में निन्यानबे तुकबंद होते हैं। उनमें से कई तो बहुत प्रसिद्ध हो जाते हैं क्योंकि तकनीकी ढंग से उनकी कुशलता बड़ी प्रगाढ़ होती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है, असली कवि उनके सामने फीका पड़ जाता है। क्योंकि असली कवि व्याकरण और छंद के पूरे नियम पालन नहीं कर पाता। असली कवि पूरी तरह अनुशासनबद्ध नहीं हो पाता। असली कवि के भीतर ऐसी धारा बह रही है कि बांध तोड़ कर बहने लगती है, सीमायें छोड़ देती है। वह पूर आयी नदी है। वह नियम नहीं मानती। इतने जोर से आती है धारा, कि कवि खुद बह जाता है, कौन नियम को सम्हाले!

लेकिन जो नकली कवि है, वह नियम को बांध लेता है। वह एक-एक हिसाब से सारी चीज सजा कर रख देता है। उसके काव्य में तुम्हें भूल न मिलेगी– काव्य भी न मिलेगा। सब नियम पूरा होगा, प्राण न होंगे। लाश सजी हुई रखी हुई होगी– बिलकुल असली का धोखा दे। प्लास्टिक के फूल होंगे, जो कभी न मुरझायेंगे।

और कभी-कभी ऐसे लोग बहुत लोगों को धोखा दे देते हैं, क्योंकि साधारण आदमी की काव्य की पहचान कहां? साधारण आदमी का काव्य से संबंध क्या? लेकिन ऐसे लोग चाहे कितने ही महत्वपूर्ण हो जायें, ज्यादा देर तक उनका महत्व टिकता नहीं, खो जाता है। पुच्छल तारों की तरह वे किसी रात में चमकते हैं और विलीन हो जाते हैं। ध्रुव तारा वे नहीं हो पाते,

ऐसा अगर तुम्हारा काव्य हो, कि तुम तुकबंदी कर रहे हो, तुम चेष्टा-आयोजन कर रहे हो, तुम अपनी तरफ से निर्माण कर रहे हो, तो फिर तुम्हें

ध्यान की जरूरत पड़ेगी। एसा काव्य काफी नहीं होगा। ऐसा काव्य वस्तुतः काव्य है ही नहीं। वह एक उपक्रम है, अनायास नहीं है।

अंग्रेजी का महाकवि कूलरिज जब मरा, तो उसके घर में चालीस हजार कवितायें अधूरी पाई गयी। उसने जीवन में कुल सात कवितायें पूरी कीं। उसके मित्रों ने सैकड़ों बार उससे कहा, कि तुम सात कविताओं के बल पर महाकवि हो गये हो; अगर तुम्हारी ये सारी कवितायें पूरी हो जायें तो संसार में तुम्हारा मुकाबला ही न रहेगा किसी भाषा में।

लेकिन कूलरिज कहता, कि पूरा करना मेरे बस में नहीं है। ये सात भी मैंने पूरी नहीं की हैं। नही तो मैं तो फिर चालीस हज़ार पूरी कर देता। ये उतरी हैं। जितनी उतरती है, उतनी में लिख देता हूँ। मैं तो केवल माध्यम हूँ। कभी तीन पंक्तियाँ उतरती है, तो तीन लिख देता हूँ। चौथी नहीं उतर रही है, मैं क्या करूँ? राह देखता हूँ, प्रतीक्षा करता हूँ, कभी उतरती है, दो-चार साल बाद अचानक चौथी कड़ी आ जाती है, तब मैं लिख देता हूँ। मैं अपनी तरफ से नहीं जोड़ता। चौथी मैं जोड़ सकता हूँ। तीन तैयार हैं, चौथी जोड़ दूं, पद पूरा हो जायेगा, लेकिन वह मेरी होगी और वह थेगड़े की तरह अलग मालूम पड़ेगी। वह परमात्मा से नही आई है।

ऐसा हुआ, कि रवीन्द्रनाथ ने जब गीताजलि का अंग्रेजी में अनुवाद किया, तो वे संदिग्ध थे। क्योंकि कविता मातृ-भाषा में ही पैदा हो सकती है। दूसरे की भाषा में आयोजन करना ही होगा। वह सहज नहीं हो सकता। तो उन्होंने सी. एफ. एन्ड्रूज को अपना अनुवाद दिखलाया। एन्ड्रूज ने कहा, सब ठीक है, सिर्फ चार जगह व्याकरण की भूलें हैं। एन्ड्रूज पंडित थे, भाषा के ज्ञाता थे। रवीन्द्रनाथ ने अहोभाव माना, कि उन्होंने भूलें बता दीं। उन्होंने वे भूलें सुधार लीं।

फिर लंदन मे अंग्रेजी के बड़े कवि ईट्स ने एक छोटा-सा मित्रों का समूह बुलाया था—कवियों की एक गोष्ठी; रवीन्द्रनाथ को सुनने के लिये। रवीन्द्रनाथ ने कवितायें अपनी सुनाईं। ठीक उन्हीं चार जगहों पर अंग्रेज कवि ईट्स ने कहा, और तो सब जगह ठीक है, नदी ठीक बहती है, चार जगह कुछ अड़चन आ गई। चार जगह ऐसा लगता है, चट्टान पड़ गई, कुछ बाधा है।

रवीन्द्रनाथ तो चौंके क्योंकि वह तो उनके अतिरिक्त किसी को भी पता नहीं है, कि चार जगह सी. एफ. एन्ड्रूज का हाथ है। फिर भी उन्होंने पूछा, वे कौन सी चार जगह हैं? ईट्स ने ठीक वे ही चार स्थान बता दिए, जो एन्ड्रूज ने सुधरवा दिये थे, कि इनमें काव्य नहीं है। भाषा का गणित पूरा बैठ गया, व्याकरण ठीक बैठ गई, लेकिन काव्य की धारा टूट गई। तो रवीन्द्र-

नाथ ने अपने शब्द जो उन्होंने पहले रखे थे वे बताये। ईट्स ने कहा, कि ये ठीक है। भाषा की भूल है, लेकिन काव्य सरलता से बहता है। चलेगा! काव्य भाषा की फिक्र नहीं करता। काव्य के पीछे भाषा आती है।

तो अगर तुम गणित में कुशल हो काव्य के, उतने से काफी न होगा, क्योंकि तुम उसमें डूब न पाओगे। वह तुम्हारे प्राणों की पूरी पूर्णता न बन पायेगी। तुम्हारे प्राण पूरे-पूरे नाच न सकेंगे उसमें। तुम दूर ही खड़े रहोगे। तुम्हें बिना छुए तुम्हारा काव्य निकल जायेगा। स्नान न हो पायेगा। तो ध्यान कैसे होगा? तो तुम्हें ध्यान अलग से करना होगा।

इसलिए ठीक कवि को अपने भीतर सोच लेना चाहिए, काव्य मेरी चेष्टा तो नहीं है! क्योंकि अक्सर ऐसा होता है। जवानी में सभी कवितायें करते हैं। तुकबंदी कौन नहीं कर सकता है? फिर कुछ तो उससे छूट जाते हैं, झंझट से कुछ उलझ जाते हैं।

मेरे गांव मे जब मैं छोटा था तो बहुत कवि थे, एक हवा आ गई थी काव्य की, और घर-घर मे कविता होती थी। और हर सात-आठ दिन में एक कवि-सम्मेलन का होता। तो जो भी थोड़ी बहुत तुकबंदी कर सकता था, वह भी लिखने लगा। क्योंकि जब सभी कवि हो रहे थे तो कौन पीछे रह जाता! और बड़ी वाहवाही होती थी, क्योंकि गांव के लोग सुनने इकट्ठे होते। उनको कविता का कोई अ ब स तो पता नहीं, तुकबंदी का ही मजा था। तुकबंदी खूब गतिमान थी।

फिर धीरे-धीरे वे सब कवि खो गये। अभी मैं पीछे एक दफा गांव गया तो मैंने पता लगाया, कि वे जो पंद्रह बीस कवि थे गांव मे, वे सब कहां हैं? सब नोन-तेल-लकड़ी मे लग गये। उनमे से कोई कवि न बचा। वे कहां गये? उनमे से कोई कवि था भी नहीं। जवानी का एक उभार था।

काव्य भी जवानी का एक उभार है। जब तुम्हारे हृदय में प्रेम के अंकुर आने शुरू होते हैं, तब तुम्हें लगता है, तुम भी कविता कर सकोगे। तब तुम्हें लगता है, बिना कविता किए तुम न रह सकोगे। तब तुम भी गाना चाहते हो।

मगर वह गुनगुनाहट बाथरूम की गुनगुनाहट है, उसे तुम बाहर मत लाना। सभी कवि नहीं हैं, सभी कवि होने को नहीं हैं। अपने घर गुनगुनाना, कोई स्त्री तुम्हारी कविता सुनने को राजी हो, उसको सुना देना, लेकिन उसको बाहर मत ले आना। वह तुकबंदी है। और बाहर की प्रशंसा कभी-कभी अटका देती है।

मैंने एक कवि के संबंध में सुना है कि वह अपने जीवन के अंत में किसी को कह रहा था, कि मैं बड़ी उलझन में पड़ गया कवितायें करके। जिंदगी मेरी बरबाद हो गई इन कविताओं में। जब शुरू किया था तब तो मैं सोचता था, मैं कवि हूँ। दस साल लग गये यह बात समझने में, कि मैं कवि नहीं हूँ। तो उसके मित्र ने पूछा, अगर समझ गये थे कि कवि नहीं, तो फिर बंद क्यों न कर दिया? उसने कहा, तब तक मैं काफी प्रसिद्ध हो चुका था; फिर बंद करना मुश्किल था। फिर अहंकार दांव पर लग गया। पूरी जिंदगी बरबाद हो गई।

अक्सर ऐसा होता है, जब तुम भूल समझ पाते हो तब तक भूल के कारण ही तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा हो चुकी होती है, कि अब तुम पीछे भी कैसे लौटो? लोग तुम्हें कवि मानने लगे, महाकवि मानने लगे, चित्रकार मानने लगे। कोई तुम्हे साधु मानने लगा, कोई तुम्हें संन्यासी मानने लगा, अब ये लोग तुम्हे झझट मे डाल देते हैं। अब तुम लौट नही सकते।

अगर कविता केवल तुकबंदी हो—कोई हर्जा नहीं है शब्दो खेलने में, मजे से खेलो! लेकिन तब ध्यान अतिरिक्त चाहिए। अकेला काव्य काम न दे सकेगा और तुम प्रभु के मंदिर में अतिथि की तरह प्रवेश न कर पाओगे।

तीसरा प्रश्न : आपने उस दिन कहा, कि प्रभु मिलन के लिये प्यास तीव्रतम हो और साथ ही धैर्य भी असीम हो; क्या ये दोनो स्थितियाँ असगत् नहीं है?

असंगत दिखाई पड़ती है; है नहीं। उनमें बड़ी गहरी संगति है। थोडा समझना पड़े।

ऊपर-ऊपर असगत मालूम पडती है, भीतर जुडी है, भीतर सेतु है। समझें; वस्तुतः अगर प्यास बहुत गहरी हो, तो धैर्य बहुत गहरा होगा ही। क्योंकि बहुत गहरी प्यास का अर्थ ही यही होता है, बहुत गहरा भरोसा। जब तुम बहुत गहरी प्यास से परमात्मा के लिये भरे हो तो गहरी प्यास तभी हो सकती है, जब तुम्हारा भरोसा है, कि परमात्मा है। नही तो गहरी प्यास कैसे होगी ?

अगर तुम्हे जरा भी संदेह है परमात्मा के होने में, तो प्यास होगी ही नही। या ऊपर से चिपकाई गई होगी। असली न होगी, प्राण उससे जुड न होंगे। बौद्धिक होगी, समग्र न होगी। एक खंड कहता होगा, ठीक है, खोज लो; शायद हो! लेकिन बाकी हिस्सा कहते रहेगा, व्यर्थ परेशानी में पड़े हो।

तो तुम घड़ी भर भी प्रतीक्षा न कर सकोगे। घड़ी भर भी तुम्हे बैठने को कहा जाय तो वह जिसका विरोध मे है, और जो कहता है मुझे भरोसा नहीं है, वह कहेगा, क्यों समय नष्ट कर रहे हो? एक घंटा भर खराब हुआ। इतनी देर में कितने नोट नहीं बनते, कितना बैंक में बैलेंस जमा नही हो जाता, इतनी देर में क्या नही कर गुजरते! क्यों बैठे नाहक समय खराब कर रहे हो?

अगर प्यास गहरी है, तो उसका अर्थ ही यह होता है, कि भरोसा परम है। परम भरोसे के बिना प्यास गहरी नही हो सकती। "है परमात्मा"—ऐसी बडी गहन धारणा है। ऐसी धारणा, धारणा नही रह गई है, तुम्हारे प्राणों का उच्छ्वास हो गया है। सांस लेते हो, श्वास जाती है, आती है और वही परमात्मा का भाव बोलता रहता है।

तब तो तुम कितनी ही प्रतीक्षा कर पाओगे। तब तो तुम कहोगे जन्मो-जन्मों बैठा रहूँ तब भी तुम यह कभी न कहोगे, कि बहुत देर हो गई प्रतीक्षा करते। "बहुत देर" में शिकायत है। और "बहुत देर" मे यह भाव है कि मैं इतनी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम इतनी देर प्रतीक्षा करने योग्य हो भी? घडी भर ठीक थी, दो घडी ठीक थी, दिनो बीत गये, महीनो बीत गये, जन्म बीत गये, तुम इतने योग्य भी हो, कि तुम्हारे लिए इतनी प्रतीक्षा करूँ?

अगर परमात्मा पर भरोसा उठ आये तो उसकी योग्यता का ऐसा भाव होता है, कि अनंत काल तक भी प्रतीक्षा करूँ और फिर तुम मिलो, तब भी ऐसा ही लगेगा कि मुफ्त मिल गये, बिना कुछ किए मिल गये। क्या, किया क्या था? खाली बैठे रहे थे। हाथ मे माला चला ली थी, राम-नाम की चदरिया ओढ ली थी; किया क्या था? बैठे-बैठे मिल गये। तब तुम कहोगे, प्रसाद रूप परमात्मा का मिलन हुआ है। अपनी पात्रता न थी और मिलना हुआ है। उसकी महाकरुणा मे मिलना हुआ है, अपनी योग्यता से नही।

इसलिए ध्यान रखो, तीव्रतम प्यास और असीम ध्यान और असीम धैर्य दोनो मे असंगति नही है, बडी गहरी संगति है। और जिसकी तीव्र प्यास है, वही प्रतीक्षा कर सकता है। अब यह बडे मजे की बात है। लेकिन तुम्हारे मन मे ऐसा नही होता, उल्टा होता है।

एक और प्रश्न है, जिस प्रश्न मे यह पूछा गया है, कि मेरा धैर्य तो असीम है, लेकिन प्यास गहरी नही है।

अगर प्यास गहरी नही हो तो जिसे तुम धैर्य समझ रहे हो, वह धैर्य नहीं है। तुम अगर मे [illegible] ही नही रहे हो, तो प्रतीक्षा करने का सवाल ही क्या है? तुमने मांगा ही नही है, तुमने चाहा ही नही है, अभीप्सा ही नही जगी

तो धैर्य का सवाल कहाँ उठता है? जिस व्यक्ति ने मांगा नहीं, वह कह सकता है, ठीक है, बहुत धैर्य है, हम प्रतीक्षा कर सकते हैं। वस्तुतः उसकी आकांक्षा नहीं है, इसलिए वह तटस्थ है; उदासीन है। वह कहता है, होगा जब हो जायेगा। उसे फिक्र ही नहीं है। वह दो कौड़ी का मानता है इस बात को, कि होगा कि नहीं होगा।

इस उदासीनता को तुम धैर्य मत समझ लेना। धैर्य उदासी नहीं है। धैर्य नकारात्मक अवस्था नहीं है, धैर्य बड़ी पॉजिटिव, बड़ी विधायक अवस्था है।

दूसरा एक प्रश्न है, कि प्यास तो बहुत तीव्र है, लेकिन धीरज बिलकुल नहीं है। तो भी प्यास प्यास नहीं है, वासना है। तो भी तुम भूल कर रहे हो। तब वह भी तुम्हारा लोभ है। जैसे तुम संसार को और चीजों को पाना चाहते हो, ऐसे ही परमात्मा को भी पाना चाहते हो। जैसे और सब चीजों पर तुमने कब्जा कर लिया है, मुट्ठी बांध ली, तुम दुनिया को दिखाना चाहते हो, मेरी मुट्ठी में बड़ी कार ही नहीं है, परमात्मा भी है। बड़ा मकान ही नहीं है, धन-दौलत ही नहीं है, परमात्मा को भी बांध लिया है। भगवान भी मेरी सेवा में लगे हैं। तब तुम जिसे प्यास कह रहे हो वह प्यास नहीं है, वह लोभ है, वासना है।

क्या फर्क होता है प्यास और लोभ में? प्यास में तुम गलते हो, अहंकार गलता है। एक ऐसी घड़ी आती है कि प्यास की अग्नि में तुम बिलकुल ही शून्य हो जाते हो। अहंकार बिलकुल ही पिघल जाता है। वासना में अहंकार बढ़ता है। वासना में अहंकार बढ़ता है, मजबूत होता है। जितनी वासना तृप्त होने लगती है, उतना अहंकार मजबूत होने लगता है। प्यास अहंकार की मृत्यु है और वासना अहंकार का भोजन है। उसे तुम लोभ से देखना।

तुम परमात्मा को कहीं अहंकार की एक सजावट की तरह ही तो नहीं चाहते हो? कि तुम छाती फैला कर सड़क पर चल सको, कि देखो, परमात्मा को भी न छोड़ा!

लोग अजीब-अजीब हैं। कोई किसी स्त्री को प्रेम करता है, प्यास होती है किसी की। मगर हो सकता है, किसी को प्यास नहीं होती, सिर्फ सुन्दर स्त्री को साथ सड़क पर लेकर चलने का भाव होता है, कि देख लो, सबसे सुन्दर स्त्री मेरे पास है। वह स्त्री को भी सिर्फ अहंकार का एक प्रसाधन समझ रहा है।

बहुत लोग हैं, वे स्त्रियों के लिए गहने लाते हैं। स्त्रियां समझती हैं, वे उनके लिए गहने लाते हैं। वे गलती में हैं। वे स्त्रियों पर गहने चढ़ाते हैं, वे

भी अपने अहकार पर चढाते है। उनकी स्त्री पर हीरे चढ़े हैं। क्लब में जब वे आयेगे, तब देख ले सारी दुनिया, कि उनकी स्त्री पर हीरे चढ़े हैं। मैंने चढाये है! पुरुष बड़ा अद्भुत है। वह खुद हीरे-जवाहरात नही पहनता, स्त्री को पहना देता है। स्त्री खूटी है, जिस पर वह टांगे रखता है। सुन्दर स्त्री, हीरे-जवाहरात चढे--यह सब अहकार का ही प्रसाधन है। और स्त्रियां बड़ी मस्ती मे उनके साथ चलती है। नासमझ है। वे समझती है, यह हार उन्ही के लिए लाया गया है। ये हीरे-मोती उन्ही के लिए जुटाये गये हैं।

ज़रा भी उनके लिए नही जुटाये गये है। यह समाज की आंखो के लिए है और स्त्री के माध्यम से पुरुष अपने अहकार को खडा कर रहा है।

क्या तुम परमात्मा को भी ऐसा ही चाहते हो, कि वह भी तुम्हारे अहकार मे एक आभूषण बन जाय? अगर तुम ऐसे ही चाहते हो, तो तुम जिसे प्यास समझ रहे हो, वह प्यास नही है। और तब धैर्य नही हो सकता। वासना मे कहाँ धैर्य? वासना बडी अधीर, बडी अधीर है। वासना कहती है, अभी; इसी वक्त चाहिए। प्यास बडी गभीर है, प्यास बड़ी गहरी है। प्यास कहती है जब भी मिलोगे, तभी जल्दी है। वासना कहती है, जब भी मिलोगे, तभी देरी हो चुकी।

तो इस सब को छाटना जरूरी है तुम्हारे भीतर। अगर तुम मेरी बात समझ लो, तो जब सच्ची प्यास होगी, तो सच्चा धैर्य भी होगा। प्यास के साथ धैर्य होता ही है। इसको तुम कसौटी समझ लो। इन दो मे से एक हो, तो कुछ गडबड है। अगर ये दोनो साथ हों, तो ही समझना, कि ठीक-ठीक तार जुडे, अब वीणा बज सकती है, अब परमात्मा के हाथ इस वीणा से सगीत उठा सकते है, अब साज बैठ गया। जैसे वीणा के तार दो तरफ खूटियों मे बधे होते है, ऐसे तुम्हारी वीणा के तार जब दो खूटियो मे बंध जायें—गहरी प्यास और गहरी प्रतीक्षा, तब समझना कि बस, अब वीणा तैयार है। अब सगीत पैदा हो सकता है।

असंगति जरा भी नही है। असगति तुम्हे दिखाई पडती है क्योकि तुम्हे दो मे से कोई भी एक को साधना आसान मालूम पड़ता है। या तो तुम साध सकते हो प्यास को, क्योंकि वासना बन जाये प्यास तो कोई दिक्कत नही है। या तुम साध सकते हो प्रतीक्षा को। अगर उदासीनता हो, तो तुम्हे मतलब ही नही। मिले, न मिले, तुम बड़े प्रतीक्षा कर रहे हो।

यह बड़ा गहरा सगीत है, दो विपरीत के बीच उठनेवाली बड़ी गहरी लय-बद्धता है। जहां एक तरफ तुम गहरे प्यास से भरे हो—और प्यास ऐसी,

कि एक क्षण खो न जाय; और साथ ही तुम प्रतीक्षा से भरे हो, कि अनंत काल भी अगर प्रतीक्षा करनी पड़े, तो भी मैं राजी हूँ।

क्यों, ये दोनों का मेल हो सकता है? प्यास तुम्हारी है, तुम्हारे कारण है; प्रतीक्षा उसके कारण है। प्रतीक्षा उसके कारण है, कि वह इतना विराट है, कि जल्दी की मांग बचकानी होगी। वह इतना महान है, कि यह कहना, कि अभी आ जाओ, नासमझी होगी, मूढ़ता होगी। तैयार होना होगा, अपने पात्र को खाली करना होगा।

प्रतीक्षा उसके स्वभाव के कारण, प्यास अपने स्वभाव के कारण। प्यास अपने अनुभव के कारण, कि जीवन के सब घाटों से पानी पी लिया, प्यास नहीं बुझी। जब सब घाट छान डाले, प्यास नहीं बुझी। सब सरोवर छान डाले प्यास नहीं बुझी। ऐसा कोई जीवन-अनुभव न छोड़ा, जहाँ प्यास के बुझने की ज़रा भी आशा दिखाई पड़ी, सपना झलका, वहीं गये, लेकिन खाली हाथ लौटे। सारा जीवन मृगमरीचिका सिद्ध हुआ, इसलिए प्यास! अब तुझसे ही बुझेगी।

लेकिन अधैर्य नहीं। क्योंकि अधैर्य का मतलब यह होता है, कि मैं पात्र होऊं या न होऊं, तू अभी मिल। धैर्य का अर्थ होता है, कि मेरी पात्रता सधेगी, तब तो तू मिल ही जायेगा। अगर देर होती है, तो तेरे कारण नहीं; देर होती है, तो मेरी पात्रता के कारण। प्यास को जगाऊंगा, पात्रता को सम्भालूंगा और प्रतीक्षा करूँगा। जिस दिन भी पात्रता हो जाती है, फिर क्षण भर की देर नहीं होती।

कहावत है भारत में--"देर है, अंधेर नहीं!" वह बड़ी बहुमूल्य है। देर है तुम्हारे कारण, और अंधेर नहीं हो सकता क्योंकि वह है। उसके होने के कारण अंधेर नहीं हो सकता। देर हो सकती है तुम्हारे कारण। अगर अंधेर होता, तो उसके कारण होता। लेकिन अस्तित्व सदा राजी है। जिस दिन तुम राजी हो, उसी दिन तार मिल जाता है।

भरो प्यास से और भरो प्रतीक्षा से भी। प्यास और प्रतीक्षा को साथ लो एक साथ, एक लयबद्धता में। जिस दिन भी सब ठीक बैठ जाता है, उसी दिन तुम पाते हो, संसार बिदा हो गया। सब तरफ परमात्मा खड़ा है।

चौथा प्रश्न : मुझे ऐसा समझ में आया, कि आपने परसों कहा कि मन के रोग प्रेम की कमी से पैदा होते हैं।

निश्चित ही मन के सभी रोग प्रेम की कमी से पैदा होते हैं। लेकिन इस सत्य को समझना पड़े।

जीवन में तीन घटनायें हैं, जो बहुमूल्य हैं : जन्म, मृत्यु और प्रेम। और जिसने इन तीनों को समझ लिया उसने सब समझ लिया। जन्म है शुरुआत, मृत्यु है अन्त, प्रेम है मध्य। जन्म और मृत्यु के बीच जो डोलती लहर है, वह प्रेम है।

इसलिए प्रेम बड़ा खतरनाक भी है। क्योंकि उसका एक हाथ तो जन्म को छूता है और एक हाथ मृत्यु को। इसलिए प्रेम मे बड़ा आकर्षण है और बड़ा भय भी। प्रेम मे आकर्षण है जीवन का, क्योकि उससे ऊँची जीवन की और अनुभूति नही है।

इसलिए जीसस ने तो परमात्मा को प्रेम कहा। वस्तुत. प्रेम को परमात्मा कहा। बडी ऊँची तरग है उसकी। उससे ऊँची कोई तरंग नही। कोई गौरी-शंकर प्रेम के गौरीशकर से ऊपर नही जाता। इसलिए बड़ा उद्दाम आकर्षण है प्रेम का। क्योंकि प्रेम जीवन है। लेकिन बड़ा भय भी है प्रेम का, क्योंकि प्रेम मृत्यु भी है।

इसलिए लोग प्रेम करना भी चाहते हैं और बचना भी चाहते हैं। यही मनुष्य की विडबना है। तुम एक हाथ बढ़ाते हो प्रेम की तरफ और दूसरा खीच लेते हो। क्योंकि तुम्हे जहाँ जीवन दिखाई पडता है उसी के पास लहर लेती मृत्यु भी दिखाई पड़ती है।

जो लोग जीवन और मृत्यु का विरोध छोड़ देते हैं, वे ही लोग प्रेम करने मे समर्थ हो पाते हैं, जो यह बात समझ लेते है कि जीवन और मृत्यु विरोधी नही हैं। मृत्यु जीवन का अत नही है, वरन् जीवन की ही परिपूर्णता है, परिसमाप्ति है। मृत्यु जीवन की शत्रु नही है, वरन् जीवन का सार है, निचोड़ है। मृत्यु जीवन को मिटाती नही, थके जीवन को विश्राम देती है। जैसे दिन भर के श्रम के बाद रात्रि का विश्राम है, ऐसे जीवन भर के श्रम के बाद मृत्यु का विश्राम है।

मृत्यु के प्रति शत्रुता का भाव अगर तुम्हारे मन में है, तुम कभी प्रेम न कर पाओगे क्योंकि प्रेम मे मृत्यु भी जुडी है। प्रेम संतुलन है जीवन और मृत्यु का, जन्म और मृत्यु का।

तो आकर्षित तो तुम होओगे लेकिन डरोगे भी। बढ़ोगे भी, बढ़ोगे भी नही। चाहोगे भी और इतना भी न चाहोगे, कि कूद पड़ो, छलांग ले लो। हमेशा अटके रहोगे, झिझके रहोगे, खडे रहोगे किनारे पर। नदी में न उतरोगे प्रेम की।

और जब तुम प्रेम से वंचित रह जाओगे, तो तुम्हारे जीवन मे हजार-हजार रोग पैदा हो जायेंगे। क्योंकि जो प्रेम से वंचित रहा, उसका जीवन

घृणा से भर जायेगा। वही ऊर्जा जो प्रेम बनती, सड़ेगी, घृणा बनेगी। जो प्रेम से वंचित रहा, उसके जीवन मे एक चिड़चिड़ाहट और एक क्रोध की सतत धारा बहने लगेगी। क्योंकि वही ऊर्जा जो बहती है, तो सागर तक पहुँच जाती, बंद हो गई। डबरा बनेगी, सड़ेगी—बहाव चला गया।

जीवन का अर्थ है, बहाव, सतत सातत्य, सिलसिला, बहते ही जाना। जब तक कि सागर ही द्वार पर न आ जाय तब तक रुकना नही। जो प्रेम से डरा, वह रुक गया। वह सिकुड़ गया, उसका फैलाव बद हो गया।

अब ऐसा व्यक्ति जिसने प्रेम नही जाना, जीवन को भी नही जान पायेगा। क्योंकि प्रेम ही जीवन का मध्य है। ऐसा व्यक्ति सिर्फ घसीटेगा, जियेगा नही। उसका जीवन पगु और लगडाता हुआ होगा। लकवा लग गया जैसे किसी आदमी के प्राण मे। सरकता है बैसाखियो के सहारे। अगर तुम गौर से देख सको, तो ससार मे सौ मे निन्नानबे आदमियों को बैसाखियो पर पाओगे। बैसाखियाँ सूक्ष्म है।

कोई धन की बैसाखी लगाये हुए है। प्रेम से चूक गया, अब वह धन से प्रेम कर रहा है। क्योंकि जीवित प्रेम से तो खतरा था, धन से प्रेम करने मे कोई खतरा नही है। अगर तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो, तो खतरा है। तुम खतरे मे उतर रहे हो, सावधान! क्योंकि व्यक्ति एक जीवित घटना है। तुम बदलोगे, तुम वही न रह पाओगे, जो तुम प्रेम के पहले थे। कोई प्रेमी प्रेम के बाद वही नही रह सकता, जो प्रेम के पहले था। प्रेम आमूल बदल देता है, दोनों को बदल देता है, जो भी प्रेम मे पड़ते है। दोनों के अहंकार को मटियामेट कर देता है। दोनों के अहंकार को तोड़ देता है।

यही तो कलह है सारे प्रेमियो के बीच! क्योंकि दोनो अपने अहकार को बचाना चाहते है। और इसके पहले, कि दूसरा मेरे अहकार को तोड दे मै चाहता हूँ, उसका अहकार तोड दू। और वह चाहता है मेरा अहकार तोड़ दे। सारे प्रेमी एक दूसरे पर आधिपत्य करने की कोशिश में लगे रहते है। जैसी गहरी राजनीति प्रेमियो मे चलती है, कही भी नही चलती। प्रतिपल चौबीस घटे उठते-बैठते एक राजनीति—कौन मालिक है?

प्रेयसी कहती है, मै तुम्हारी चरणो की दासी हूँ। उसकी आँखों में यह भाव बिलकुल दिखाई नही पड़ता। शायद यह चरणों की दासी होना उसका ढंग है मालकिन होने का। वह तुमसे कह रही है, कि मै तुम्हारे चरणों की दासी, ताकि तुम कहो, कि नही नही, तू तो मेरे हृदय की मालकिन है! अगर तुमने यह न कहा, तो वह कभी भी इस बात को क्षमा न कर सकेगी।

मतलब ही और था। चरणों की दासी अगर तुमने मान ही लिया कि बिलकुल ठीक! बिलकुल ठीक कह रही है, तू चरणों की ही दासी है; तो वह तुम्हें कभी क्षमा न कर पायेगी।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने प्रेयसी से कह रहा था, कि आऊँगा कल सांझ। पूरे चाद की रात है। चाहे आग बरसे, चाहे पहाड़ मेरे रास्ते मे खडे हो जायें, चाहे सारा संसार विरोध करे, मगर कल आऊँगा। बिना देखे तुझे नही रह सकता। जब उतरने लगा सीढ़िया तो बोला, आऊँगा जरूर, अगर पानी न गिरा!

प्रेमी जो कहते है, उसको सीधा-सीधा मत समझ लेना। उनके कहने के प्रयोजन और होते है। वे जो कहते है, उसका शाब्दिक अर्थ मत लेना। भीतरी आकाक्षा कुछ और होती है। शायद मुल्ला नसरुद्दीन सुनना चाहता था, कि प्रेयसी भी यही कहेगी, पहाड रोके, आग की वर्षा रोके तो भी तुम्हे बिना देखे कल न रह सकूगी। लेकिन वह कुछ न बोली। उसने स्वीकार कर लिया कि बिलकुल ठीक कह रहे हो, मेरे बिना देखे रहोगे कैसे? आना ही पड़ेगा। सब बात उतर गई। अब पानी गिरा तो न आ सकेगा, क्योंकि छाते में भी छेद है और अभी सुधरवाया नही है।

जीवन वही नही है, जो तुम्हारे शब्दों से झलकता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछती थी, कि तुम मुझे सदा प्रेम करोगे, जब मै बूढी हो जाऊँगी? शरीर जरार्जीर्ण हो जायेगा, सौंदर्य जा चुका होगा, वसन्त एक स्मृति हो जायेगा और पतझड ही बचेगा, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? मुल्ला ने कहा, सदा करूँगा प्रेम। प्रेम कोई ऐसी चीज थोड़ी है, जो बदल जाय! सिर्फ एक बात पूछना चाहता हूँ, कि तू अपनी मा जैसी तो नही दिखाई पडने लगेगी?

फिर वे बूढे हो गये और एक दिन पत्नी कहने लगी, कि तुमने कसम खाई थी मौलवी के सामने कि सुख मे या दुख मे, हर हालत मे तुम मुझे प्रेम करोगे, लेकिन अब तुम्हारा वह प्रेम न रहा। मुल्ला ने कहा, निश्चित कसम खाई थी कि सुख मे और दुख मे प्रे. करेंगे, लेकिन बुढ़ापे की तो कोई बात ही न उठी थी।

शब्दो पर मत जाना। प्रेमी कह कुछ रहे हैं। उन्हे भी पता नही है, क्यो कह रहे है। शायद उनके अचेतन मे ही डूबी होगी बात, उनके चेतन में भी खबर नही आई है। वे ही नही समझ पा रहे हैं, कि क्या हो रहा है; लेकिन बड़ी गहरी राजनीति चल रही है। एक-दूसरे पर कब्जा करने का भाव चल रहा है। उसी कब्जे मे कलह है और संघर्ष है।

तो फिर इस भय से लोग व्यक्तियों को प्रेम करना ही बंद कर देते हैं। वस्तुओं को प्रेम करते हैं। धन को प्रेम करते है, मकान को प्रेम करते हैं, कार को प्रेम करते हैं, जानवरों को प्रेम करते है, कुत्ता-बिल्ली पाल लेते हैं। पश्चिम में बहुत लोग कुत्ता-बिल्ली पाले हुए हैं। आदमी से प्रेम करना कठिन हो गया है। कुत्ता सदा ठीक है। किसी तरह की राजनीतिक दांवपेंच खड़े नहीं करता। मारो, तो भी पूंछ हिलाता है। डांटो, तो भी पूछ हिलाता है। कुत्ता बिलकुल कूटनीतिज्ञ है, डिप्लोमैट है।

और कुत्ते सब मन मे सोचते होंगे कि आदमी भी कैसा बुद्धू है! सिर्फ पूंछ! और तुम उसे राजी कर लो। सिर्फ पूछ को हिलाओ और उनका क्रोध नदारद हो जाता है। तुम कितनी ही भूल-चूक करो, सब क्षमा हो जाती है। आदमी भी कैसा बुद्धू है!

लेकिन कुत्ते समझ गये है। उन्होंने मेक्यावलि और कौटिल्य सबको समझ लिया है, कि सार कितना है! सार इतना है, खुशामद मे सार है। खुशामद करो और मालिक बन जाओ। वे अपनी राजनीति चला रहे है। लेकिन आदमी के लिए सुविधापूर्ण मालूम पडता है, कोई झंझट तो नही। कुत्ता सदा पूछ हिलाता रहता है। सदा स्वागत के लिए खडा रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था, कि सब जमाना बदल गया। वक्त खराब आ गया। पहले मै घर आता था तो पत्नी चप्पल लेकर हाज़िर होती थी, कुत्ता भूकता था। अब हालत बिलकुल बदल गई है, पत्नी भौंकती है कुत्ता चप्पल लेकर हाज़िर होता है। तो मैंने उससे कहा, तू नाहक परेशान हो रहा है। सेवा तो वही की वही है, चप्पल भी मिल रही है, भौंकना भी मिल रहा है। इसमे इतना परेशान होने की कोई जरूरत नहीं।

लोग डर जाते है, व्यक्तियो से प्रेम करने से, सिकुड जाते है। फिर वस्तुओं से प्रेम करते है, जानवरो से प्रेम करते हैं। इसलिए धन बड़ा बहुमूल्य हो जाता है। धन प्रेम है और सुरक्षित प्रेम है। रुपये से ज्यादा सुरक्षित और क्या है? जीवन में सब असुरक्षा है, रुपया सुरक्षा है। तिजोड़ी से ज्यादा स्थिर और कुछ भी नहीं मालूम होता। तिजोड़ी ही सनातन मालूम होती है, शाश्वत मालूम होती है।

पत्नी आज है, कल न हो, पति आज है, कल न हो, बेटा अभी है और कल सांस टूट जाय! नही, यह सब धोखा है, इनमें से कोई कभी भी दगा दे सकता जाता है। समझदार आदमी इन झंझटों में नही पड़ता। वह सीधा ऐसी चीज़ को प्रेम करता है, जो सदा रहेगी। वह असली गुलाब की तरह

नहीं देखता क्योंकि सुबह तो खिलेगा, सांझ मुरझायेगा भी। इससे प्रेम करना ठीक नहीं। यह धोखा दे जायेगा सांझ को। तब तुम रोओगे। तो बेहतर है प्लास्टिक के फूल खरीद लाओ। वे सदा तुम्हारे साथ रहेंगे। वे कभी नष्ट न होंगे। तुम मर जाओगे, वे बने रहेंगे।

जब प्रेम जीवन मे खो जाता है, या प्रेम की हिम्मत नहीं रह जाती, तो गलत प्रेम पैदा होते हैं, वे बैसाखियाँ हैं, जिन पर तुम लंगड़े हो कर चलते हो। क्रोध, घृणा, झूठे प्रेम तुम्हारे जीवन को घेर लेते हैं; वही नर्क है। और जब तक तुम उसके बाहर न आओ तब तक तुम्हारे जीवन मे प्रार्थना तो पैदा ही न हो सकेगी; क्योकि प्रार्थना तो प्रेम का नवनीत है। जिसने प्रेम जाना है—

अब इसे तुम थोड़ा समझ लो। जिसने प्रेम नही जाना, वह मनुष्य के प्रेम से नीचे गिर जाता है। या तो पशुओ के प्रेम में, या वस्तुओं के प्रेम में। और भी नीचे गिर गया तो वस्तुओ के प्रेम मे। जिसने प्रेम जाना वह ऊपर उठ जाता है। मनुष्यों से ऊपर, परमात्मा के प्रेम में। और अगर और भी गहरा प्रेम जाना, तो परमात्मा से भी ऊपर उठ जाता है—निर्वाण और मोक्ष; जहाँ कोई दूसरा व्यक्ति भी शेष नही रह जाता।

प्रेम का पतन--तो तुम कुत्ता बिल्ली को प्रेम करोगे। और पतन--तो तुम सामान को, कार को, मकान को, इनको प्रेम करोगे। प्रेम का आरोहण--तो परमात्मा को प्रेम करोगे। और आरोहण—तो परमात्मा भी शून्य हो जायेगा; सिर्फ निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य शेष रह जायेगा।

प्रार्थना नवनीत है प्रेम का। इसलिये मैं कहता हूँ, कि जिसके जीवन मे प्रेम नही, हजार रोग पैदा हो जाते है। और रोग तो ठीक है, स्वास्थ्य की सम्भावना खो जाती है। रोग भी आदमी सह ले, अगर स्वास्थ्य की संभावना हो। बस, रोग ही रोग रह जाते है। स्वास्थ्य का कोई उपाय, व्यवस्था नही रह जाती।

और तुम्हारे सारे धर्म तुम्हे प्रेम के संबध मे उलटा समझाते है। तुम्हारे सारे धर्म तुम्हें प्रेम का दुश्मन बनाते हैं। उनका ख्याल है, कि अगर तुमने प्रेम किया तो तुम ससार मे अटक जाओगे। और मैं तुमसे कहता हूँ, कि अगर तुमने प्रेम न किया तो तुम ससार में सदा-सदा भटके रहोगे। तुमने अगर प्रेम किया तो तुम ससार के पार हो जाओगे।

क्यों? क्योंकि प्रेम मे एक बड़ी कीमिया है; वह जन्म भी है और मृत्यु भी। तुम जब प्रेम में उतरोगे तो तुम पाओगे, जीवन भी अपनी चरम ऊँचाई पर पहुँच जाता है और मृत्यु भी--एक साथ! क्योंकि प्रेम में तुम इतने

प्रफुल्लित होते हो, जितने कभी न थे। ऐसे खिलते हो जैसे कभी न खिले थे। और प्रेम में तुम्हारा अहंकार ऐसा मर जाता है, जैसा कभी न मरा था। तुम ऐसे मिट जाते हो जैसे कभी न मिटे थे।

यह अनूठी घटना, यह जगत् का सबसे बड़ा रहस्यपूर्ण राज प्रेम में घटता है। एक तरफ से तुम हो जाते हो, दूसरी तरफ से मिट जाते हो। एक तरफ से तुम विराट हो जाते हो, दूसरी तरफ से राख हो जाते हो। अहंकार तो बिलकुल मिट जाता है। अहंकार के पार जो तुम्हारा सात्विक, शाश्वत, सनातन रूप है, वह अपनी परिपूर्ण प्रखरता में उग आता है।

प्रेम को जिसने जाना, उसने जन्म को भी जाना और मृत्यु को भी जाना। जो प्रेम में जिया और प्रेम में मरा, उसने जीवन के पूरे रहस्य को समझ लिया; तब उसे मृत्यु का कोई भय नही रहता क्योंकि उसने मर कर देख लिया। मर कर देख लिया, कि मरना नही होता है। उसने मर कर देख लिया, कि मैं तो बचा ही रहता हूँ और प्रगाढ़ हो कर बच जाता हूँ। उसने मर कर देख लिया, कि मै अमृत हूँ।

जिसने प्रेम मे यह देख लिया, वह मृत्यु की प्रतीक्षा करता है। क्योंकि जब प्रेम की छोटी-सी मृत्यु में इतना अपूर्व अमृत का स्वाद मिला, तो जब मृत्यु पूरी आयेगी तब तो कहने ही क्या!

कबीर कहते है, "कब मिटिहौ, कब भेंटिहों पूरन परमानद!" कब मिटूगा, उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कब मिटूगा, कब मिलूगा, पूर्ण परमानंद से।

थोडे-से रस को जाना, अभी बून्द का स्वाद चखा, कब सागर का स्वाद चखूगा। बून्द से पता चला गया सागर के राज़ का। प्रेम से पता तो चल गया परमात्मा का, लेकिन बून्द एक कण भर! स्वाद मिल गया, अब कब मिटिहौ, कब भेंटिहौं, पूरन परमानद!

इसलिये मै कहता हूँ, प्रेम से बचना मत; प्रेम का अतिक्रमण करना है। प्रेम को नीचे मत उतारना पायदान पर; प्रेम को उपर ले जाना है। प्रेम से भागना मत, क्योंकि जो प्रेम से भागा, वह परमात्मा से भाग गया। प्रेम को जानना, प्रेम में प्रवेश कर जाना, क्योंकि जिसने प्रेम में प्रवेश किया-- प्रवेश करते वक्त तो वह प्रेम जैसा मालूम पड़ता था, जब तुम प्रवेश कर जाओगे तब तुम पाओगे, यह तो परमात्मा का द्वार था।

इसलिये जीसस ठीक कहते है, "प्रेम परमात्मा है।"

"प्रेम नर्क है, प्रेम स्वर्ग है।

छठवां प्रश्न : आपने कल कहा है कि नचिकेता की तरह जीवन के द्वार पर दृढ हो कर बैठ जाना है। नचिकेता तो मृत्यु के द्वार पर बैठा था, पर आप हमे जीवन के द्वार पर दृढ़ हो कर बैठने को किस भांति कहते हैं?

क्योंकि जीवन का द्वार ही मृत्यु का द्वार है।

जीवन-मृत्यु दो है, इस भ्रांति को छोड़ो, अलग-अलग है, इस भ्रांति को छोड़ो; विपरीत हैं, इस भ्रांति को छोड़ो। जीवन-मृत्यु एक साथ हैं; जैसे पक्षी के दो पंख साथ है, तुम्हारा दाया और बाया पैर साथ है। दायां और बायां पैर दोनों के होने से तुम चलते हो। मृत्यु और जन्म दोनों से जीवन चलता है; वे दोनो पैर है।

यह बात ही छोड दो, कि नचिकेता मृत्यु के द्वार पर बैठा था। वह जीवन के ही द्वार पर बैठा था। जीवन का द्वार ही तो मृत्यु का द्वार है। अगर तुम गौर से देखोगे, तो प्रतिपल मृत्यु घटित होती है। ऐसा थोड़ा ही है, कि सत्तर वर्ष बाद अचानक एक दिन मृत्यु आ जाती है! तो तुमने जीवन को समझा ही नही।

तुम जिस दिन से पैदा हुए हो, उसी दिन से मर भी रहे हो। प्रतिपल जीते हो, प्रतिपल मरते हो। मृत्यु तो सास की भाति है।

अगर तुम ठीक से समझो, बच्चा जब पैदा होता है, तो पहला काम करता है, स्वांस भीतर लेने का। बाहर तो छोडने का काम कर ही नही सकता क्योंकि स्वास भीतर है ही नही। तो पहला कृत्य है स्वास को भीतर लेना। स्वास को भीतर लेना जन्म है। उसके पहले बच्चा जीवित नही है।

इसलिए चिकित्सक और परिवार के लोग जल्दी करते है, कि बच्चा चीखे, चिल्लाये, स्वास ले ले। अगर जरा देर हो गई और बच्चे ने रोना नही शुरू किया और स्वास नही ली—क्योंकि रोने के द्वारा ही बच्चा स्वास लेता है। सारा फेफडा अभी तो श्लेष्मा से भरा होता है क्योंकि स्वास का द्वार अभी बंद है। घरघराहट होती है छाती मे। उसको ही हम रोना जैसा समझते हैं। उस घबड़ाहट और घरघराहट में ही बच्चा स्वास लेता है, जीवित हो उठता है। अगर पाच-सात मिनट तक स्वास न ले, तो गया।

तो जीवन का, जन्म की शुरुआत है स्वांस के लेने से। फिर एक आदमी मरता है, यही बच्चा बूढ़ा होकर मरेगा, तो मरने का आखिरी काम क्या होगा? सास छोड़ना! लेना तो हो ही नही सकता आखिरी काम, क्योंकि अगर सास ले ली, तो मरोगे ही नही।

तो जन्म शुरू होता है सांस भीतर लेने से, मृत्यु आती है सांस बाहर जाने से। अगर यह बात तुम्हे समझ में आ जाय तो प्रतिपल तुम जन्म ले रहे हो, प्रतिपल तुम मर रहे हो, क्योंकि सांस भीतर-बाहर आ रही है। जब तुमने सांस भीतर ली तो तुम जीवित होते हो, जब तुमने सांस बाहर छोड़ी तुम मरे।

पर यह इतनी तीव्रता से घट रहा है, कि तुम्हें पता नही चलता। इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि प्रतिपल जन्म है, प्रतिपल मृत्यु। पल का आधा हिस्सा जन्म है, पल का आधा हिस्सा मृत्यु। तुम एक दिन अचानक थोड़े ही मर जाओगे! रोज-रोज मर रहे हो। रोज-रोज मरते-मरते एक दिन मृत्यु का पलड़ा भारी हो जायेगा। जन्म के समय जन्म का पलड़ा भारी था, मृत्यु के समय मृत्यु का पलड़ा भारी हो जायेगा।

भारी होने का केवल इतना ही अर्थ है, कि जन्म के समय सांस लेने का यंत्र मजबूत था, मृत्यु के समय सांस लेने का यंत्र अब शिथिल हो गया, थक गया। अब सांस और भीतर नही ली जा सकती। विश्राम में जाना चाहता है यंत्र। पंचतत्व लौट जाना चाहते हैं अपने पंचतत्वों में, थके गये! सत्तर वर्ष की दौड़धूप—काफी थकान हो गई; अब लौट जाना चाहते हैं। फिर आने के लिए ताज़े होंगे।

जन्म और मृत्यु दो नही हैं। एक-साथ, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जहाँ भी तुम हो, मृत्यु के द्वार पर बैठे हो। और अगर ठीक समझ मे आ जाय, तो तुम जहाँ बैठे हो, वही तुम नचिकेता हो। और वही से यम से तुम्हारी चर्चा शुरू हो सकती है।

यम से चर्चा तो प्रतीक है। यम से चर्चा का अर्थ ही यह है कि मृत्यु से सवाद करो। मृत्यु से संबंध जोड़ो। मृत्यु से थोड़ी बातचीत करो। डरो मत, भागो मत। मृत्यु से मुलाकात करो। इतना अर्थ है यम का। और मृत्यु तुम्हे कितने ही प्रलोभन दे, राज़ी मत होना। तुम तो कहना, अमृत से कम पर हम राज़ी नही है। मृत्यु से कहना, कि तू हमें कुजी बता दे अमृत की।

अब यह जरा मजे की बात है, कि नचिकेता को अमृत की कुजी चाहिए और पूछ रहा है मृत्यु से; क्योंकि मृत्यु के पास कुजी है। इसमें कुछ भी भी अचरज नहीं है। मृत्यु में ही प्रगट होता है अमृत।

क्यों ऐसा है? स्कूल में शिक्षक लिखता है काले ब्लैक बोर्ड पर सफेद खड़िया से। सफेद दीवाल पर नहीं लिखता; लिखेगा तो दिखाई ही न पड़ेगा। काला तख्ता चाहिए, सफेद-शुभ्र खड़िया चाहिए, तब लिखावट होती है

तुम सफेद कागज पर लिखते हो, तो काली स्याही से लिखते हो। और सफेद रंग से लिखोगे, तो लिखना व्यर्थ ही चला जायेगा। विपरीत मे चीजें प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ती हैं। मृत्यु का जब ब्लैक बोर्ड, काला तख्ता चारों तरफ से घेर लेता है, तभी तुम्हारे भीतर जो अमृत है वह अलग होकर दिखाई पड़ता है; उसके पहले दिखाई नही पड़ता। दिखाई पड़ भी नही सकता।

जीवन से घिरे हो—वृक्ष, पक्षी आकाश, मनुष्य; सब तरफ जीवन लहलहा रहा है, तुम भी जीवन हो; सब तरफ जीवन है। इस जीवन मे तुम अपने जीवन को कैसे देख पाओगे? सफेद दीवाल पर सफेद अक्षर लिखे हैं। मृत्यु के क्षण में तुम्हारे चारों तरफ एक कालिमा घिर जायेगी। यम तुम्हें घेर लेगा। देखा है? यम की तस्वीर देखी, काली! भैंसे पर सवार, काले भैंसे पर सवार!

अब यह बड़े मजे की बात है। अगर यह गोरे लोगों ने किया होता, तो ठीक था। नीग्रो भी मृत्यु को काला ही मानते हैं। उनको तो मानना चाहिए बिलकुल शुभ्र, सफेद चमडी! वे भी काला ही मानते हैं मृत्यु को। उनको समझ आ जायेगी, तो वे बदल देंगे।

मैंने सुना है, कि कुछ इस तरह का सिलसिला चलता है, कि ईश्वर को काला चित्रित किया जाय क्योंकि नीग्रो ईश्वर काला होना चाहिए। यह तो सफेद चमडीवाले लोगो की करतूत है, कि ईश्वर गोरा; और सफेद चमडी वालों की करतूत है, कि शैतान काला। तो कुछ राजनीति चलती है। और कोई आश्चर्य न होगा, कि नीग्रो तय कर लें कि हम तो अब मौत को सफेद रखेंगे, सफेद घोडे पर सवार, सफेद।

मगर जचेगी न! क्योंकि इससे कोई सबंध नीग्रो और सफेद चमड़ी का नही है। यह तो एक बहुत गहरा प्रतीक है, कि जीवन एक श्वेत तरंग है, एक शुभ्र तरग है, एक लहर है प्रकाश की।

तुमने कभी ख्याल किया? दिया जलता है, दिया बुझता है, अंधेरा सदा है। अंधेरे को न जलाना पडता है, न बुझाना पड़ता है। दिया आता है, जाता है, अंधेरा सदा है। जन्म आता है, जाता है, मृत्यु सदा है। जैसे ही तुम थक गये, मृत्यु की गोद तैयार है। वह सदा से तैयार है। अभी तुम चाहो, अभी लौट जाओ। मृत्यु का अधकार सदा है।

और अंधकार का प्रतीक कीमती है क्योकि अंधकार विश्राम है। प्रकाश में विश्राम मुश्किल है, इसीलिये तो दिन मे नींद मुश्किल है। सूरज आकाश मे हो, तो नींद मुश्किल है। रात भी कोई बल्ब जला कर सोये, तो मुश्किल है।

अंधेरे में विश्राम आसान है, अंधेरे में एक विश्राम है, अंधेरा बड़ा शांत है, विरामपूर्ण है।

इसलिये मृत्यु अंधकार है, क्योंकि वह विश्रांति है। सब चहल-पहल खो गई, सब तरंगें जा चुकीं, कुछ दिखाई नही पड़ता, महा अंधकार ने घेर लिया। उस महा अंधकार के क्षण में अचानक चौंकते हो तुम, कि मैं तो मरा ही नही! मैं तो हूँ! और मैं इतना प्रगाढता से हूँ, जिनकी प्रगाढ़ता से कभी भी न था। इस अंधेरे में तुम्हारी शुभ्र रेखा चमकती हुई दिखाई पड़ती है।

जैसे जितने काले बादल हों, उतनी ही बिजली चमकदार मालूम पड़ती है। जितनी अधेरी रात हो, तारे उतनी ही शुभ्र मालूम पड़ते है। दिन में भी तारे है आकाश में। तुम यह मत सोचना, कि कहीं चले गये। जायेंगे कहां? दिन में भी है लेकिन दिखाई नही पड़ते; चारों तरफ प्रकाश है। अगर तुम किसी गहरे कुएं में चले जाओ तीन सौ फीट नीचे, तो वहाँ से तुम्हें दिन में भी तारे दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि बीच मे तीन सौ फीट की अंधकार की पर्त आ जायेगी।

मृत्यु के ही क्षण में अमृत दिखाई पड़ता है। इसलिये उपनिषद् की कथा बड़ी मधुर है। नचिकेता को भेज दिया है मृत्यु के पास, कि वह अमृत को जान ले। मृत्यु के पास भेजा है, पिता ने कहा, तुझे गुरु के पास भेजता हूँ। क्योकि मृत्यु के अतिरिक्त कोई गुरु नही हो सकता। मृत्यु गुरु है।

और इससे उलटा भी सही है, कि हर गुरु मृत्यु है। वह तुम्हे मिटायेगा, काटेगा, तोडेगा। सिर्फ उतना ही बचने देगा, जिसको मिटाने का कोई उपाय नहीं है; ताकि सब टूटे-फूटे खंडहर के बीच, अहंकार के खण्डहर के बीच सपनों के खण्डहर के बीच तुम उसे पहचान लो, जो सत्य है; जिसको कोई, तोड़ना चाहे, तोड़ नहीं सकता; छेदना चाहे, छेद नही सकता।

कृष्ण ने गीता में कहा है, "नैनं छिदन्ति शस्त्राणि"--मुझे शस्त्र छेद नहीं सकते।" "नैन दहति पावक."--मुझे आग जला नही सकती।

मगर आग मे ही पता चलेगा, कि जला सकती है या नही! शस्त्र छिदेंगे तभी पता चलेगा, कि छिदते है या नही! मौत में आग भी जलेगी, शस्त्र भी छिदेंगे, अंधकार सब तरफ से घेर लेगा, उस क्षण अगर होश रहा, तो तुम देख लोगे, कि तुम अमृत हो। इसलिये असली सवाल जीवन में होश को साध लेने का है। अन्यथा मरते तो सभी है।

हैं, होश ही नही रहता। तो मृत्यु तो बार-बार आती है सिखाने, तुम बार-बार चूक जाते हो।

मृत्यु का गुरु बहुत बार तुम्हे घेरता है लेकिन तुम शिष्यत्व से ही वंचित हो। तुम सीखने से वचित हो क्योंकि तुम होश मे नही हो।

प्लैटो मर रहा था--यूनान का सबसे बडा विचारक। प्लैटो का विचार और प्लेटो की विचार की क्षमता इतनी प्रगाढ थी, कि उसका नाम बुद्धिमानी का प्रतीक हो गया।

मैं छोटा था, मेरे दादा गैर-पढे-लिखे आदमी थे। उन्होने प्लैटो का तो कभी नाम भी नही सुना था, लेकिन प्लैटो का जो भारतीय नाम है--अफलातून- वे जब मुझ पर नाराज होते थे तो वे कहते थे, बडे अफलातून के बेटा बने हो! मैं उनसे पूछता, अफलातून कौन? तो वे कहते, होगा कोई! उनको पता नही, कि अफलातून कौन है, लेकिन अफलातून प्लेटो का नाम है। प्लैटून से आया--अफलातून। इतना प्रगाढ विचारक था प्लेटो, कि अफलातून प्रतीक ही हो गया, कि बडे विचारक के बेटे बने हो! वे जब बहुत ही नाराज हो जाते तब वे अफलातून का उपयोग करते थे।

यह प्लैटो मर रहा था, मरण-शय्या पर पडा था, मित्र इकट्ठे थे, किसी ने पूछा, कि एक आखिरी सवाल और! तुमने जीवन भर जो कुछ कहा, जो कुछ समझाया जो कुछ सिखाया, उसे सार मे कह दो। क्योंकि तुम्हारे शास्त्र तो बडे हैं और जटिल है और हम समझ पाये, न समझ पाये, भूल जाये, भटक जाये, तुम हमे सार मे कह दो। एक ही वचन मे कह दो, दो-चार शब्दो मे कह दो, ताकि हम कठस्थ कर ले और सूत्र को याद रखे।

प्लैटो ने आँख खोली और उसने कहा, सारे जीवन मैंने एक ही बात सिखाई, वह है, मरने की कला, "द आर्ट टू डाइ।" उसने आँख बद कर ली और मर गया। ये उसके आखिरी वचन थे--"मरने की कला!"

सारा धर्म मरने की कला है, सारा ध्यान मरने की कला है। मरने की कला का मतलब यह है, कि तुम होश से मरना। मगर होश से तुम तभी मर सकोगे, जब होश मे जिओ। क्योंकि होश कोई ऐसी चीज नही है, कि अचानक मरने लगे और साध लिया।

तुमने मोमिन का प्रसिद्ध वचन सुना होगा,

"उम्र तो गुजरी इश्के बुता मे, मोमिन,

अब मरते वक्त क्या खाक मुसलमा होंगे।"

कि जिंदगी भर तो मूर्तिपूजा में गुजरी उम्र। मोमिन का मतलब है, कि जिन्दगी भर तो खूबसूरत स्त्रियों को पूजते रहे, वह मूर्तिपूजा है। सौंदर्य को पूजते रहे। 'उम्र तो गुजरी इश्के बुता मे मोमिन, अब मरते वक्त क्या खाक मुसलमां होंगे!" और अब मरते वक्त तुम कहते हो, मूर्तियां छोड दो, परमात्मा की कोई मूर्ति नही। न! अब यह न हो सकेगा।

अगर जीवन भर होश को न साधा, तो मरते वक्त तुम न साध सकोगे। अभी साध लो, अभी समय है, तो मौत जब आये, तुम्हे जागा हुआ पाये। और जिसको भी मौत ने जागा हुआ पाया, मौत उससे हार जाती है। जिसको भी मौत ने जागा हुआ पाया, उसकी मौत होती ही नही। उस तरह के आदमी के मरण को ही हम मुक्ति कहते है, मोक्ष कहते है। वह मरता नही है, वह मुक्त होता है। उस तरह के आदमी की मृत्यु को हम मृत्यु नही कहते, समाधि कहते है। उसका तो समाधान हो गया मृत्यु के आने से।

अब तक की जो चिन्ता थी, कि जीवन क्या है, क्या है रहस्य जीवन का, क्या है लक्ष्य, क्या है गन्तव्य, और जीवन बचता है या नही, यह क्षणभंगुर है, या शाश्वत है– सारी समस्या मृत्यु के आने से समाधान हो जाती है, उसकी, जो जागा हुआ है। इसलिये जागे हुए की मृत्यु को हम समाधि कहते है।

जागा हुआ आदमी जब मर जाता है, तो उसकी कब्र को भी हम समाधि कहते है। साधारण आदमी की कब्र को हम समाधि नही कहते, वह तो कब्र ही है! ये तो फिर आयेगे। ये तो अभी थोड़ी देर विश्राम कर रहे है कब्र मे, लौट आयेगे। ये अभी गये नही है। इनका एक पैर अभी यही है। ये जल्दी ही लौटने की तैयारी करेगे। ये जरा सो गये है, थोड़े थक गये थे, फिर वापिस आ जायेगे।

हम उस व्यक्ति की कब्र को समाधि कहते है, जो अब लौटेगा नही। क्योंकि जिसने मृत्यु का राज समझ लिया, उसे लौटने की जरूरत ही न रही। जिसने मृत्यु को जान लिया, उसने जन्म को भी जान दिया। जिसने जन्म और मृत्यु को जान लिया, उसको अब कुछ जानने को बाकी न रहा।

तो तीन महत्वपूर्ण घटनाये है, जन्म और मृत्यु, और प्रेम। जन्म तुम्हारे बस मे नही है। तुम पैदा हो गये। अब लौट कर कुछ किया नही जा सकता।

प्रेम तुम्हारे बस मे है, कुछ किया जा सकता है। लेकिन शायद संस्कृति, सभ्यता, समाज तुम्हे प्रेम न करने दे, अड़चन डाले, बाधा खड़ी करे। समाज, सभ्यता, संस्कृति विवाह में भरोसा करती है, प्रेम मे नही। उसके कारण है। क्योंकि विवाह ज्यादा सुरक्षित सुविधापूर्ण मालूम पड़ता है।

प्रेम खतरनाक है। प्रेम ऐसा है, जैसे तूफान आये समुद्र में नाव को छोड़ना; अनजाने वन-पथ पर पगडंडियों से यात्रा करना।

विवाह राजपथ पर चलना है। सीमेंट-पटा मार्ग है, करोड़ों लोग साथ चल रहे हैं, कहीं कोई भय नहीं। दोनों तरफ पुलिसवाले भी चल रहे हैं, मजिस्ट्रेट भी साथ है, सब व्यवस्थित है। जरा गड़बड़ हुई तो अदालत है। प्रेम झंझट है, विवाह सुविधा है। सुविधा के कारण लोग प्लास्टिक के फूल खरीद लिये हैं। असुविधा से बचने के लिये असली फूलों से बच गये हैं।

इसलिए जन्म मे तो तुम कुछ अब कर नही सकते, हो गया! प्रेम भी करने मे तुम्हे बडी बाधायें पडेंगी, लेकिन कुछ कर सकते हो। बड़ी अड़चनें होंगी, लेकिन कुछ कर सकते हो ।

पर मृत्यु के संबध मे तो सब कुछ कर सकते हो। कोई अड़चन नहीं, कोई बाधा नही। इसलिये जन्म की भी फिक्र छोड दो अगर, तो चलेगा। अगर प्रेम मे भी पाओ, कि अब बहुत उलझन है, समय जा चुका, अब कुछ करना उलझन ही बढ़ायेगा—जाने दो! मृत्यु को साध लो। होश को साधो। और मरते वक्त एक ही बात अगर तुम बचा लो, कि तुम जागे हुए मर जाओ; मौत आये, तुम्हें बेहोश न पाये, सब हो जायेगा। जागा हुआ जो मरता है, वह मरता ही नहीं। वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

लेकिन अगर प्रेम की कोई भी सभावना हो—क्योंकि कुछ आश्चर्य नही कि तुम्हे अपनी पत्नी से ही प्रेम हो, तुम्हे अपने बच्चे से प्रेम हो; लेकिन तुम उससे भी डर रहे हो।

मै एक मित्र के घर मे रहता था। मैंने उन्हे कभी उनके बच्चों से बात करते नहीं देखा, पत्नी को कभी पास बैठे नहीं देखा। चलते थे तो इतनी तेजी से, नौकरो की तरफ यहाँ वहाँ नही देखते थे। बड़े धनपति थे। मैंने उनसे पूछा, कि मामला क्या है? उन्होने कहा, अगर जरा बच्चों से पूछो, क्या हाल है? पैसे के लिए हाथ बढाते है। पत्नी से पूछो, क्या हाल है? वह कहती है हार, बाजार मे गई थी, बडा अच्छा है, लौटते मे ले आना। नौकर की तरफ देखा, तनखाह फौरन बढ़ाओ! तो मैं सीख ही गया हूँ, किसी के तरफ देखना ही नही, तेजी से चलना। और किसी के पास बैठना हीं, हमेशा अखबार पढ़ना। पत्नी वहाँ है, तो बीच में अखबार! क्योंकि जरा ही कुछ करो, महगा पड़ता है।

अब यह आदमी मर गया। इस आदमी के जीवन में प्रेम की कोई सुगंध ही न रही। यह सड गया, यह लाश है। यह पैसा बचा लेगा, खुद को गंवा देगा।

अगर प्रेम की कोई संभावना है, तो उसे खिलने देना। डरो मत। खोने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ पाने को है। और जो खोने का तुम्हें डर है, वह खो जाने दो क्योंकि उसे तुम बचा भी न सकोगे। जो खोने को है, वह खोयेगा ही। जो बच सकता है, वही केवल बचेगा। तुम्हारे उपाय कुछ काम नहीं आते।

इस भावदशा को ही मैं समर्पण कहता हूँ, तुम जीवन के प्रति समर्पित हो जाओ। और तुम पाओगे कि तुम धन्यभाग से भर गये हो। तुम पर आशीर्वादों की वर्षा हो गई। तुम्हारे प्राण पुलकित हो गये हैं। अब तुम उदास नहीं, थके-मांदे नहीं। जीवन की धार सागर से जुड गई। अब तुम उलीचो कितना ही, चुकता नहीं है, बढता है।

ल्यौ लागी तब जाणिये

प्रवचन सात, दिनांक १७-७-१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

जोग समाधि सुख सुरति, सों, सहजैं सहजैं आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव॥
ल्यौ लागी तब जाणिये, जेवा कबहूं छूटि न जाइ।
जीवत यौं लागी रहे मूवा मंझि समाइ॥
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करे लगान।
सबद गुरु का ताजना, कोई पहुँचे साधु सुजान॥
आदि अंत मध एक रस, टूटे नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा॥
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई।
दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यो लाई॥



संसार का गणित तथा सत्य का गणित न केवल भिन्न है बल्कि विपरीत भी। संसार मे जो सीढ़ी है, वही सत्य में पतन हो जाता है। संसार में जो सहारा है, सत्य मे वही बाधा हो जाती है। संसार मे जिसके सहारे तुम सफल होते हो, सत्य में उसके ही कारण असफल हो जाते हो।

और जीवन की सारी शिक्षा-दीक्षा जीवन में सफल होने की है। इसका अर्थ हुआ, कि परमात्मा में असफल होने का पूरा सस्कार तुम्हारे जीवन के चारों तरफ तैयार कर दिया जाता है। संसार में सफल होना हो तो, संघर्ष वहां सूत्र है; समर्पण वहाँ भूल; सघर्ष वहा सूत्र है। अगर समर्पण किया तो संसार में तुम कभी भी जीत न पाओगे। हारते ही चले जाओगे। अगर संघर्ष किया तो ही जीतने की संभावना है।

लेकिन कठिनाई और भी बढ़ जाती है। संसार में अगर जीत भी जाओ तो जीत हाथ नही लगती। क्योंकि जीत तो केवल सत्य की है। अगर संसार में जीतना हो, तो संघर्ष; लेकिन जीत कर भी तुम पाओगे, कि जीवन संघर्ष में व्यतीत हुआ, पाया कुछ नहीं। जीत कर ही पाओगे, कि हार गए। ससार में हारा हुआ आदमी तो हारता है; जीता हुआ भी अंत में पाता है, कि हार गया।

संसार में कभी कोई जीता नही। लेकिन संसार का सूत्र संघर्ष है; हिंसा, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, क्रोध—पूरी फौज है; वह संसार में सहारा देती है।

हम प्रत्येक बच्चे को संसार के लिए तैयार करते हैं। वही तैयारी परमात्मा में बाधा बन जाती है। तो जब तक तुम उस तैयारी को तोड़ने को राजी न हो जाओ तब तक परमात्मा का द्वार जो कि सदा ही खुला हुआ है,

तुम्हारे लिए बंद रहेगा। वह "तुम्हारे" लिए बंद रहेगा। द्वार तो खुला ही हुआ है। लेकिन तुम्हारी आंखों पर एक दीवाल है, उसके कारण खुला द्वार भी दिखाई नहीं पड़ता।

एक स्कूल में एक शिक्षक ने पूछा एक होटल-मालिक के बेटे से, कि पचास बाराती आए हों, तो जितनी दाल लगती है, तो यदि एक सौ पचास बाराती हों, तो उससे कितने गुना ज्यादा दाल लगेगी? उसके बेटे ने कहा, कि दाल तो उतनी ही रहेगी; सिर्फ मिर्च और पानी की मात्रा बढ़ानी पड़ेगी। होटल मालिक का होनहार बेटा है। शिक्षित हो रहा है, दीक्षित हो रहा है।

संसार में भरोसा भूल है। भरोसा किया कि अटके। संदेह सार है। संसार में मान कर ही चलना, कि सभी दुश्मन हैं, कोई मित्र नहीं। क्योंकि जिसको भी मित्र माना वहीं से संसार में गिराव शुरू हो जाएगा। संसार को तो शत्रु मानना। अगर किसी को मित्र कहो भी, तो कहना भर, मानना भीतर नहीं।

यही तो कौटिल्य और मेक्यावली की शिक्षा है—किसी को मित्र मत मानना। मित्र को भी शत्रु की तरह ही जानना, ऊपर-ऊपर मित्रता दिखाना, भीतर शत्रुता मानना। क्योंकि अगर मित्र मान लिया, तो भरोसा कर लिया। जिसका भरोसा किया, वही धोखा देगा।

ठीक उलटी शिक्षा है जीसस की, शत्रु को भी मित्र मानना। तो जिसने पहली शिक्षा में काफी पारंगत कुशलता पा ली है, उसे दूसरी शिक्षा बड़ी मुश्किल हो जाएगी। सत्य की तरफ जाना हो तो श्रद्धा चाहिए। संसार की तरफ जाना हो तो जितनी ज्यादा संदिग्ध मन की दशा हो, उतना ही सहयोगी है। और संसार के लिए हम तैयार करते हैं।

तो अश्रद्धा का तो हमारे पास बड़ा निष्णात, कुशल आयोजन होता है। श्रद्धा का कोई अंकुर भी नहीं होता। इसलिए जब हम परमात्मा की तरफ भी मुड़ते हैं, तो वही शंकालू हृदय लेकर मुड़ते हैं, जो संसार में काम आता था। फिर वही बाधा बन जाता है। द्वार तो सदा खुला है उसका। अगर बंद है, तो तुम्हारा हृदय बंद है। आंख बंद है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी डाक्टर के पास गयी थी। बीमार थी। वह उसे भीतर के कक्ष में ले गया, जहां जांच-पड़ताल करेगा। टेबल पर लेटते वक्त उसने कहा, "एक बात; इसके पहले की आप मेरी जांच करें, नर्स को भीतर बुला लें।"

डाक्टर थोड़ा नाराज हुआ। उसने कहा, "क्या मतलब? क्या मुझ पर तुम्हारा भरोसा नही?"

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा, कि आप पर तो पूरा भरोसा है। बाहर बैठे मेरे पति पर भरोसा नही। नर्स को भीतर ही बुला ले। पति और नर्स बाहर अकेले ही छूट गये है।

प्रतिपल--जिन से तुम्हारा प्रेम है और जिन से तुम कहते हो, कि हमारा प्रेम है, उन पर भरोसा नही।

ससार मे प्रेम पाप है, घृणा गणित है। और यही तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा है, इसकी ही पर्त-दर-पर्त तुम्हारे चारो तरफ जमी है। इसलिए जब तुम ससार में थक कर परमात्मा के द्वार पर दस्तक देते हो, दस्तक व्यर्थ चली जाती है। क्योंकि द्वार तो बद ही नहीं है; द्वार तो खुला ही है। तुम जिस पर दस्तक दे रहे हो वह तुम्हारी खड़ी की हुई दीवाल है। तुम अपनी ही दीवाल पर दस्तक दे रहे हो। परमात्मा का द्वार बद कैसे हो सकता है? तुम्हारा ही सस्कारो का जाल तुम्हें चारों तरफ से घेरे है। तुम ही गलत हो गए हो।

और जब तक यह गलत होना ठीक न हो जाये, तब तक लाख सिर पटके दादू, कबीर, तुम्हे लगे भी कि तुम समझ गए, फिर भी तुम समझ न पाओगे। तुम्हारी समझ भी कोई काम न आयेगी। क्योंकि तुम्हारी जो जीवन-स्थिति है, जो ढाँचा तुमने बना लिया है, वह मूलत सत्य-विरोधी है।

इसे ठीक से समझ लो। इसीलिये जीसस ने कहा है, कि जब तक तुम पुन बच्चो की भाति न हो जाओ, तब तक तुम प्रभु के राज्य मे प्रवेश न पा सकोगे। क्या मतलब है, 'पुन बच्चो की भाति न हो जाओ?' सीधा-सा मतलब है, उस दशा मे न पहुच जाओ जहा ससार और समाज और सस्कृति ने तुम्हे प्रभावित नही किया था, उस पूर्व दशा मे न पहुँच जाओ, जहा तुमने कुछ भी सीखा न था, जहा ससार का जहर तुम्हारे भीतर प्रविष्ट न हुआ था, जहा तुमने ससार का अनुभव न किया था, उस दशा मे तुम जब तक न पहुँच जाओ, तुम जब तक पुन कुआरे न हो जाओ।

ससार ने तुम्हे व्यभिचारी कर दिया है। जब तक तुम फिर से वापिस उस प्राथमिक सरलता को न पा लो, तब तक तुम प्रभु के राज्य मे प्रवेश न पा सकोगे। और तुम बहुत जटिल हो गये हो। तुम बहुत चालाक हो गए हो। तुम बहुत हिसाबी-किताबी हो गए हो। तुमने दुकान की भाषा सीख ली,

प्रेम का हिसाब ही तुम्हें भूल गया। तुम प्रेम से अपरिचित ही हो गए हो, और तुम प्रार्थना करने आ जाते हो।

प्रार्थना करने आना तो ऐसा है, उस व्यक्ति का, जो प्रेम से अपरिचित हो गया, जैसे कोई व्यक्ति लकवे से लगा पड़ा हो, चल भी न सकता हो, और दौड़ने के इरादे कर रहा हो। तुम चल भी नहीं सकते हो, दौड़ोगे कैसे?

तुम प्रेम भी नहीं कर सकते; तुम प्रार्थना कैसे करोगे? तुम किसी व्यक्ति के लिए भी अपना हृदय नहीं खोल सकते, तुम समष्टि के लिए कैसे अपना हृदय खोलोगे? एक के लिए नहीं खोल सकते, अनंत के लिए कैसे खोलोगे?

यह पहली बात ख्याल में ले लें, तब ये सूत्र बहुत आसान हो जाएंगे। अन्यथा समझना मुश्किल होगा। और वह बात यह है कि यहां परमात्मा के द्वार पर श्रद्धा सहयोग है, संदेह बाधा है। भरोसा, अनन्य भरोसा, अनंत भरोसा यहां द्वार है। जरा-सा शक, जरा-सा-संशय--और द्वार बंद हो जाता है; दीवार है। फिर द्वार नहीं। यहां सरलता, चालाकी नहीं; होशियारी नहीं, सरलता, निर्दोषता, सहयोगी है। तुम्हारी होशियारी, तुम्हारी कुशलता संसार मे पाई गयी तुम्हारी उपाधियां संसार में उपाधियां होंगी, बड़ा उनका सम्मान होगा, यहां वे उपाधियां हैं, बीमारियां हैं।

यह उपाधि शब्द बड़ा अच्छा है। इसके दो अर्थ होते है। एक तो अर्थ होता है, एक सम्मानित पद, और दूसरा अर्थ होता है, बीमारी। सब पद बीमारियां हैं, सब उपाधियां हैं।

संसार में तुम्हारी जो ऊंचाइयां हैं, वही परमात्मा के जगत में तुम्हारी नीचाइयां है। संसार के जो शिखर हैं, वही परमात्मा के जगत में अंधेरी खाइयां है। संसार मे जो तुम्हारी उपलब्धि है, परमात्मा के जगत में वही तुम्हारी अपात्रता है।

मैंने सुना है, एक झेन फकीर के द्वार पर एक दिन जापान का गवर्नर मिलने आया। उसने अपना कार्ड भेजा, अपना नाम लिखा। नीचे लिखा, Governer of Tokyo टोकियो का गवर्नर।

जिस शिष्य के द्वार पर खड़े होने की ड्यूटी थी, वह कार्ड लेकर भीतर गया। गुरु ने कार्ड देखा और कहा, "फेंको। भगाओ, इस आदमी को। यहां इसकी क्या जरूरत है, "हटाओ इस आदमी को। शिष्य आया और उसने कहा, गुरु ने कहा है, "हटाओ इस आदमी को। यह द्वार इस के लिए बंद है। यहां इसकी क्या जरूरत है?"

गवर्नर निश्चित ही बहुत समझदार रहा होगा। गवर्नरों से इतने समझदार होने की आशा की नहीं जा सकती। बड़ा अनूठा रहा होगा। साधारणतः यह होता नहीं। गवर्नर होते-होते आदमी बिलकुल गधा ही हो जाता है। यह यात्रा ऐसी है। अरब में एक कहावत है, कि गधे घोड़े नहीं हो सकते; लेकिन गवर्नर हो सकते हैं।

पर यह गवर्नर अनूठा रहा होगा। बड़ा प्रतिभा-सजग। तत्क्षण समझ गया कार्ड वापिस लिया, गवर्नर ऑफ टोकियो काट लिया, कार्ड वापिस दिया कहा, एक बार और कृपा करो, इसे वापिस ले जावो।

गुरु ने देखा कहा, "अरे! यह है! बुलाओ भीतर। हम समझे, गवर्नर हैं। गवर्नर की यहां क्या जरूरत है? यह तो अपने पुराने परिचित हैं, आने दो।"

परमात्मा के मार्ग पर तुम्हारी उपाधियां, तुम्हारी सफलताएं, तुम्हारा नाम यश, सभी पत्थर की दीवालें बन जाते हैं। उन्हें तुम छोड़ कर ही जाना, तो ही जा सकोगे। अगर उनको ले जाने का मन हो, तो वहां जाने का ख्याल ही छोड़ दो। तुम अपने घर भले, परमात्मा अपने घर भला। नाहक झंझट न करो। अभी संसार को और जी लो। अभी बिमारियों में रस है, थोड़े और बिमार रह लो। कोई जल्दी भी नहीं अनंत काल पड़ा है, लेकिन ठीक से मुक्त हो जाओ संसार से, तो ही तुम परमात्मा की तरफ बढ़ पाओगे। जरा-सा भी रस वहां लगा रहा--

मुक्त होने का यह अर्थ मत समझ लेना कि भाग जाओ जंगल में। जो भी भगोड़े हैं, वे तो भागते ही इसीलिए हैं क्योंकि मुक्त नहीं हैं। मुक्त ही हो गए होते तो भगवान कहां है? भागना किससे है? भाग कर जाओगे भी कहां? जहां भी जाओगे, वही संसार है। और जहां भी जाओगे, कम से कम तुम तो वही रहोगे। भागना कहीं भी नहीं है, सिर्फ जागना है। भागो नहीं, बदलो। और बदलने का केवल मतलब इतना है, कि सोये से जागो। व्यर्थ को समझो, असार को देखो, सार को पहचानो।

कहते हैं दादू :

"जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजै सहजै आव।"

बड़ा अनूठा वचन है।

"मुक्ता द्वारा महल का, यह है भगति का भाव।"

जीसस कहते हैं, खटखटाओ, द्वार खुलेंगे, मिलेगा।

दादू जीसस से भी गजब की बात कह रहे हैं। वे कहते हैं--"मुक्ता द्वारा महल का। यह द्वार तो खुला ही है, मुक्त है। खटखटाओगे कहां? मांगना

क्या है? मिला ही हुआ है। परमात्मा दूर थोड़े ही है! सामने खड़ा है। परमात्मा तुमसे भी ज्यादा तुम्हारे पास है।

'मुक्ता द्वारा महल का, है भगति का भाव।"

भक्त का तो यही भाव है, कि द्वार खुला है। इसे खोलना भी नही है। खोलने की भी जरूरत नही है। खोलने का भी यत्न करना पड़े, तो अहंकार आ जायेगा। तुम यत्न करोगे, तुम्हारा अहंकार मजबूत हो जाएगा।

तुम कुछ करोगे, तुम्हारे करने से पमात्मा नहीं मिलता है। तुम जब न करने की दशा मे होते हो, तभी मिलता है। तुम जब बिलकुल ही शांत अकर्म ही अवस्था मे होते हो, तभी मिलता है। तुम तो खोलने की कोशिश भी, खटपट करोगे तो चिंता पैदा होगी। इसलिए अक्सर यह हो जाता है, जो परमात्मा का दरवाजा खोलने की बहुत ज्यादा चिंता बना लेते है, उनका दरवाजा सदा के लिए भटक जाता है।

ऐसा हुआ एक बहुत अद्भुत जादूगार हुआ: हुदिनी। और उसके जीवन में उसने बडे चमत्कार किए, जैसा की कोई दूसरा जादूगार कभी नही कर पाया है। और वह आदमी बडे गजब का आदमी था। और उसने यह सदा स्वीकार किया है कि ये सिर्फ हाथ की सफाईयां है। उसने कभी धोका न दिया। उसने ऐसी हजारो बाते की, कि जिनको अगर वह चाहता तो दुनिया का सबसे बड़ा अवतारी पुरुष हो जाता। तुम्हारे साईबाबा इत्यादि सब फिके है, दो कोडी के है। हुदिनी की कला बड़ी अनूठी थी। दुनिया में ऐसा कोई ताला नही ह, जो उसने सेकिंड मे न खोल दिया हो। उसके ऊपर जंजीरे बाधी गई, हथकडीयां बाधी गई, पानी में सागर में फेंका गया। सेकंड न लगे और वह बाहर आ गया, सब जजिरे अलग। जेलखानो में डाला गया; इगलैंड के जेल खानों मे अमेरिका के जेलखानो में, स्पेन के जेलखानों में, सख्त से सख्त जहा पहारा है, क्षण भर बाद वह बाहर खड़ा है। कोई समझ नहीं पाये, कि वह कैसे बाहर आता? क्या होता? उसने सब व्यवस्था तुड़वा दी। लेकिन उसने कभी कहा नही, कि मै कोई सिद्ध पुरुष हूं। उसने इतना ही कहा; कि सब हाथ की सफाई है।

लेकिन एक बार वह मुश्किल में पड़ गया। फ्रांस में पेरिस में वह प्रयोग कर रहा था। सारी दुनिया में वह सफल हुआ, वहां आकर हार गया। एक जेलखाने में उसे डाला गया, जहां से उसे टिकल कर आना था। जिन्दगी भर में वह बडे से बडे जेलखानो से निकल गया। और ऐसी भी जंजीरें तो, उसने खोल ली

बिना किसी चाबियों के। क्या थी उसकी कला, बड़ा कठिन है कहना। और कभी उसने दावा किया नहीं, कि मैं कोई चमत्कारी हूं, या कोई ईश्वरी व्यक्ति हूं, कुछ भी नहीं।

मगर वहां वह हार गया। जो आदमी तीन सैकिन्ड मे बाहर आ जाता और ज्यादा से ज्यादा तीन मिनट लेता, उसको तीन घण्टे लग गए और वह बाहर न आया। लोग घबड़ा गए। बाहर हजारों लोगों की भीड़ थी देखने। क्या हो गया?

मामला यह हुआ कि मजाक की थी पुलिस अधिकारियों ने। ताला लगाया ही न था, दरवाजा खुला छोड़ दिया था; और वह ताला खोज रहा था। ताला हो तो खोल ले। ताला था नही, वह घबड़ा गया। उसे यह ख्याल भी न आया घबड़ाहट में, कि दरवाजा सिर्फ अटका है। वह इतना परेशान हो गया कि ताला छिपा कहां है? कही न कही ताला होगा। सब कोने-कातर छान डाले। कमरे के दूसरी तरफ छान डाला। हो सकता है, कोई धोखे का दरवाजा लगा है, जो दिखाई न पड़ता हो दरवाजा और वह यह दरवाजा न हो। दीवाल का कोना-कोना छान गया लेकिन कही कोई ताला हो, तो मिल जाय। और जब ताला ही न हो, तो तुम्हारे पास कोई भी चाबी हो, तो क्या खाक काम आएगी?

तीन घण्टे बाद भी वह न निकलता। निकलने का कारण तो यह हुआ, कि वह इतना थक गया और पसीने-पसीने हो गया, कि बेहोश होकर गिर पड़ा। धक्का लगने से दरवाजा खुल गया। वह बाहर पड़े थे। पहली दफा जिन्दगी में वह असफल हुआ। मजाक के सामने जादू हार गया।

कारण? कारण वही है, जो हर आदमी की जिन्दगी में घट रहा है। तुम परमात्मा के दरवाजे पर अगर हार रहे हो, तो कारण यह है, कि तुम ताला खोज रहे हो। और ताला वहां है नहीं।

"मुक्ता द्वारा महल का"—उस महल का द्वार मुक्त है, खुला है। अटका भी नही है। उतनी भी जरूरत नहीं है कि तुम बेहोश हो कर गिरो, धक्का लगे, जब कहीं द्वार खुले। दरवाजा खुला ही है।

"जोग समाधि सुख सुरति सों, सहजै सहजै आव।"

और इतनी सहजता से परमात्मा में प्रवेश हो जाता है, कि तुम नाहक ही बड़े जतन कर-करके अपने को थका रहे हो, पसीना-पसीना कर रहे हो। कोई शीर्षासन लगाए खड़ा है, कोई उल्टी-सीधी कवायद कर रहा है, कोई योग साध रहा है, कोई नाक बन्द किए, श्वास को रोके हुए है, कोई कानों मे अंगुलियां डाले हुए है, कोई आंखों को दबा कर प्रकाश देख रहा है।

हजार तरह की नासमझियां, सारे संसार में प्रचलित हैं। वे सब कुंजियां हैं खोलने की उस ताले को, जो ताला है ही नही; उस द्वार को खोलने के उपाय, जो खुला ही है। तुम्हारे उपाय ही तुम्हारे ताले को खुलने न देंगे।

भक्ति सहज मार्ग है। सहज का अर्थ होता है, जहां कुछ भी न करना पड़े, अपने से हो जाए।

"जोग समाधि"— वह जो योग की समाधि है, वह जो योग का परम समाधान है, जहा सभी समस्याएं गिर जाती है, सभी प्रश्न तिरोहित हो जाते है, जहा मात्र समाधान का संगीत बजने लगता है, जहां एक का स्वर गूंजने लगता है।

"जोग समाधि" – वह जो योग की समाधि है, योग का अर्थ होता है, मिलन जहां व्यक्ति समष्टि से मिलता है, जहा कण अनन्त से मिलता है, जहा बूंद सागर से मिलती है, वह घड़ी है योग। जहां तुम मिटोगे और परमात्मा से मिलोगे, वह आलिंगन है योग। जोग समाधि, इधर मिले कि सब समस्याए गई। मिले नही, कि समस्याए मिटी नही।

समस्याओं की समस्या एक ही है—वह तुम हो। तुम्हारे कारण ही सारी समस्या है। तुम्हारे अहंकार के कारण ही सारी समस्याएं पैदा हुई हैं। तुम सारी समस्याओं के केन्द्र हो। मिले, तुम मिटे। क्योंकि मिलन का अर्थ ही यह है कि जब तक मिटो न, तब तक मिलोगे न। बूंद अगर सागर से मिलेगी, तो मिलने के ही क्षण में मिट जायेगी। मिटने की तैयारी होगी, तो ही सागर की तरफ जाएगी। नही तो दूर-दूर भागेगी।

जोग समाधि; वह मिलन जब घटता है, तब सब समाधान हो जाता है। करोड़ों करोड़ों जन्मों मे न मालूम कितने प्रश्न और समस्याएं थी; उस मिलन के क्षण मे उठती ही नही। चाहा होगा तुमने कि परमात्मा अगर मिलेगा तो पूछ लेंगे। हजार तरह के प्रश्न तुम्हारे मन मे उठते हैं। लेकिन जिस दिन परमात्मा मिलेगा उस दिन न पूछने को कोई प्रश्न न बचेगा, उस दिन तुम पाओगे, कि प्रश्न है ही नही; जीवन निष्प्रश्न है।

जीवन मे कोई प्रश्न नही है। प्रश्न तुम्हारी चिन्ताओं से पैदा होते है। जीवन में प्रश्न है नहीं। जीवन तो एक रहस्य है, एक रस है। भोगो, पूछो मत। पूछे, कि चूके। क्योंकि जैसे ही पूछना तुमने शुरू किया, तुमने भोगना बन्द कर दिया। तुम जीवन के रस का स्वाद नही लेते; अब तुम पूछ रहे हो। और पूछने का कोई अन्त नहीं है। पूछने से पूंछ बढ़ती ही चली जाती है। प्रश्न बड़े ही होते चले जाते है। एक प्रश्न पूछो, उत्तर मिल भी नही पाता, कि दस प्रश्न खड़े हो जाते है। ऐसी शाखा प्रशाखाएं फैलने लगती हैं।

अस्तित्व में कोई प्रश्न नही है। अस्तित्व तो उनके लिए है, जो निष्प्रश्न होकर जीना जानते है।

जोग समाधि का अर्थ है—समाधि शब्द का अर्थ बड़ा अर्थपूर्ण है। उसका अर्थ होता है, परिपूर्ण समाधान। जहां पूछने को कुछ न बचा, सब शान्त हो गया। तुम खोजो भी प्रश्न, तो मिलते नही।

बुद्ध के पास कोई भी आता तो वे यही कहते थे, एक साल रुक जाओ। जो भी पूछना हो, पूछ लेना। सभी प्रश्नों के जवाब दूंगा, अभी भाग नहीं जा रहा हूं कहीं। लेकिन एक वर्ष रुक जाओ। एक वर्ष जो मैं कहूं, वह तुम कर लो। फिर तुम जो पूछोगे, मैं जवाब दूगा।

एक वर्ष बीत जाता। अगर व्यक्ति इतना रुकने को राजी हो जाता, और बुद्ध जो कहते, करने को राजी हो जाता; बहुत से तो लौट जाते, कि जो आदमी हमारे सवालो का जवाब ही नही दे सकता उसके पास रहने का क्या सार है? जो हमारे प्रश्न हल नही कर सकता, उसके पास समय क्यो बरबाद करे? बहुत से लौट जाते। बहुत से सोचते, कि बुद्ध को पता नही, इसलिये उत्तर नही देते। बहुत से सोचते, कि यह बुद्ध कोई ज्ञानी नही है, क्योंकि ज्ञानी तो सदा ही उत्तर दे देते है; यह चुप क्यों है?

लेकिन जो रुक जाते, जो हिम्मतवर होते, जो जीने को राजी होते, जो बुद्ध के इशारे पर चलने को राजी होते, रुक जाते। साल बीत जाता, बुद्ध उनसे पूछते, कि अब तुम पूछ लो। तो वे हसते और कहते, कि आपने धोखा दे दिया। अब तो पूछने को कुछ न बचा। आपकी मान कर शान्त होते गए, शान्त होने के साथ-साथ प्रश्न भी झड़ गये; जैसे पतझड़ मे पत्ते झड़ जाते है। अब कोई प्रश्न नही उठता।

तो बुद्ध कहते अगर उस दिन, जिस दिन तुम पूछने आये थे, मैं जवाब देता, तो हर जवाब के बाद प्रश्न उठते चले जाते। कोई अंतर न आता। आज प्रश्न नहीं उठता, मैं जवाब देने को तैयार हूं, और तुम पूछने को तैयार नही। तब तुम पूछने को तैयार थे, मै जवाब देने को तैयार नही था।

जिसने पूछा, वह कितना ही सोचने मे उतर जाए, लेकिन जितना तुम सोचोगे, अस्तित्व से उतना ही दूर निकल जाते हो। अपने पास आना है, तो विचार को छोडना है, खोना है, विचार को शान्त हो जाने देना है। ऐसी लहर बन जाओ जहां कोई लहर न उठती हो। ऐसी शान्त झील बन जाओ, जहां कोई लहर न उठती हो, जहां कोई कम्पन न उठता हो प्रश्न का; उस अवस्था का नाम समाधि है।

"जोग समाधि, सुख सुरति सों।"

और यह कैसे घटेगी जोग समाधि? यह समाधान कैसे आएगा? कैसे प्रश्नों के पार तुम उठोगे? कैसे विचारातीत होओगे? कैसे होगा अतिक्रमण मन का? कैसे अमनी दशा पैदा होगी? कैसे नो-माइंड की शुरुआत होगी?

सूत्र है, "सुख सुरति सों।" सुखपूर्वक स्मरण को साधो। मगर बड़ी साफ बात है—सुख पूर्वक। दुख देने की चेष्टा मत करना अपने को। अन्यथा ऐसा रोज हो रहा है।

दुनिया में दो तरह के दुष्ट हैं। एक, जो दूसरों को सताते हैं; दूसरे, जो खुद को सताते हैं। दोनों दुष्ट हैं। पहले तरह के दुष्टों को तो तुम पकड़ लेते हो, दूसरे तरह के दुष्टों की तुम पूजा करते हो। दूसरे तरह के दुष्ट ज्यादा कुशल हैं। तुम्हारे तथाकथित साधु-सन्यासी दूसरे प्रकार के दुष्ट हैं, हिंसक हैं।

इसे तुम समझो। यह सीधी सी बात है। अगर तुम किसी दूसरे आदमी को भूखा मारो, सारे लोग कहेंगे, कि यह आदमी दुष्ट है। और तुम खुद उपवास करो, सब कहेंगे, यह आदमी बड़ा त्यागी है।

अब यह बड़े मजे की बात है। बात वही की वही है। इसमें तुम अपने को भूखा मार रहे हो, तो तुम त्यागी। और दूसरे को भूखा मारे तो तुम दुष्ट। अगर उपवास से लाभ होता है तो सभी को भूखा मारो। लोगों को तुम्हारी प्रशंसा करनी चाहिए, कि यह आदमी अकेले ही उपवास नहीं कर रहा है, कई का करवा रहा है।

जो आदमी दूसरे को सताए, उसे हम हिंसक और पापी कहते हैं। हिटलर, सिकंदर मालूम पड़ते हैं—दूसरों को काटते हैं, मारते हैं। लेकिन जो अपने को काटते हैं, मारते हैं, उन्हें तुम सिर पर उठाये घूमते हो। कांटों पर सोए हैं, तुम उनके चरणों पर सिर रखते हो, क्योंकि कैसा महातपस्वी है। कांटों पर सो रहा है। यह दुष्ट है, हिंसक है। कुछ फर्क नहीं है, उसकी हिंसा अपने पर लौट आई है।

मनोविज्ञान दो तरह की हिंसाएं मानता है। और मनोविज्ञान की इस संबंध में सूझ बहुत साफ है। और दुनिया में आनेवाले भविष्य में धर्म को इस बात को समझ ही लेना होगा। नहीं तो धर्म वास्तविक धर्म नहीं हो पाता। मनोविज्ञान कहता है, दो तरह के हिंसक लोग हैं।

एक, जिसको मनोविज्ञान कहता है, सेडिस्ट; जो दूसरों को सताने में रस लेते हैं। दी सादे हुआ फ्रांस में एक बहुत बड़ा लेखक; उसके नाम पर सैडिज्म

पैदा हुआ। क्योंकि वह सताता था दूसरों को; वही उसका रस था। वह जिन स्त्रियों को प्रेम करता था, उनको भी द्वार-दरवाजे बन्द कर के कोड़ों से मारता था, लहू-लुहान कर देता था। वह जब प्रेम करने आता था तो ऐसे आता था, जैसे डाक्टर एक बैग लेकर आता है। उसके बैग में सब चीजें होती थीं--कोड़ा, कांटे, चुभाने के लिए लोहे के नाखून, कि वह हड्डी, मांस, मज्जा में भीतर चला जाए। वह पीटता, मारता, सताता। स्त्री चीखती, चिल्लाती; पुकारती। वही उसका आनन्द था, फिर वह प्रेम करता।

थोड़ी बहुत ऐसी हिंसा तुम भी अपने में पाते होओगे। तुमने अगर किसी स्त्री को प्रेम किया है, तो कभी तुमने उसके शरीर को काट भी लिया है। उसमें थोड़ी हिंसा है। दी सादे का थोड़ा-बहुत परिमाण तुम मे भी है।

अगर तुम वात्स्यायन का कामसूत्र पढो, तो वात्स्यायन कहता है, प्रेम की अनेक विधियों में नख-छेदन, स्त्री मे नख से लहू-लुहान कर देना। तो अपने नख से करो, कि लोहे के नख से करो। वह थोड़ा टेक्निकल है। और तो कोई खास मामला नही है। वह ज्यादा होशियार है। नख भी क्या उलझाओ अपना? और लोहे से जो काम ज्यादा ठीक से हो सकता है, वह नख से उतने ठीक से हो न पाएगा।

लेकिन वात्स्यायन कहता है, कि नख से छेदो, दांत से काटो। ये प्रेम के लक्षण है। तो फिर घृणा का लक्षण और क्या होता है? आमतौर से अगर तुम किसी जोडे को प्रेम करते देखो; शायद इसीलिए जोडे अंधेरे मे प्रेम करते हैं, छिप कर, कि कोई देख न सके। अगर तुम देखो, तो तुम पाओगे, कि उनके प्रेम मे लड़ाई जैसा तत्व ज्यादा है। शायद इसीलिए स्त्रियां आखें बद कर लेती हैं प्रेम करने के क्षण में, कि कौन देखे झझट! वह पुरुष जो है, भयानक मालूम होता है, जैसे कि जान ले लेगा।

सेडिजम पैदा हुआ है सादे के नाम पर। उसका अर्थ है, दूसरे के दुख में सुख, पर-दुखवादी।

दूसरा एक लेखक हुआ है, उसका नाम है मैसोच। वह स्व-दुख-वादी था। उसके नाम पर मैसोचिस्ट शब्द बना, कुछ लोग हैं, जो अपने को सताते हैं। वह अपने को ही सताता था। कोड़े खुद को ही मारता था, छाती पीटता था, लहू-लुहान कर लेता था--अपने को ही! और उसे कहता था, बड़ा रस आता है।

दुनिया में ये दो तरह के लोग हैं। और दूसरे तरह के आदमी ने, वह मैसोचिस्ट जो आदमी है--स्वयं को सतानेवाला, उसने बड़ा धोखा दिया है

धर्म के नाम पर। वह उपवास करता है, कांटों पर सोता है, उसने क्या क्या नहीं किया? तुम हैरान होओगे; उसने आंखें फोड़ ली हैं, जननेन्द्रियां काट दी हैं, और उसको पूजा मिली है, आदर मिला है। वह आत्महत्या करता है। जिसको तुम तपश्चर्या कहते हो, वह उसका आत्मघात है—धीमा-धीमा।

और स्मरण रहे, जो दूसरों को दुख देता है, वह तो थोड़ा हिम्मतवर भी है, इसीलिए दूसरे को दुख देता है। क्योंकि दूसरे को दुख देना जरा झंझट है। दूसरा कुछ ऐसे ही नहीं बैठा रहेगा। कुछ तो करेगा ही। इसीलिए डर है, कि दूसरा तुम्हे सता सकता है। अगर मजबूत हुआ तो तुम्हें सताएगा ही। लेकिन जो कायर है, वे अपने को सताते हैं। डर भी नही है कोई। खुद को सताओगे, तो बदला लेने को भी कोई नही है, प्रतिशोध करने को भी कोई नही है।

तो दुनिया मे जो थोड़े हिम्मतवर है, वे दूसरों को सताते है। जो कायर है, कमजोर है, वे खुद को सताते है। और ये कायर तुम्हे सन्त मालूम होते है।

नही, दादू कहते है, सुख सुरति सौं। जाननेवाले तो कहते है, कि सुख से पाया जाता है। दुख की कोई जरूरत ही नही। न दूसरे को देने की जरूरत है न खुद को देने की जरूरत है। दुख से परमात्मा का क्या लेना-देना? "सुख सुरति सौं।" वह तो सुख की ही भावदशा से उत्पन्न होगा। और इसमे अर्थ भी मालूम पड़ता है क्योंकि महासुख है वह। दुख देने से कैसे उपलब्ध होगा? दुख देने से तो और दुख उपलब्ध होगा। दुख का अभ्यास करोगे, तो नर्क जाओगे; स्वर्ग कैसे जाओगे?

स्वर्ग का अगर अभ्यास करना हो, अगर जाने की तैयारी करनी हो, तो सुख मे लीनता साधनी चाहिए, सुख की कुशलता साधनी चाहिए। दादू ठीक कहते है, "सुख सुरति सौं"। सुख को साधो।

सुख का मतलब यह नही है, कि सुख के पीछे दौड़ो। क्योकि जो दौड़ता है, वह तो सुख को कभी पाता नही। सुख को अगर साधना है, तो एक ही रास्ता है—"सुरती सौं"। जागो! स्मरण पूर्वक जियो।

सुरति सस्कृत के स्मृति शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है; लेकिन बिगड़ कर शब्द बड़ा मधुर हो गया है। कई बार ऐसा हो जाता है। स्मृति मे तो थोड़ी सी धार है, सुरति में बड़ी गोलाई है। स्मृति शब्द तो बड़ी चोट करता है, सुरति मिठास की तरह हृदय मे उतर जाता है। बहुत बार ऐसा होता है, कि पण्डितों के शब्द जब लोक-भाषा में आ जाते हैं, बड़े प्यारे हो जाते है। स्मृति पण्डितो का शब्द है। सुरति गैर पढ़े-लिखे लोगों का। मतलब वही है, लेकिन

मतलब गहन हो गया। स्मृति से तो एक चोट लगती मालूम पड़ती है। धार है, शब्द में पैनापन है। सुरति मे धार नहीं है, गोलाई है, माधुर्य है।

"सुख सुरति सौं"—सुखपूर्वक परमात्मा का स्मरण साधो। जोग समाधि उपलब्ध होगी। सुख से जीने का अर्थ है, दुख को पालो-पोसो मत।

मैं देखता हूँ, मेरे पास रोज लोग आते है। जब वे अपनी दुख की कथा कहते है, तो मुझे सदा ऐसा लगता है, कि उस दुख की कथा कहने मे भी बडा रस ले रहे है। अगर दुख की कथा न होती, तो कहने को उनके पास कुछ भी न होता। उनके चेहरे पर देखो, तो एक रौनक आ जाती है जब वे दुख की कथा कहते है। और दुख की कथा वह बढा-बढ़ा कर कहते है। जितना दुख उन्होने पाया नही, उतना बना कर बताते है। खुद भी भरोसा करते होगे, कि इतना ही पाया।

अगर तुम ऐसे आदमियो के दुख पर भरोसा न करो और टालने की कोशिश करो, तो वे और भी दुखी हो जाते है। अगर उनको कहो, कि ये सब तुम्हारे मानसिक ख्याल है, तो उनको बडी चोट पहुचती है। दुख मे उन्हे बडा रस है। वे दुख कह कर तुमसे सहानुभूति माग रहे है। वे कहते है, कि थपथपाओ हमारे सिर को जरा। आशीर्वाद दो। हम बडे दुखी है। जैसे दुखी होना बडी गुणवत्ता है! जैसे दुखी होना बडी पात्रता है, कि आप बडी योग्यता ले कर आए है! दुखी होना तो कोई योग्यता नही है। दुखी होना तो सिर्फ मूढ़ता है।

और इसको नियम मान लो कि अगर तुम दुखी हो, तो तुम्हारी ही भूल होगी। तुम ससार को ठहराते हो, कि ससार दुखी कर रहा है। कोई किसी को दुखी कर नही सकता। तुम्हे ससार दुखी करता मालूम पडता है, क्योंकि तुम दुखी होना चाहते हो। तुम बहाने खोज लेते हो। और उन बहानो को तुम इकट्ठा करते रहते हो और फिर दुखी हो जाते हो। फिर दुख को तुम छोडने को भी राजी नही। फिर दुख से तुम चिपटते हो, जैसे वह सपदा है। दुख को बहुत लोगो ने सम्पदा बना लिया है। उनके ही सहारे जीते है, नही तो जियेंगे कैसे? अगर दुख न होगा तो इनके जीवन की कथा ही बन्द हो जाएगी। उनकी आत्मकथा ही खो जाएगी। दुख से ही अपना ताना-बाना बुनते है। और दुख मे एक तरह का रस लेते है।

वह रस वैसा ही है, जैसे कोई खाज को खुजलाता है। खाज हो जाय तो तुम जानते हो, कि खुजलाने से और पीडा होगी, लहू-लुहान हो जाएगा शरीर, चमडी उखड जाएगी, मगर फिर भी एक मीठा सुख मिलता है, तुम

खुजलाए चले जाते हो। जानते हो, कि भूल हो रही है; फिर भी रोक नहीं पाते। दुख को तुमने खाज बना लिया है। और जितना तुम खुजलाओगे दुख को, जितनी उसकी चर्चा करोगे, जितना उस पर ध्यान दोगे, उतने ही तुम दुख को भोजन दे रहे हो।

ध्यान भोजन है। अगर तुमने दुख को दिया, दुख पनपेगा, बढेगा। अगर तुमने सुख को दिया, सुख पनपेगा, बढ़ेगा। ध्यान तो वर्षा है जल की; जिस पौधे पर पड़ेगा, वही बढने लगेगा।

और तुम दुख ही दुख की चर्चा कर रहे हो। सुबह से उठते ही से बस, तुम दुख खोजना शुरू करते हो। हर चीज मे दुख पाते हो, हर चीज का दुख इकट्ठा कर रहे हो। धीरे-धीरे तुम दुख का एक अम्बार हो गए, एक संग्रह हो गए हो। अब तुम्हारा सिर्फ एक ही सुख है, कि कोई तुम्हारा दुख सुन ले।

पश्चिम मे पूरा धन्धा पैदा हो गया है मनोविश्लेषण का। कुछ नही करता मनोविश्लेषक, इतना ही करता है, वह तुम्हारा दुख सुनता है। पश्चिम मे कोई दूसरा सुनने को राजी है भी नहीं। लोगों के पास कोई समय नही है। पूरब जैसी बात नही है, कि तुम किसी के भी घर पहुच जाओ और अपना दुख सुनाने लगो। समय नही है लोगों के पास। किसी के पास मिलने आना हो, तो पहले से पूछना पड़ता है, पहले से समय लेना पड़ता है। ऐसे किसी के घर भी सिर उठाया और पहुंच गए! समय नही है। पति के पास समय नही है, कि पत्नी की कहानी सुन ले, पत्नी के पास समय नही कि पति की कहानी सुन ले। किसी के पास कोई समय नही बचा है।

तो प्रोफेशनल सुननेवाला, धन्धेबाज, जो सिर्फ सुनने का ही धन्धा करता है वह मनोविश्लेषक है, साइकोएनालिस्ट है। उसका काम इतना है, कि तुम लेट जाओ कोच पर। वह पीछे बैठ जाता है, तुम जो भी बकवास करनी है, करो। वह सुनता है। इससे भी राहत मिलती है। मनोविश्लेषण कुछ भी सहारा नही पहुचाता, लेकिन तुम अपनी बकवास कह कह कर हलके हो जाते हो। कोई तुम्हें इतने ध्यान से सुनता है, यह बात ही बड़ा मजा देती है। तुम और दुख बढा-बढा कर लगने लगते हो। और उसको तो ध्यान से सुनना ही पड़ता है क्योंकि वह पैसा ले रहा है सुनने के। यह कभी अतीत के दिनों मे किसी ने सोचा भी न होगा, कि कभी प्रोफेशनल धन्धेबाज सुननेवालों की जरूरत पड़ेगी। उनका कुल काम उतना होगा, कि तुम्हारी बकवास वे सुनें उतना समय उन्होने दिया, उतना पैसा तुम दे दो।

पूरब की हालत उलटी है, अभी भी उलटी है। अभी भी कोई किसी को छाती पर जाकर बैठ जाए तो वह कितना ही उसको उबाए, कितना ही उसको सताए, मगर वह कहता है, बड़ी कृपा की, अतिथि देवता है। आप आए, अच्छा हुआ।

मुल्ला नसरुद्दीन भागा जा रहा था स्टेशन की तरफ। एक आदमी ने रोका। मित्र पुराने परिचित, कि "बड़े मियां! कहां जा रहे हो?"

उसने कहा, "बम्बई जा रहा हूं। ट्रेन पकड़नी है।"

तो उस आदमी ने कहा, "अभी बजा क्या है? ट्रेन तो पांच बजे जाती है बम्बई की। और तुम अभी से भागे जा रहे हो? अभी बजा क्या है?"

तो मुल्ला ने कहा, "अभी बजा तीन है।"

उसने कहा, "हद हो गई! तीन बजे से भागे जा रहे हो पाच बजे की, ट्रेन पकड़ने के लिए?"

मुल्ला ने कहा, "भाई साहब! अभी तुम जैसे कई बेवकूफ रास्ते से मिलेंगे। पाच बजे तक भी पहुंच जाऊं, तो बहुत है।"

अभी पूरब मे यही चल रहा है। लेकिन पश्चिम मे हालात बदल गए है। किसी के पास कोई समय नही है। तो धन्धेबाज सुननेवाला चाहिए। बर्ट्रेन्ड रसेल ने लिखा है, कि आनेवाली सदी मे मनोविश्लेषण सब से बड़ा व्यवसाय होगा। इक्कीसवी सदी मे हर मुहल्ले मे दो-चार मनोवैज्ञानिकों की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि कोई किसी को सुनने को राजी नही होगा। क्यो कोई किसी की सुने?

और मनोवैज्ञानिक सुनता है। पता है, और मनोवैज्ञानिक काफी महंगी फीस लेता है। एक बैठक के सौ, दो सौ, पाच सौ रुपये—मनोवैज्ञानिक की प्रतिष्ठा पर निर्भर होता है। एक घण्टा बकवास सुनता है, हजार रुपए लेता है। लोग सालों मनोविश्लेषण करवाते है। तीन साल, चार साल, पांच साल। ऐसे ऐसे मरीज है, जो दसों साल से इलाज करवा रहे है। हजार रुपया प्रति घण्टे का चुका रहे है।

और मनोवैज्ञानिक उन्हें कैसे सुधार पायेगा, वह मै जानता नही। क्योंकि यहां मेरे पास मनोवैज्ञानिक आते है अपने इलाज के लिए। पश्चिम से आ रहे है। जो हजारों मरीजों का इलाज कर रहे है, वे फिर खुद अभी इलाज के लिए चले आ रहे है, कि उनके मन मे शांति नहीं है।

मगर वह मरीज को राहत मिल रही है, कि कोई सुन रहा है, बस! सुनने से कितनी सांत्वना मिलती है! तुम्हारा दुख कोई ध्यान दे रहा है।

लेकिन तुम्हें पता नहीं कि जब भी तुम्हारे दुख को तुम ध्यान दो या कोई भी ध्यान दे—ध्यान वर्षा है। तुम्हारे दुख का पौधा और बड़ा होगा। सुख को ध्यान दो, दुख की उपेक्षा करो। एक काटा गड़ जाए तो उसके लिए हाय-तोबा मत मचाओ। जीवन में बहुत फूल हैं, उनको देखो। जरा सी पीड़ा आ जाए, तो उसको सिर पर लिए मत घूमो। अनुगृहीत होने के लिए अभी बहुत परमात्मा ने दिया है, थोड़ा उस तरफ स्मरण करो—सुख सुरति सो।

एक मुसलमान बादशाह हुआ। उसका नौकर उसे बड़ा प्रिय था—एक नौकर। इतना प्रिय था, कि रात उसके कमरे मे भी वह नौकर सोता ही था। उससे बड़ी निकटता थी, बड़ी आत्मीयता थी। दोनो जगल जा रहे थे। शिकार पर निकले थे। एक वृक्ष के नीचे खड़े हुए। सम्राट ने हाथ बढाया और फल तोड़ा। जैसे उसकी सदा आदत थी, कुछ भी उसे मिले तो वह नौकर को भी देता था। वह मित्र जैसा था नौकर। उसने उसे काटा, एक कली नौकर को दी। उसने खाई और उसने कहा, "अहोभाग्य! एक और दे।" दूसरी भी ले ली, वह भी खा ली। बड़ा प्रसन्न हुआ। कहा, एक और दे। एक ही बची, एक टुकड़ा ही बचा सम्राट के हाथ मे, तीन उसे दे दिए।

सम्राट ने कहा, यह तो तू हद कर रहा है। अब एक मुझे भी चखने दे। और तेरा भाव देख कर, तेरी प्रसन्नता देख कर ऐसा लगता है, कोई अनूठा फल है। उसने कहा, कि नही मालिक। फल निश्चित अनूठा है मगर खाऊंगा मैं ही, आप नही। छीन-झपट करने लगा। सम्राट नाराज हुआ उसने कहा, यह भी सीमा के बाहर की बात हो गई। दूसरा फल भी नही है वृक्ष पर। सम्राट ने छीन-झपटी मे ही अपने मुह मे फल का टुकड़ा रख लिया—जहर था! थूक दिया, उसने कहा, कि नासमझ! और मुस्कुरा रहा है? तूने कहा क्यों नही?

उस नौकर ने कहा, "जिन हाथो से बहुत मीठे फल खाये, एक जहरीले फल के लिए क्या बात उठानी, क्या चर्चा करनी! जिन हाथो से बहुत मिष्ठान्न मिले, जिस प्रसाद से जीवन भरा है, उसके हाथ से एक अगर कड़वा फल भी मिल गया, तो उसकी बात ही क्यो उठानी? उसको कहा रखना तराजू पर? इसलिए जिद कर रहा था कि एक टुकड़ा और दे दे, कि आपको पता न चल जाय। क्योंकि यह पता चल जाए आपको, तो भी जाने-अनजाने शिकायत हो गई। अगर आप के हाथ एक टुकड़ा छोड़ दिया मैंने, कुछ न कहा कि कड़वा है, सिर्फ छोड़ दिया, और आप जान गए कि कड़वा है, तो मैंने कह ही दिया। बिना कहे कह दिया। इसलिए छीन-झपट कर रहा था मालिक, माफ कर दें। चाहता था, यह पता न चले। अनुग्रह अखण्ड रहे,

शिकायत की बात न उठे, इसलिए छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। आप माफ कर दें।

भक्त का यही भाव है परमात्मा के प्रति। जिस हाथ से इतना मिला है, जिसके दान का कोई अन्त नहीं है, जिसका प्रसाद प्रतिपल बरस रहा है, श्वास-श्वास में जिसकी सुवास है, धड़कन धड़कन में जिसका गीत है, क्या शिकायत करनी उसकी? क्या दुख की बात उठानी?

छोड़ो! दुख की चर्चा बन्द करो, अन्यथा दुख बढ़ेगा। दुख की उपेक्षा करो, दुख में रस मत लो। घाव में उंगली डाल कर मत चलाओ। नहीं तो घाव हरा ही बना रहेगा। वह कभी भरेगा कैसे? यह खुजलाहट बन्द करो।

'सुख सुरति सौं'—परमात्मा का स्मरण करो सुखपूर्वक। और इतना सुख है, कि कोई कारण नहीं कि क्यों तुम सुखपूर्वक परमात्मा का स्मरण न कर सको। तुम्हारा होना ही इतना बड़ा सुख है, सांस का चलना ही इतना बड़ा सुख है। तुम हो, यह कोई छोटी घटना है? इससे बड़ी घटना तुम कल्पना कर सकते हो? होने से बडा और क्या हो सकेगा?

तुम हो, होशपूर्ण हो, तुम्हारे भीतर एक जगमगाती चेतना का एक दीया है और इससे बड़ा क्या चाहते हो? सच्चिदानन्द की तुम्हारी पूरी सम्भावना है और तुम्हारी मांग है? किसलिए भिखारी बने हो?

द्वार खुला है, थोड़े सुख-पूर्वक बैठ जाओ, थोड़ा सुख-पूर्वक उसकी सुरति से भरो। जैसे-जैसे सुख समाएगा, जैसे-जैसे सुख की भनक तुम्हारे चारों तरफ गूंजने लगेगी, जैसे-जैसे सुख नाचेगा, जैसे-जैसे सुख मे तुम डूबोगे, सुख डूबेगा, जैसे-जैसे तुम सुख के साथ एक होने लगोगे—और उसका स्मरण एक महासुख बन जाएगा। आंख खोलोगे, पाओगे, द्वार खुला है। द्वार खुला ही है।

'सुख सुरति सौं'। दुख को मत पोसो, दुख को मत अपने ऊपर रोपो। दुख को मत ढोओ। सुख की तरफ मुड़ो। ध्यान सुख की तरफ ले जाओ, और सुख में जागने जैसा है।

मैंने सुना है, कि एक कारागृह में दो व्यक्ति बंद थे वे दोनों ही पहले ही दिन कारागृह मे आए थे। दोनों ही सींखचों को पकड़ कर खिड़कियों की खड़े थे। एक ने देखा, सींखचों के बाहर ही गंदा डबरा। वर्षा के दिन होंगे, मच्छर डबरे पर बैठे, बदबू उठती, कूड़ा-करकट इकट्ठा; उसका मन शिकायत से भर गया। और उसने कहा, कि जेलखाना, और ऊपर से यह बदबू और यह गंदगी। जीवन नर्क है। इससे मर जाना बेहतर है।

दूसरा भी उसी के पास खड़ा था उन्हीं सींखचों को हाथ मे पकड़े हुए। उसने आकाश की तरफ देखा, यह पूरे चांद की रात थी। आकाश अपूर्व ज्योत्स्ना से भरा था। अद्भुत संगीत था आकाश मे। चांद-तारो की गुफ्त गू थी। वह अहोभाव से भर गया और नाचने लगा।

पहले आदमी ने कहा, "तू पागल है। यहां नाचने-योग्य कुछ भी नही।"

दूसरे आदमी ने कहा, "भला मैं पागल होऊं। तुम्हारी बुद्धिमानी तुम अपने पास रखो। क्योंकि तुम्हारी बुद्धिमानी सिवाय कूड़े-करकट को, कचरों को, डबरो को और कुछ दिखाती भी तो नहीं। पागल सही, मगर मेरे पागलपन से चांद दिखा है। मेरे पागलपन मे मैंने खुले आकाश को देखा है, और मेरे पागलपन ने मुझे आनद से भर दिया है। भला मेरे शरीर को उन्होंने कारागृह मे डाल दिया हो, लेकिन चांद को देखने के क्षण मे मैं कारागृह में नही था। उस घड़ी जो लौ लग गई, चांद की रोशनी के साथ जो सम्बन्ध जुड़ गया, उस घडी मे मेरे हाथ पर जंजीरे नही थीं, तुमसे कहता हूं। और ये सींखचे मुझे घेरते नही थे। शरीर भला उन्होंने कारागृह मे डाल डाल दिया हो, मेरी आत्मा को डालने का कोई उपाय नही।

और उस दूसरे आदमी ने कहा, कि तुम अगर बाहर भी होते तो भी तुम कारागृह में होते। तुम्हारी समझदारी तुम्हारा कारागृह है। तुम्हे यह डबरा फिर भी दिखाई पडता; तुम इतने ही दुखी होते।

तुम कहां हो, इससे फर्क नही पड़ता, तुम्हारे देखने का ढंग क्या है? ढग को बदलो। "सुख सुरति सौं"—सुख को खोजो, बहुत सुख है। चारो तरफ भरा है। शायद इसीलिए दिखाई नही पड़ता। कितना मिला है! उसकी कोई सीमा है? जरा हिसाब लगाओ, हिसाब लग न पायेगा। अनंत मिला है। तुम्हारे छोटे से आंगन में कितना बरसा है!"

"जोग समाधि सुख सुरति सौं।"

वह जो समाधान की समाधि है, वह भी मिलन है परमात्मा से, सुख से, स्मरणपूर्वक करने से घटता है।

"सहजै सहजै आव"—और परमात्मा सहज-सहज चला आता है। जरा भी अड़चन नहीं होती।

ऐसा मैं तुम्हें अपने अनुभव से कहता हूं। मै गवाह हूं, जो कहता हूं। दादू के कारण नहीं कह रहा हूं। दादू की बात ठीक है। यह इसलिए कह रहा हूं, कि मैं भी वैसा ही जानता हूं—सहजै सहजै आव।

"सुख सुरति सौं सहजै सहजै आव।"

मुक्ता द्वारा महल का इहै भगति का भाव। द्वार तो खुला है, यही भक्त का भाव है। द्वार बंद नही है। परमात्मा मौजूद है, तुम्हारी आँख के सामने खड़ा है। तुम से भी तुम्हारे ज्यादा पास है। "इहै भगति का भाव"।

"ल्यौ लागी तब जाणिए, जे कबहू छूटि न जाइ।"

और जल गई तुम्हारे भीतर लौ भक्ति की, यह तभी जानना, जब वह कभी छूटे न। सातत्य से बहे धारा। रहे एक सिलसिला भीतर। कभी सूख न जाए, कभी टूट न जाए, कभी बद न हो जाए।

"ल्यौ लागी तब जाणिए, जे कबहू छूटि न जाइ।"

कुछ भी हो जाए जीवन मे। दुख आए, लेकिन लौ न छूटे, दुख मिट जाएगा। आपत्ति आए, लौ न छूटे, आपत्ति नष्ट हो जाएगी। नर्क आ जाए, लौ न छूटे, नर्क खो जाएगा।

उस लौ से कुछ भी नही है। अगर तुम उसको ही सम्हाल लो, सब सम्हल गया। और वही अगर चूक गई, तो सब चूक गया। सम्हाले रहो, जो भी तुम सम्हाल रहे हो, कुछ सार न आएगा। आखिर मे सब कचरा, कंकड़-पत्थर सिद्ध होगे।

"ल्यौ लागी तब जाणिए, जे कबहू छूटि न जाई।"

वह लौ भी क्या, जो लगे और छूटे! वह तो मन का ही खेल रहा होगा

इसे थोडा समझो। जो लगे और छूटे, वह एक विचार ही रहा होगा। विचार आते है, चले जाते है। लौ तो वही है, जो निर्विचार मे लग जाए, फिर आना-जाना नही है। फिर छूटेगा क्या? फिर तो तुम्हारा स्वभाव बन गई लौ। विचार की तरगे तो आती है, जाती है। आज है, कल नही है। लगती है, छूट जाती है। क्षण भर की रहती है, चली जाती है। विचार के लिए तो तुम एक धर्मशाला हो। वे रुकते है। धर्मशाला इसलिए, कि कुछ देते भी नही; मुफ्त रुकते है, भीड-भड़क्का किए रहते है तुम्हारे भीतर, फिर चले जाते है। तुम तो बीच का एक पडाव हो।

इसलिए अगर यह लौ भी एक यात्री को तरह ही तुम्हारे पास आए, रात भर रुके और सुबह चली जाए, तो यह लौ ही नही है। दादू कहते हैं, इसको तुम लौ मत कहना।

लौ तो वही है—"ल्यौ लागी तब जाणिए, जे कबहू छूटि न जाइ।" वह उसका लक्षण है। असली लौ का लक्षण है कि वह छूटे न।

तब इसका अर्थ हुआ, कि असली लौ तभी लग सकती है जब विचार से ज्यादा गहरे तल पर उसकी चोट हो, निर्विचार मे लगे। क्योंकि निर्विचार

आता न जाता; सदा है। निर्विचार तुम्हारी वह अवस्था है, जो आती-जाती नहीं; वह तुम्हारा स्वभाव है।

"जीवत यौ लागी रहे, मूवा मंझि समाइ।"
और जीते जी तो लगी ही रहेगी, मर कर भी नही मिटती। तुम मिट जाओगे, लौ अनन्त मे समा जाएगी।

यह बड़ी प्यारी बात है। भक्त जब खोता है, तो भक्त तो खो जाता है, उसकी लौ का क्या होता है? लौ तो सारे संसार में लग जाती है। भक्त की लौ भटकती रहती है संसार मे। और न मालूम कितने खोयों को जगाती है, न मालूम कितने अंधों की आखे खोलती है, न मालूम कितने बंद हृदयों को धड़काती है, न मालूम कितनों को प्रेम में उठाती है, प्रार्थना मे जगाती है। भक्त तो खो जाता है; पर उसकी लौ ससार मे बिखर जाती है। वह भटकती है, घूमती है।

बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, जरथुस्त्र तो खो जाते हैं, लेकिन उनकी आग---उनकी आग आज भी जलती है। तुम बुद्ध को तो न पा सकोगे अब, वह बात गई। वह बूंद तो समा गयी सागर मे। बुद्ध मे जो जली थी प्यास, बुद्ध में जो जला था ज्ञान, वह अब भी ससार मे समाया हुआ है। तुम्हारे पास अगर थोड़ी सी समझ हो, तुम उससे आज भी जुड़ सकते हो। अगर तुम्हारा प्रेम हो, तो आज भी तुम बुद्ध से उतना ही लाभ ले सकते हो, जितना बुद्ध के साथ उनके जीवन में उनके शिष्यों ने लिया होगा। लौ तो समा जाती है संसार मे, अस्तित्व मे।

"जीवत यौं लागी रहे, मूवा मझि समाइ।"
और मरने पर समष्टि मे समा जाती है।
"मन ताजी चेतन चढे, लौ की करै लगान।
सबद गुरु का ताजना, कोइ पहुंचे साध सुजान।

मन ताजी---मन है घोडा। चेतन चढे---और.और चेतन है सवार।

अभी उल्टी है हालत। घोडा चढा सवार पर। अभी तो घोडा जहा ले जाता है, वही तुम जा रहे हो। अभी तो घोड़ा जहां बताता है, वहीं तुम्हारी आंखें मुड़ जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन भागा जा रहा था अपने गधे पर। बाजार में लोगों ने रोका, "कहां जा रहे हो बड़ी तेजी मे?"

उसने कहा, "मुझसे मत पूछो, इस गधे से पूछो।"

लोगों ने कहा, "क्या? तुम जा रहे हो, गधे से क्यो पूछे?"

उसने कहा, "मैं समझ गया अनुभव से, कि मैं जहां ले जाना चाहूं, यह गधा तो वहां जाता नहीं। तो अब मैं अब जहां यह गधा ले जाता है, वहीं जाता हूं। अब यह कहां ले जा रहा है, कुछ पता नहीं। तेजी से जा रहा है, इतना पक्का है। कहीं पहुंचेगा—जरूर पहुंचेगा। जा रहा है, तो कहीं न पहुंचेगा। और जब मैं चेष्टा कर के इसको कहीं ले जाता था, तो बड़ी फजीहत होती थी। कहीं बाजार में अड़ गया, तो लोग हंसी-मजाक करते, कि गधा भी नही मानता इसकी। अब कोई हंसी मजाक नहीं करता। अब लोग समझते हैं, कि देखो। गधा बिलकुल इसके पीछे चलता है, कभी अड़ता नही। हालत बिल्कुल उल्टी है। अब अड़ने का सवाल ही नही। अब जहां यह जाता है, हम इसके साथ जाते है।"

तुमने मन के साथ चलना शुरू कर दिया है। तुम जन्मों से मन के साथ चल रहे हो। अगर कोई तुमसे पुछे, कहां जा रहे हो? तो तुम्हें भी यही कहना पड़ेगा, पूछो गधे से। तुम्हे भी पता नही, कहां जा रहे हो? मन जहां ले जाए।

मन कहां ले जाएगा, कहना मुश्किल है। मन कहीं ले जाता नहीं। अक्सर तेजी से जाता है। मगर कही ले जाता नहीं। दौड़ता है। पहुंचाता नहीं। और मन की गति वर्तुलाकार है। वह कोल्हू के बैल की तरह चलता रहता है। गोल घेरे में घूमता रहता है— वही—वहीं—फिर वही।

तुम गौर से देखो अपने मन को, तो तुम वर्तुल को पहचान लोगे। एक महीने तक अपने मन की डायरी रखो। लिखते जाओ मन क्या क्या करता है। सोमवार को सुबह क्रोध किया, फिर सोमवार को शाम बड़ी दया की, फिर दान किया, फिर बड़े नाराज हुए। फिर बड़े कठोर हो गए। सब लिखते जाओ। एक महीना तुम डायरी बनाओ, तुम बड़े हैरान होओगे, यह तो वर्तुल है। वैसा का वैसा घूमता चला जाता है। फिर वही करते हो, फिर सोमवार आ गया, फिर नाराज। अगर तुम ठीक से निरीक्षण करोगे, तो तुम चकित हो जाओगे कि तुम्हारी जिंदगी यंत्रवत् है।

जैसे स्त्रियों का मासिक धर्म ठीक अट्ठाईस दिन के बाद आ जाता है, वैसे ही तुम्हारी मन की स्थितियां भी ठीक अट्ठाईस दिन के घेरे मे घूमती रहती है। कोई फर्क नही पड़ता। मगर तुम कभी जाग कर उसको सोचते भी नहीं, देखते भी नही। इस वर्तुल में भटकने से कैसे पहुंचोगे?

मन ताजी—दादू कहते हैं, मन को घोड़ा करो। वह सवार बन कर बैठ गया है। मन पर चढ़ो—चेतन चढ़े। चढ़ाओगे कैसे चेतन को मन पर? अगर

चेतन जग जाय, तो चढ़ जाता है। जागना, चढ़ना है। अगर तुम मन को देखनेवाले बन जाओ, अगर मन के साक्षी बन जाओ, चेतन चढ़ जाता है। जब तक तुम्हारा साक्षी नहीं है मौजूद, तब तक मन चढ़ा रहेगा, तुम गुलाम रहोगे। मन चलाएगा। तुम पीछे-पीछे घसीटोगे।

"मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यौ की करे लगाम।"

और वह जो लौ है परमात्मा की, उसको बना लो लगाम। उस लौ से ही। चलाओ मन को। बड़ा प्यारा वचन है। उस लौ से ही चलाओ मन को। मन की गतिविधि में वह लौ ही समा जाए। मनुष्य लौ की मान कर चले। वही जाओ, जहां जाने से परमात्मा मिले। वही करो, जिसे करने से परमात्मा मिले। वही होओ, जो होने से परमात्मा मिले। बाकी सब असार है

"मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यो की करे लगाम।"

खाओ तो परमात्मा को पाने के लिए। पियो तो परमात्मा को पाने के लिए। जगो तो परमात्मा को पाने के लिए। सोओ तो परमात्मा को पाने के लिए---लौ की करो लगाम।

"सबद गुरु का ताजना"---और गुरु के शब्द को कोड़ा बन जाने दो---सबद गुरु का ताजना। वह तुम्हे चोट करे तो भयभीत मत हो जाओ। वह प्यार करता है, इसीलिए चोट करता है। वह तुम्हे मारे तो घबड़ाओ मत, तो शत्रुता मत पाल लो। क्योंकि वह तुम्हें मारता है सिर्फ इसीलिए, कि उसकी करुणा है, वह तुम्हे खीचे तुम्हारे रास्तों से, तो सन्देह न करो। क्योकि अगर सदेह किया तो वह खीच न पायेगा। भरोसा चाहिए। भरोसा होगा तो ही खीचे जा सकोगे।

"सबद गुरु का ताजना'। और वह जो गुरु का शब्द है, उसे कोड़ा बना लो। और जब भी मन तुम्हारा यहा वहा जाए, लगाम की न माने, लौ की न माने; लगाम की मान ले तब तो कोड़े की कोई जरूरत नहीं। अगर सब तरफ से परमात्मा पर पहुंचने का आयोजन चलता रहे, तब तो कोड़े की कोई जरूरत नहीं। लेकिन कभी-कभी लगाम की न माने, घोड़ा जिद्दी हो, जैसे कि सब घोड़े है, सभी मन है, तो फिर कोड़े की जरूरत पड़े। तो फिर तुम अपने हाथ मे निर्णय मत लो, निर्णय गुरु के हाथ मे दे दो। फिर वह जो कहे, वही करो। उस पर ही छोड़ दो। उसका अर्थ होता है, सबद गुरु का ताजना।

बुद्ध ने कहा है, कि दुनिया मे चार तरह के लोग है। एक तो उन घोड़ों जैसे है, जिनको तुम मारो, ठोको, पीटो, तब मुश्किल चलते है। और वह भी घड़ी दो घड़ी में भूल जाते हैं, फिर खड़े हो जाते हैं। दूसरी तरह के

लोग उन घोड़ों की तरह हैं, जिनको तुम मारो, तो याद रखते हैं, चलते हैं, जल्दी भूल नहीं जाते। तीसरे उन घोड़ों की तरह हैं, जिनको मारने की ज्यादा जरूरत नहीं; सिर्फ कोड़े को फटकारो, मारो मत, और घोड़ा सावधान हो जाता है, कि अब अगर चूके तो कोड़ा पड़ेगा। वह चलने लगता है। और चौथे, बुद्ध ने कहा है कि वे बड़े अनूठे लोग है, वे वे हैं, जिनको फटकारने की भी जरूरत नही पड़ती। कोड़े की छाया दिखाई पड़ जाए कि कोड़ा उठ रहा है। छाया दिखाई पड़ जाए घोड़े को, बस काफी है। घोड़ा रास्ते पर आ जाता है।

तुम इन चार घोडो मे कहा हो, ठीक से अपने को पहचान लो। और चौथा घोड़ा बनने की कोशिश करो। सिर्फ सबद गुरु का ताजना, तुम्हारे लिए कोड़ा बन जाए, तो धीरे-धीरे उसकी छाया भी तुम्हें चलाने लगेगी। उसका स्मरण तुम्हे चलाने लगेगा। याद भर आ जाएगी गुरु के शब्द की, तुम रुक जाओगे कही जाने से, कही और चलने लगोगे।

"कोई पहुंचे साध सुजान"—तो इन तीन बातों को पूरा कर लेते हैं ऐसे कुछ साधु पुरुष, जागे हुए पुरुष पहुंच पाते है।

"आदि अन्त मध एक रस टूटै नहि धागा।"
दादू एकै रहि गया, जब जाणे जागा॥"

वह तो परमात्मा का आनद है, वह सदा समस्वर है। शुरू में भी वैसा, मध्य में भी वैसा, अत मे भी वैसा। उसमें कोई परिवर्तन नही है, वह शाश्वत है। उसमे कोई रूपातरण नही है। वह बदलता नही है। वह सदा एक-रस है।

"आदि अंत मध्य एक रस टूटै नही धागा।"

जब तुम्हारा धागा इस एक-रसता से जुड जाए और टूटे न, तभी समझना मंजिल आई। उसके पहले विश्राम मत करना। उसके पहले पड़ाव बनाना पड़े, बना लेना। लेकिन जानना कि यह घर नही है। रुके है रात भर विश्राम के लिए। सुबह होगी, चल पडेंगे। जब तक ऐसी घड़ी न आ जाए कि उस एकरसता से धागा बध जाए पूरा का पूरा—टूटै नही धागा; तब तक मत समझना मझिल आ गयी।

बहुत बार पड़ाव धोखा देते है मंजिल का। जरा सा मन शांत हो जाता है, तुम सोचते हो, हो गया! जल्दी इतनी नहीं करना। जरा रस मिलने लगता है, आनद-भाव आने लगता है, सोचते हो, हो गया। इतनी जल्दी नहीं करना। ये सब पड़ाव हैं। प्रकाश दिखाई पड़ने लगा भीतर, मत सोच

लेना कि मंजिल आ गई। ये अभी भी मन के ही भीतर घट रही घटनाएँ हैं। अनुभव होने लगें अच्छे सुखद, तो भी यह मत सोच लेना, कि पहुंच गए।

क्योंकि पहुंचोगे तो तुम तभी, "दादू एकै रहि गया जब जाणे जागा। तब जानेंगे दादू कहते हैं, कि तुम जाग गए, जब एक ही रह जाय। तुम और' परमात्मा दो न रहो। अगर परमात्मा भी सामने खड़ा दिखाई पड़ जाए, तो भी समझना, कि अभी पहुंचे नहीं, फासला कायम है। अभी थोड़ी दूरी कायम है। एक ही हो जाओ। 'दादू एकै रहि गया'—अब दो न बचे। 'जब जाणे जागा'—तभी जानना कि जाग गए। तभी जानना, कि घर आ गया।

"अर्थ अनूपम आप है"—और दादू कहते हैं मत पूछो, कि उस घड़ी में कैसे 'अर्थ के फूल खिलेंगे? मत पूछो, कि कैसी अर्थ की सुवास उठेगी?

"अर्थ अनूपम आप है"। वह अर्थ अनूपम है। उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे इशारा किया जा सके। इस संसार के सभी इशारे बड़े फीके हैं। इस संसार के इशारों से भूल हो जाएगी। अर्थ अनूपम—अद्वितीय है, वह बेजोड़ है। वैसा कुछ भी नहीं है।

"अर्थ अनूपम आप है" बस, वह अपने जैसा आप है।

और अनरथ भाई—और उसके अतिरिक्त जो कुछ भी है, सब अर्थहीन है।

'दादू ऐसी जानि करि तासौ ल्यो लाइ'। और ऐसा जान कर उसमे ही लौ को लगा दो। दादू कहते हैं, मैंने ऐसा जान कर उसमे ही लौ लगा दी। दादू ऐसी जानि करि ता सौ ला लगाइ'। उसमे ही लौ लगा दी।

लौ शब्द समझ लेने जैसा है। दिये में लौ होती है। तुमने कभी ख्याल किया, कि दिये की लौ, तुम कैसा भी दिये को रखो, वह सदा ऊपर की तरफ जाती है। दिये को तिरछा रख दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। लौ तिरछी नहीं होती। दिये को तुम उल्टा भी कर दो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लौ फिर भी ऊपर की तरफ ही भागी चली जाती है। पानी का स्वभाव है नीचे की तरफ जाना, अग्नि का स्वभाव है ऊपर की तरफ जाना।

लौ का प्रतीक कहता है, तुम्हारी चेतना जब सतत ऊपर की तरफ जाने लगे, शरीर की कोई भी अवस्था हो—सुख की हो कि दुख की हो, पीड़ा की हो, जीवन की हो, कि मृत्यु की हो; जवानी हो, कि बुढ़ापा; सौंदर्य हो, कि कुरूपता; सफलता हो कि असफलता; कोई भी अवस्था मे रखा हो

दिया, इससे कोई फर्क न पड़े। लौ सदा परमात्मा की तरफ जाती रहे, ऊपर की तरफ जाती रहे।

"दादू ऐसी जानि करि तासों ल्यौ लाई।"

ये एक-एक शब्द प्यारे हैं। मैं फिर दोहरा देता हूं।

जोग समाधी सुख सुरति सों, सहजैं सहजैं आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव॥
ल्यौ लागी तब जाणिये, जे कबहूं छूटि न जाइ।
जीवत ज्यो लागी रहे मूवा मझि समाइ॥
मन ताजी चेजन चढ़े, ल्यौ की करे लगान।
सबद गुरु का ताजना, कोई पहुंचे साध सुजान॥
आदि अंत मध एक रस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा॥
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई।
दादू ऐसी जानि करि, तासौ ल्यौ लाई॥

जिज्ञासा-पूर्ति : चार

प्रवचन : आठ, दिनांक १८–७–१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना



ग प्रश्न : जब आप प्रवचन कर रहे होते हैं, उस समय यदि आपका मुख ता हूं, तो शब्द सुनाई नही देते, और शब्द सुनता हूं तो बेचैनी सी मालूम होती है। ऐसा क्यो?

शब्द का मूल्य भी कोई ज्यादा नही है। शब्द न भी सुनाई पड़े, तो चलेगा शब्द सुनाई भी पड़ जाए तो कोई लाभ नही है। मेरी तरफ देखोगे तो ध्यान बन जाएगा। अगर ध्यान ठीक बन गया, अगर तार जुड़ गया, तो शब्द सुनाई पड़ने बंद हो जाएगे। क्योकि शब्द सुनने के लिए भी एक बेचैन मन चाहिए उद्विग्न मन चाहिए, अशात मन चाहिए।

उस घड़ी में, तार-बंधी घड़ी मे नि शब्द सुनाई पड़ेगा; वही असली सत्संग है। मै क्या कहता हूं वह सुनाई पड़े, इसका बहुत मूल्य नही है। मैं क्या हूं वही सुनाई पड़ जाए, तो ही कोई मूल्य है। बोलना तो बहाना है, शब्द तो उपाय है, पहुंचना तो निःशब्द पर है। जागना तो मौन में है।

अगर ऐसा होता हो तो शब्द की बिलकुल फिक्र ही छोड़ दो; फिर मेरी तरफ देखते रहो। बंध जाने दो लौ को। भूल ही जाओ, कि मैं बोलता हूं। कोई जरूरत नहीं है याद रखने की। शब्द को इकट्ठा कर के भी कुछ पा न सकोगे। निःशब्द मे जो सुन लोगे, निःशब्द को सुन लोगे, तो सब पा लिया। मौन में ही जुड़ सकते हो मुझ से। बोलने से तो टूट पैदा होती है। बोल बोल कर तो कोई संवाद पैदा होता नही। बोलने में तो विवाद छिपा ही है। शून्य में ही संवाद है।

तो अच्छा ही हो रहा है। इससे नाहक चिंता मत लो, होने दो। अपने को बिलकुल छोड़ दो उसमें। और अगर परेशानी पैदा करोगे, चिन्ता लोगे, कि यह तो शब्द सुनाई ही नहीं पड़ता, शून्य पकड़ लेता है, और सुनने की चेष्ट

करोगे देखना बंद करके—बेचैनी मालूम होगी। बेचैनी मालूम होगी, क्योंकि महत्वपूर्ण को छोड़ कर, गैर-महत्वपूर्ण को पकड़ते हो; चेतना भीतर बेचैन होगी। हीरो को छोड कर कंकड़-पत्थर बीनते हो, बेचैनी स्वाभाविक है। उचित ही हो रहा है।

सत्संग का अर्थ है : गुरु के पास मौन में बैठ जाना।

मैं बोलता हूं इसी जगह लाने को, कि किसी दिन तुम मौन मे बैठने योग्य हो जाओगे। बोलना लक्ष्य नही है। तुम्हे समझाने को मेरे पास कुछ भी नही है। समझाने को कुछ संसार मे है भी नही। सब शब्द है, कोरे शब्द है। कितने ही सौंदर्य से उन्हें जमा दो, पानी के बबूलो पर आए हुए इद्रधनुष है। अभी है, अभी मिट जाएगे। उन्हे सपदा मत समझ लेना। सपदा तो तुम्हारे भीतर है। जो सुनने में ही दिखाई पड़ेगी, जब मन की सब तरगे बद हो जाएगी।

तो देखो। मन भर कर देखो। इसलिए तो गुरु के पास जब हम जाते है तो उस जाने की घटना को हम दर्शन कहते है। दर्शन का मतलब होता है, देखेगे गुरु को। उसे हम श्रवण नही कहते। सुनेगे गुरु को, ऐसा नही कहते; देखेगे। मन भर कर देखेगे। आकण्ठ भर जाएगे, इतना देखेगे। बाढ़ आ जाए देखने की, इतना देखेगे।

उस देखने मे ही वह चिनगारी सुलगेगी, जिसको दादू लौ कहते है जगेगी लौ। गुरु की भागती हुई अग्नि, तुम्हारी राख मे दबी अग्नि को भी पुकार लेगी। गुरु की ऊपर जाती हुई अग्नि तुम्हारी अग्नि को भी ऊपर जाने के लिए दिशा-निर्देश बन जाएगी। गहराई गहराई को पुकारेगी, अन्तस् अन्तस् को पुकारेगा।

शब्द तो दीवाल बन जाते है। शब्दो की दीवाल बन जाएगी। तुम मुझे सुन लोगे, तुम मुझे समझ भी लोगे और तुम मुझसे चूकते भी रहोगे। यह तो मजबूरी है, कि तुम अभी शून्य नही समझ पाते, इसलिए मुझे शब्द बोलना पड़ रहा है। जिस दिन तुम शून्य समझने लगोगे, शब्द का आयोजन व्यर्थ है।

और अगर ऐसा हो रहा है कि मुझे देखते-देखते सुनना बंद हो जाता है, अहोभागी हो। अनुगृहीत हो जाओ। धन्यवाद दो परमात्मा को। सुनने की कोई जरूरत नही। देखो, जी भर के देखो। दर्शन की ऊर्जा को बहने दो।

उसी घड़ी बंध जाओगे गुरु के साथ। तुम्हारी राख झड़ जाएगी। आग तो तुम्हारे भीतर भी छिपी है; राख जम गई है। मेरे शब्द इकट्ठे कर लोगे, और राख जम जायगी। क्या होगा? ऐसे ही तुम काफी ज्ञानी हो। मेरे शब्दों का संग्रह तुम्हें और ज्ञानी बना देगा।

और ध्यान रखो, परमात्मा को उपलब्ध करना कोई परिणाम, क्वान्टिटी की बात नहीं है, कि कितना तुम जानते हो। परमात्मा को उपलब्ध करना गुण-रूपांतरण की बात है, क्वालिटी की बात है। तुम सौ तथ्य जानते हो, कि हजार कि करोड़, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम्हारे होने का गुण बदल जाए, तो तुम परमात्मा को जानते हो। पाण्डित्य से कोई कभी जानता नहीं।

मैंने सुना है, स्वर्ग के द्वार पर ऐसा एक दिन हुआ कि दो सीधे-सादे साधु—सरलचित्त—द्वार पर दस्तक दिए, तभी एक पंडित ने भी द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुला। पण्डित के लिए तो बड़ा स्वागत समारंभ किया गया। मखमली पायदान बिछाए गए, बाजे बजे, फूलों की वर्षा की गई। उन दो साधुओं के लिए कोई खास स्वागत-समारोह न हुआ। लगा उन्हे, कि उनकी उपेक्षा की जा रही है। वे थोड़े हैरान हुए।

जब समारोह पूरा हो गया तब उन्होंने द्वारपाल को पूछा, बात हमारी समझ में न आई। हमने तो सदा सुना था, कि साधुता कि गरिमा है वहां। यहां भी साधुता की कोई गरिमा नही मालूम होती। हमने तो सुना था, कि सरल का स्वीकार है, यहां भी सरल का कोई स्वीकार नही। हमने तो सुना था, जीसस के वचन सुने थे, कि जो दरिद्र हो रहे अपने भीतर वही परमात्मा से समृद्ध हो जाएगे। हम दरिद्र हो कर आए हैं, लेकिन लगता है, यहां भी हमारी उपेक्षा है।

उस द्वारपाल ने कहा, कि तुम व्यर्थ ही चिंता में मत पड़ो। तुम जैसे साधु-पुरुष तो रोज ही आते हैं, यह पण्डित पहली दफा आया है। इसका स्वागत समारंभ करना उचित है। सरलचित्त व्यक्ति तो रोज ही स्वर्ग आते रहते है। यह उनका घर है। अपने ही घर कोई आता है, क्या स्वागत समारंभ करना होता है? मगर यह पण्डित पहली दफा आया है। ऐसा सदियों में कभी घटता है। इसका स्वागत समारंभ उचित है। तुम नाहक चिंता मत लो।

तुम कितने ही पण्डित हो जाओ, तुम नही पहुंचोगे। सुनने से नहीं, स्मृति के भर लेने से नहीं, आंख के खुलने से। इसीलिए तो हमने भारत में तत्व-विद्या को दर्शन-शास्त्र कहा है। सारी दुनिया उसे फिलासफी कहती है, फलसफा कहती है, और दूसरे नाम हैं, हमने उसे "दर्शन" कहा है। क्योंकि हमने यह जाना है, कि केवल सोचने-विचारने से कोई सत्य उपलब्ध नहीं होता, आंख के खुलने से उपलब्ध होता है। इसलिए ज्ञानियों को हमने द्रष्टा कहा है, देखनेवाला कहा है। सोचनेवाला नहीं कहा, विचारक नहीं कहा, द्रष्टा कहा है। उन्होंने देखा है सत्य को।

तो अगर तुम भरपूर आंख मुझे देखते हो, इससे ज्यादा शुभ और कुछ भी नही है। वही तुम कर पाओ, पर्याप्त है। सत्संग हुआ। तो मैं जो कह रहा हूं, वह भला तुम्हारे भीतर न पहुंचे–जरूरत भी नहीं है—मैं तुम्हारे भीतर पहुंचना शुरू हो जाऊंगा। मेरे शब्दों पर बहुत ध्यान मत दो, मेरे निःशब्द को सुनो। वहीं सत्य का संगीत है।

दूसरा प्रश्न : महानिर्वाण को उपलब्ध हो जाने के बाद भी, ज्ञानी और गुरुजन समष्टि में मिल कर किस प्रकार हमारी सहायता करते हैं? इसे अधिक स्पष्ट करें।

सहायता करते हैं, ऐसा कहना ठीक नही। सहायता होती है। करनेवाला तो बचता नही। नदी तुम्हारी प्यास बुझाती है, ऐसा कहना ठीक नही, नदी तो बहती है। तुम अगर पी लो जल, प्यास बुझ जाती है। अगर नदी का होना प्यास बुझाता होता, तब तो तुम्हें पीने की भी जरूरत न थी, नदी ही चेष्टा करती। नदी तो निष्क्रिय बही चली जाती है। नदी तो अपने तई हुई चली जाती है; तुम किनारे खड़े रहो जन्मों-जन्मों तक, तो भी प्यास न बुझेगी। झुको, भरो अंजुली में, पियो, प्यास बुझ जायेगी।

ज्ञानीजन समष्टि में लीन होने के बाद ही या समष्टि मे लीन होने के पहले तुम्हारी सहायता नही करते। क्योंकि कर्ता का भाव ही जब खो जाता है तभी तो ज्ञान का जन्म होता है। जब तक कर्ता का भाव है, तब तक तो कोई ज्ञानी नही, अज्ञानी है।

मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर रहा हूं, और न तुम्हारी कोई सेवा कर रहा हूं। कर नहीं सकता हूं। मैं सिर्फ यहा हू। तुम अपनी अंजुलि भर लो। तुम्हारी झोली में जगह हो, तो भर लो। तुम्हारे हृदय में जगह हो, तो रख लो। तुम्हारा कण्ठ प्यासा हो, तो पी लो। ज्ञानी की सिर्फ मौजूदगी, निष्क्रिय मौजूदगी पर्याप्त है। करने का ऊहापोह वहां नही है, न करने की आपाधापी है।

इसलिए ज्ञानी चिंतित थोड़े ही होता है। उसने तुम्हें जो कहा, वह तुमने अगर नही किया, तो परेशान थोड़े ही होता है। अगर कर्ता भीतर छिपा हो, तो परेशानी होगी। तुमने नही माना, तो वह आग्रह करेगा, जबरदस्ती करेगा अनशन करेगा कि मेरी मानो, नही तो मैं उपवास करूंगा, अपने को मार डालूंगा अगर मेरी न मानी...।

सत्याग्रह शब्द बिलकुल गलत है। सत्य का कोई आग्रह होता ही नहीं। सब आग्रह असत्य के हैं। आग्रह मात्र ही असत्य है। सत्य की तो सिर्फ मौजूदगी होती है, आग्रह क्या है? सत्य तो बिलकुल निराग्रह है। सत्य तो मौजूद हो

जाता है, जिसने लेना हो, ले ले। उसका धन्यवाद, जो ले ले। जिसे न लेना हो, न ले, उसका भी धन्यवाद, जो न ले। सत्य को कोई चिंता नहीं है कि लिया जाए, न लिया जाए; हो, न हो।

सत्य बड़ा तटस्थ है। करुणा की कमी नहीं है, लेकिन करुणा निष्क्रिय है। नदी बही जाती है, अनंत जल लिए बही जाती है, लेकिन हमलावर नही है, आक्रमक नही है। किसी के कंठ पर हमला नहीं करती। किसी ने अगर यही तय किया है कि प्यासे रहना है, यह उसकी स्वतंत्रता है। वह हकदार है प्यासा रहने का।

संसार बड़ा बुरा होगा, बड़ा बुरा होता, अगर तुम प्यासे रहने के भी हक्कदार न होते। संसार महागुलामी होती, अगर तुम दुखी होने के भी हकदार न होते। तुम्हें सुखी भी मजबूरी मे किया जा सकता, तो मोक्ष हो ही नही सकता था फिर। तुम स्वतंत्र हो; दुखी होना चाहो, दुखी। तुम स्वतंत्र हो; सुखी होना चाहो, सुखी। आख खोलो तो खोल लो। बंद रखो, तो बंद रखो। सूरज का कुछ लेना-देना नही। खोलोगे, तो सूरज द्वार पर खड़ा है। न खोलोगे, तो सूरज कोई अपमान अनुभव नही कर रहा है।

जीते जी, या शरीर के छूट जाने पर ज्ञान एक निष्क्रिय मौजूदगी है।

इसको लाओत्से ने "वुईवेई" कहा है। "वुईवेई" का अर्थ होता है, बिना किए करना। यह जगत का सबसे रहस्यपूर्ण सूत्र है। ज्ञानी कुछ करता नही, होता है। ज्ञानी बिना किए करता है। और लाओत्से कहता है कि जो कर कर के नही हो सकता, वह बिना किए हो जाता है। भूल कर भी, किसी के ऊपर शुभ लादने की कोशिश मत करना, अन्यथा तुम्ही जिम्मेदार होओगे उसे अशुभ की तरफ ले जाने के।

ऐसा रोज होता है। अच्छे घरों मे बुरे बच्चे पैदा होते है। साधु बाप बेटे को असाधु बना देता है। चेष्टा करता है साधु बनाने की। उसी चेष्टा मे बेटा असाधु हो जाता है। और बाप सोचता है, कि शायद मेरी चेष्टा पूरी नहीं थी। शायद मुझे जितनी चेष्टा करनी थी उतनी नही कर पाया इसी-लिए यह बेटा बिगड़ गया। बात बिलकुल उल्टी है। तुम बिलकुल चेष्टा न करते तो तुम्हारी कृपा होती। तुमने चेष्टा की, उससे ही प्रतिरोध पैदा होता है।

अगर कोई तुम्हे बदलना चाहे, तो न बदलने की जिद पैदा होती है। अगर तुम्हें स्वच्छ बनाना चाहे, तो गदे होने का आग्रह पैदा होता है। अगर कोई तुम्हें मार्ग पर ले जाना चाहे, तो भटकने में रस आता है। क्यो? क्योंकि अहंकार को स्वतंत्रता चाहिए, और इतनी भी स्वतंत्रता नहीं!

जो लोग जानते हैं, बिना किए बदलते हैं। उनके पास बदलाहट घटती है। ऐसे ही घटती है, जैसे चुम्बक के पास लोहकण खिंचे चले आते हैं। कोई चुंबक खींचता थोड़े ही है! लोह-कण खिंचते हैं। कोई चुंबक आयोजन थोड़े ही करता है, जाल थोड़े ही फेंकता है। चुम्बक का तो एक क्षेत्र होता है। चुम्बक की एक परिधि होती है, जहां उसकी मौजूदगी होती है, तुम उसकी प्रभाव-परिधि में प्रविष्ट हो गए कि तुम खिंचने लगते हो, कोई खिंचता नहीं।

ज्ञानी तो एक चुंबकीय क्षेत्र है। उसके पास भर आने की तुम हिम्मत जुटा लेना, शेष होना शुरू हो जाएगा। इसीलिए तो ज्ञानी के पास आने को लोग डरते हैं। हजार उपाय खोजते हैं न आने के। हजार बहाने खोजते हैं न आने के। हजार तरह के तर्क मन में खड़े कर लेते हैं न आने के। हजार तरह से अपने को समझा लेते हैं कि जाने की कोई जरूरत नहीं।

पण्डित के पास जाने से कोई भी नहीं डरता, क्योंकि पण्डित कुछ कर नहीं सकता। अब यह बड़े मजे की बात है, कि पण्डित करना चाहता है और कर नहीं सकता। ज्ञानी करते नहीं, और कर जाते हैं।

सत्संग का बड़ा खतरा है। उससे तुम अछूते न लौटोगे, तुम रंग ही जाओगे। तुम बिना रंगे न लौटोगे; वह असंभव है। लेकिन ज्ञानी कुछ करता है यह मत सोचना। हालांकि तुम्हें लगेगा, बहुत कुछ कर रहा है। तुम पर हो रहा है, इसलिए तुम्हें प्रतीति होती है, कि बहुत कुछ कर रहा है। तुम्हारी प्रतीति तुम्हारे तईं ठीक है, लेकिन ज्ञानी कुछ करता नहीं।

बुद्ध का अंतिम क्षण जब करीब आया, तो आनंद ने पूछा, कि अब हमारा क्या होगा? अब तक आप थे, सहारा था; अब तक आप थे, भरोसा था; अब तक आप थे आशा थी, कि आप कर रहे हैं, हो जाएगा। अब क्या होगा?

बुद्ध ने कहा, मैं था, तब भी मैं कुछ कर नहीं रहा था। तुम्हें भ्रांति थी। और इसलिए परेशान मत होओ। मैं नहीं रहूंगा तब भी जो हो रहा था, जारी रहेगा। अगर मैं कुछ कर रहा था तो मरने के बाद बंद हो जाएगा। लेकिन मैं कुछ कर ही न रहा था। कुछ हो रहा था। उससे मृत्यु का कुछ लेना-देना नहीं, वह जारी रहेगा। अगर तुम जानते हो, कि कैसे तुम हृदय को मेरी तरफ खोलो, तो वह सदा-सदा जारी रहेगा।

ज्ञानी पुरुष जैसा दादू कहते हैं, लीन हो जाते हैं, उनकी लौ सारे अस्तित्व पर छा जाती है। उनकी लौ फिर तुम्हें खींचने लगती है। कुछ करती नहीं,

अचानक किन्ही क्षणो मे जब तुम सवेदनशील होते हो, ग्राहक क्षण होता है कोई, कोई लौ तुम्हे पकड़ लेती है, उतर आती है। वह हमेशा मौजूद थी। जितने ज्ञानी ससार में हुए है, उनकी किरणे मौजूद हैं। तुम जिसके प्रति भी संवेदनशील होते हो, उसी की किरण तुम पर काम करना शुरू कर देती है। कहना ठीक नही, कि काम करना शुरू कर देती है, काम शुरू हो जाता है।

इसलिए तो ऐसा होता है कि कृष्ण का भक्त ध्यान मे कृष्ण को देखने लगता है। क्राइस्ट का भक्त ध्यान मे क्राइस्ट को देखने लगता है। दोनों एक ही कमरे मे बैठे हो, दोनो ध्यान मे बैठे हो, एक क्राइस्ट को देखता है, एक कृष्ण को देखता है। दोनो की सवेदनशीलता दो धाराओ की तरफ है। कृष्ण की हवा है, क्राइस्ट की हवा है, तुम जिसके लिए सवेदनशील हो, वही हवा तुम्हारे तरफ बहनी शुरू हो जाती है। तुमने जिसके लिए हृदय मे गड्ढा बना लिया है वही तुम्हारे गड्ढे को भरने लगता है।

अनन्त काल तक ज्ञानी का प्रभाव शेष रहता है। उसका प्रभाव कभी मिटता नही क्योकि वह उसका प्रभाव ही नही है, वह परमात्मा का प्रभाव है। अगर वह ज्ञानी का प्रभाव होता तो कभी न कभी मिट जाता। लेकिन वह शाश्वत सत्य का प्रभाव है, वह कभी भी नही मिटता।

तुम थोडे से खुलो। और तुम्हारे चारो और तरगे मौजूद है जो तुम्हे उठा ले आकाश मे, जो तुम्हारे लिए नाव बन जाए और ले चले भवसागर के पार। चारो तरफ हाथ मोजूद है जो तुम्हारे हाथ मे आ जाए, तो तुम्हे सहारा मिल जाए। मगर वे हाथ झपट्टा दे कर तुम्हारे हाथ को न पकडेगे। तुम्हे ही उन हाथो को टटोलना पडेगा। वे आक्रमक नही है, वे मौजूद है। वे प्रतीक्षा कर रहे है। लेकिन आक्रमक नही है। ज्ञान अनाक्रमक है। ज्ञान का कोई आग्रह नही है।

इसे थोडा समझ लो। ज्ञान का निमत्रण तो है, आमत्रण तो है, आग्रह नही है। आक्रमण नही है। जिसने सुन लिया आमत्रण, वह जगत के अनत स्रोतो से जलधार लेने लगता है। जिसने नही सुना आमत्रण, उसके पास ही जलधाराए मौजूद होती है। ओर वह प्यासा पडा रहता है। तुम किनारे पर ही खडे-खडे प्यासे मरते हो, जहा सब मौजूद था।

लेकिन कोई करनेवाला नही है। करना तुम्हे होगा। बुद्ध ने कहा है, बुद्धपुरुष तो केवल इशारा करते है, चलना तुम्हे होगा।

तीसरा प्रश्न : जन्मो-जन्मो से हमने दुख का अनुभव जाना है। लेकिन किस कारण हमें हमारी भूल नही दिख पाती?

पहली तो बात; जन्मों-जन्मों की बात ही तुमने सुनी है, जानी नहीं यह तुम्हारा बोध नही है कि तुम जन्मों-जन्मो से यहा हो।

और जन्मों की तो तुम बात ही छोड़ो, इस जन्म का भी तुम्हे बोध है? तुम जब पैदा हुए थे, तुम्हे कुछ याद है? कुछ भी तो पता नही। वह भी लोग कहते है, कि यह तुम्हारी मा है, ये तुम्हारे पिता है। तुम फला फलां तारीख को फला फला समय पैदा हुए थे। ज्योतिषि सर्टिफिकेट देते है, या म्यूनिसिपल कारपॅरेशन के रजिस्टर मे लिखा है। बाकी तुम्हे कुछ याद है?

तुम नौ महीने इस जन्म मे गर्भ मे रहे हो, तुम्हे उन नौ महीने की कुछ याद है? तुम पैदा हुए हो उसकी तुम्हे कुछ याद है? पीछे लौटोगे, तो बहुत पीछे गये तो बस, चार साल की उम्र तक जा पाओगे। उसके बाद फिर स्मृति तिरोहित हो जाती है। फिर कुछ याद नही आता, फिर सब धुंधला है, फिर अंधकार है। कभी कोई फुटकर एकाध दो याददाश्ते मालूम होती है, वे भी चार पाच साल की उम्र की आखिरी—उसके बाद फिर अंधेरी रात है। और बात तुम करते हो जन्मो-जन्मो की।

इस जन्म का भी तुम्हे पूरा पता नही है। इस जन्म मे भी तुम पैदा हुए कि नही या यह भी तुम्हारा अनुभव नहीं है। यह भी लोग कहते है। यह, भी सुनी-सुनाई बात है। तुम्हारा जन्म भी, तुम्हारे प्रमाण पर नही, वह भी लोगो के प्रमाण से है। अब और इससे ज्यादा झूठा जीवन और क्या होगा'! अपने जीवन का ही पता नही। यदि समाज तय कर ले धोखा देने का, तो तुम कभी अपने असली पिता या माँ को न खोज पाओगे। और कई बार आदमी, जो पिता नही है, उसे पिता माने चला जाता है।

मैने सुना है इक्कीसवी सदी मे सौ वर्ष भविष्य मे कम्पूटर बन चुके। उनसे तुम कुछ भी पूछो वे जवाब दे देते है। एक आदमी थोड़ा सदिग्ध है। उसने जा कर कपूटर को पूछा, कि मेरे पिता इस समय क्या कर रहे है? तो कपूटर ने कहा, कि इस समय मछलिया मार रहा है। वह आदमी हँसने लगा, उसने कहा, सरासर झूठ। मेरे पिता को तो मै अभी घर बिस्तर पर सोया हुआ छोड कर आया हू। कम्पूटर ने कहा, वह तुम्हारे पिता नही है, जिनको तुम घर पर छोड आये हो। उसने कहा, कि तुम्हारे पिता तो समुद्र के किनारे मछलिया मार रहे है।

पिता होने तक का कुछ पक्का भरोसा नही है, कि जिनको तुम पिता मानते हो, वे तुम्हारे पिता है जिनको तुम मा मानते हो, वह तुम्हारी माँ हो। तुम जन्मो-जन्मो की बात कर रहे हो? तुमने सुन लिया। सुन-सुन कर धीरे-धीरे, तुम इतनी बार सुन चुके हो यह बात, कि तुम यह भूल ही गए, कि

तुम्हारा यह बोध नहीं है। इस देश में तो जन्मों-जन्मों की बात इतने काल से चल रही है, और तुमने इतनी बार सुनी है, कि तुम्हारे भीतर लकीर खिंच गई है।

ध्यान रखो, जितना अपना बोध हो, उससे आगे मत जाओ; अन्यथा झूठ शुरू हो जाता है। महावीर, बुद्ध कहते हैं, कि और भी जन्म थे क्योंकि उन्हें उन जन्मों की याद आ गई है। तुम मत कहो। तुम अपनी सीमा में रहो, मैं नहीं कहता, कि तुम यह कहो, कि नही होते। क्योंकि वह भी सीमा के बाहर जाना होगा। होते हैं, नही होते, तुम्हे कुछ पता नही है। तुम कृपा करके ठहरो उतने ही तक जहा तक तुम्हे याद है। और चेष्टा करो कि किस भांति याद गहरी हो सके। और कैसे तुम्हे स्मृति की शृंखला का बोध हो सके, कैसे तुम्हारी जीवनधारा प्रकाशित हो सके और तुम पीछे की तरफ जान सको।

सिद्धान्तों को चुपचाप स्वीकार कर लेने से कुछ हल नही होता, उनसे और उलझनें खड़ी होती है। अब तुम पूछते हो, जन्मों-जन्मो से हमने दुख का अनुभव किया है। पहली तो बात जन्मो-जन्मो की झूठ। वह कभी बुद्ध, किसी महावीर को होता है स्मरण। तुम्हे है नही स्मरण।

दूसरी बात, तुम कहते हो, "हमने दुख को जाना है," वह भी गलत। दुख जब चला जाता है, तब तुम जान पाते हो। जब होता है, तब तुम नही जान पाते। तुम्हारा सब जानना जब समय जा चुका होता है तब होता है।

समझो, क्रोध आया, तब तुम जानते हो, क्रोध आया? नही, जब तुमने किसी का सिर तोड़ दिया और तुम्हारा किसी ने सिर तोड़ दिया, तुम बैठे हो अपने कमरे मे पट्टियां बाधे; और सोच रहे हो, कि क्रोध आया, क्रोध बुरा है, बड़ा दुखदायी है, अब कभी न करूंगा। इसको तुम अनुभव कहते हो। लेकिन जब क्रोध आया था जिस क्षण में, उस समय तुम होश मे थे, कि क्रोध को तुमने सीधा देख लिया हो आमने सामने? अगर देख ही लेते तो ये सिर पर पट्टिया न बंधती। अगर देख ही लेते तो पश्चात्ताप का समय ही न आता। जो साक्षात्कार कर लेता है क्षण का, वह कभी भी पछताता नहीं। उसके जीवन में प्रायश्चित्त जैसी बात ही नहीं होती।

तुमने क्रोध को खडे देखा है उस क्षण में जब क्रोध सामने खड़ा होता है? नही, तब तो तुम बेहोश होते हो; तब तो तुम क्रोध के नशे में होते हो, तब तक क्रोध के जहर में दबे होते हो; तब तो तुम जो करते हो, वह अपने बस से नहीं करते हो, क्रोध के प्रभाव में कर रहे हो।

हां, जब क्रोध जा चुका, आंधी जा चुकी, झाड़-झंखाड़ उखाड़ गई, मकान का छप्पर, उड़ा गई, दीवालें तोड़ गई, तब तुम बैठे रो रहे हो। तुमने जो भी जाना है, वह क्षण में जाना है, या क्षण के बीत जाने पर जानते हो? इसे थोड़ा समझने की कोशिश करो।

तुम्हारा सब जानना अतीत का है। वर्तमान से तुम्हारा संबंध ही नहीं जुड़ता। जुड़ जाए तो तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ। तो कुछ करने को नही है, फिर कोई दुख नही है। तुम्हें पता ही तब चलता है, जब बात जा चुकी होती है। तुम सदा स्टेशन पर पहुंचते हो, जब ट्रेन छूट गई होती है।

एक मित्र मेरे पास कुछ दिन पहले पूछते थे, कि मुझे एक सपना बार-बार आता है, कि मै ट्रेन पकड़ने जा रहा हूं और ट्रेन छूट जाती है; इसका मत-लब क्या है? मतलब साफ है, कि ट्रेन रोज-रोज छूट रही है, हर घड़ी छूट रही है, हर क्षण घट रही है। तुम जब भी पहुंचते हो, पाते हो, स्टेशन खाली है। कुली बताते हैं, जा चुकी।

इस तरह के सपने बहुत लोग देखते है। यह सपना कोई एक-आध आदमी देखता है, ऐसा नहीं। चूक जाने के सपने बहुत लोग देखते है। वे सपने तुम्हारे यथार्थ की छाया है। वे प्रतिबिंब है, जो तुम्हारे जीवन की कहानी कह रहे हैं, कि तुम हमेशा देर से पहुंचते हो। क्षण जा चुका होता है, तब आप मौजूद होते है। जब क्षण होता है, तब आप मौजूद नही होते।

मौजूद हो जाना क्षण मे; तभी तुम जान सकोगे। अन्यथा तुम्हारे जानने का क्या मूल्य है? तुम्हारा जानना भी झूठा है। क्योंकि जो बीत चुका, उसको तुम कैसे जानोगे? तुम उसे वैसा तो जान ही नहीं सकते, जैसा वह था। वह अब है ही नहीं। उसकी भनक रह गई है।

ऐसा ही समझो, कि रात तुम सपना देखते हो, सुबह जाग कर जानते हो, कि सपना देखा; लेकिन तब तक सपने के बहुत से खण्ड तो भूल ही जाते हैं। तब तक सपने की बहुत सी बातें बदल ही जाती है। रंग बदल जाते हैं। और वह भी तुम जागने के बाद कोई मिनट दो मिनट तक तुम्हे याद रहती है, फिर भूल ही जाती है। लेकिन जब सपना चलता होता है, तब तुमने सपना जाना है? अगर जान लो, तो सपना टूट जाए, जागरण आ जाए। बुद्धत्व कुछ और नहीं है, इस सोयेपन से जागने का नाम है। क्षण की नाव को वहीं से पकड़ लेना है, जब वह चूकती है।

हमेशा चूकते रहते हो और फिर भी तुम कहते हो, कि जाना है दुख का अनुभव। वह भी जाना नहीं है, वह भी सुना है। बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख

है, जरा दुख है, जन्म दुख है, मरण दुख है, सब दुख है। और बुद्धपुरुष बड़े प्रभावी हैं। स्वभावतः उनके एक-एक वचन में बड़ी गरिमा है, गौरव है। उनके एक-एक वचन में बड़ा बल है; प्रभाव है। उनके वचन की चोट तुम्हारे भीतर पड़ती है, प्रतिध्वनि होती है—तुम सोचते हो यह तुम्हारी आवाज है। यह ऐसे ही है, जैसे पहाड़ों मे तुम जाओ, और जोर से आवाज लगाओ, और घाटियों में आवाज गूंजे, घाटिया सोचती हों यह उनकी आवाज है।

तुम घाटियो की तरह हो। बुद्धपुरुषों के वचन तुममें गूंजते चले जाते हैं। तुम धीरे-धीरे भूल ही जाते हो कि ये वचन हमारे नही; सुने हैं। ध्यान रखो, दुख का अनुभव भी तुमने जाना नहीं है। अगर जान ही लेते तो दुख बंद हो जाता। ज्ञान का दिया जल गया हो और दुख बच रहे, तो एसा ही हुआ, कि घर मे तुमने रोशनी कर ली और अंधेरा जाता ही नहीं।

ऐसा कहीं होता है, कि तुमने बिजली जला ली, दिये जला लिए और अंधेरा बना ही हुआ है, अंधेरा कहता है हम जाएंगे ही नही; अंधेरा हठयोग साध कर वही बैठा हुआ है? न; तुमने दिया जलाया, अंधेरा गया। वह जलाते ही चला जाता है। अगर तुम जान लो दुख को, तो दुख गया। दुख अंधेरा है, जानना दिया है।

तुम कहते हो, जन्मों-जन्मो से हमने दुख का अनुभव जाना है, लेकिन किस कारण हमे हमारी भूल नही दिख पाती? अगर जाना होता तो दिख जाती। भूल तुम वहीं कर रहे हो। अगर जान लो, तो भूल बिलकुल सीधी है। क्या है भूल? इतनी सीधी-साफ है—

दुख में बार-बार गिरने का अर्थ यही है, कि तुम अब तक यह नही जान पाए, कि दुख पहले सुख का आश्वासन देता है। और आश्वासन मे तुम फंस जाते हो। आश्वासन हर बार गलत सिद्ध होता है। हर बार सुख की चाह से जाते हो और दुख पाते हो। मैं निरंतर कहता हू, कि नर्क के द्वार पर स्वर्ग की तख्ती लगी है। शैतान मे इतनी अक्ल तो है ही, कि अगर नर्क की तख्ती लगाएगा, तो कौन भीतर प्रवेश करेगा? उसने स्वर्ग की तख्ती लगा रखी है। लोग प्रवेश कर जाते हैं।

ऐसा हुआ कि एक राजनेता मरा। होशियार आदमी था, जिंदगी के दांव-पेच जानता था। जिंदगी भर दिल्ली में बिताई थी। मरा, तो उसने जा कर कहा, कि मैं दोनों देख लेना चाहता हूं; स्वर्ग भी और नर्क भी। तभी मैं चुनाव करूंगा, कि कहां मुझे रहना है। द्वारपाल ने कहा, आपकी मर्जी। आप स्वर्ग देख लें, नरक देख लें।

स्वर्ग दिखाया; रजनेता को कुछ जंचा नहीं। दिल्ली में जो जिया हो, उसे स्वर्ग बिलकुल उदास मालूम पड़ेगा। दिल्ली की उत्तेजना, घेराव, आंदोलन, सभाएं, नेताओं की टकराहट, सब तरह का उपद्रव! दिल्ली तो एक पागल बाजार है। सारे मुल्क के पागल वहां इकट्ठे हैं। जो वहां रह लिया एक दफा, पागलखाने मे जो रह लिया, उसे मंदिर जंचेगा नहीं। उसे मंदिर मे ऐसा सन्नाटा मालूम पड़ेगा, कि जी टूटता है, उदासी मालूम होती है। यह भी कोई जगह है! न कोई शोरगुल न कुछ।

सब जगह घूमा, फिर उसने पूछा, "अखबार वगैरह निकलते हैं?"

"यहां कोई घटना ही नही घटती। लोग अपनी-अपनी सिद्धशिला पर आंख बंद किये बैठे रहते है। न कोई झगड़ा, न झांसा, न कोई किसी का सिर, तोड़ता, न कोई हत्या, न कोई किसी की पत्नी को लेकर भाग जाता कुछ यहां होता ही नही। अखबार निकालो भी, तो क्या छापो? यहां कोई खबर ही नही है। अखबार वगैरह कुछ नही निकलता।"

उसने कहा, "बेकार है। जब अखबार ही नहीं निकलता, जिंदगी क्या? जब सुबह से अखबार ही न हो पढ़ने को, तो यहां करेंगे क्या? ये लोग ऐसे बैठे रहते है झाडों के नीचे? ऊब नही जाते होंगे? तो मैं नर्क भी देख लेना चाहता हूं, फिर तय करूंगा।"

तो वह नर्क देखने गया। बडा स्वागत किया गया उसका। बैंड-बाजे बजे, सुन्दर स्त्रियां नाची, शराब ढाली गई। वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने कहा, दुनिया में गलत खबरें फैलाई जा रही हैं, कि स्वर्ग मे बड़ा आनंद है और नर्क में बड़ा दुख है। और सदियों से ये पण्डित, पुरोहित, और मंदिरों के पुजारी धोखा दे रहे है लोगों को। स्वर्ग तो बिलकुल नर्क जैसा है और यह नर्क तो बिलकुल स्वर्ग जैसा है। कही कोई भूल-चूक हो रही है।

शैतान ने कहा, कि मामला ऐसा है, कि प्रचार के सब साधन परमात्मा के हाथ मे है। हमारी कोई सुनता ही नही। हम लोगों को समझाते है, तो भी वे कहते हैं, शैतान, तू दूर रह! परमात्मा ने सब को भड़काया हुआ है, एक-पक्षीय प्रचार चल रहा है। हमारा न कोई मंदिर है। न कोई बाइबल, न कुरान, न हमारा कोई संत है जो हमारा प्रचार करे। यह सब विज्ञापन का करिश्मा है। आप तो जानते ही हैं, कि विज्ञापन से क्या नहीं हो सकता!

उस राजनेता ने कहा, कि बात ठीक है। तो मैं तो यहीं रहने का चुनाव करता हूं। उसने कह दिया स्वर्ग के द्वारपाल को कि तू वापिस जा। मैं ने निर्णय कर लिया, कि मैं यही रहूंगा।

द्वार बंद हुआ, और जैसे ही वह लौटा, देख कर दंग रह गया। वहां तो दृश्य बदल गया। वे जो बैंड-बाजे और खूबसूरत स्त्रियां वहां थीं, वे अब नहीं हैं। नर-कंकाल नाच रहे हैं। और बड़ी आग जल रही है और कड़ाहे चढ़ाए जा रहे हैं, और लोग फेंके जा रहे हैं। शैतान की तरफ देखा, तो प्राण छूट गए। शैतान उसकी गरदन दबा रहा है, छाती पर चढ़ा है। बोला, यह क्या मामला है? अभी तक तो सब ठीक था। उसने कहा, अगर शुरू में ठीक न हो, तो यहां कोई आएगा ही कैसे? वह जो दृश्य दिखाया, वह तो टूरिस्टों के लिए था। अब यह असली नर्क शुरू होता है। इतनी सुविधा हम भी देते हैं चुनाव की।

नर्क के द्वार पर स्वर्ग लिखा है। हर दुख के द्वार पर सुख लिखा है। कितनी बार तुम सुख की आकांक्षा में जाते हो और दुख में उलझ जाते हो। जाते हो आशा में, निराशा हाथ लगती है। जाते हो पाने, सिर्फ खोते हो। सपना बड़ा मालूम पड़ता है शुरुआत में, पीछे दुःस्वप्न हो जाता है। दुख की परिभाषा ज्ञानियों ने यह की है, जो प्रथम सुख जैसा मालूम पड़े और अंत में दुख हो जाए। तुम इसी तरह तो कटे हो। तुम्हारे पंख कट गए हैं, हाथ-पैर कट गए हैं, लूले-लंगड़े हो, अंधे हो बहुत आश्वासनों में। फिर भी तुम कहते हो, हमने दुख जाना है। दुख जान लेते तो तुम यह जान लेते, कि जहां-जहां सुख लिखा है, वहा-वहां दुख है। "दुख" जिसे सुख कहते हो उसकी परिणति है। दुख, जिसे तुम सुख मानते हो, उसका अंतिम फल है।

बीज तो तुम सोच सकते हो कि आम के बोए थे, लेकिन जब फल लगते हैं, तब कड़वे नीम के लगते हैं। अगर तुम जान लो, तो तुम यह भी जान लो कि बीज जब आम के लगते हैं वे आम के थे नही। अन्यथा आम में कैसे नीम लग जाती? वे बीज ही नीम के थे। लेकिन बीज के आसपास जो प्रचार था, बीज ने खुद तुम्हें जो समझाया था, वह यह था, कि मैं आम हूं। जिसने दुख का अनुभव जान लिया, उसने यह भी जान लिया कि सभी दुख, सुख का आश्वासन दे कर आते हैं। नही तो तुम उन्हें भीतर ही कैसे आने दोगे? एक बार आ जाते हैं तो फिर घर में अड्डा जमा कर बैठ जाते हैं।

इसका यह अर्थ हुआ, कि जो सुख को जान लेता है वह सुख से मुक्त होने की कोशिश करता है, दुख से मुक्त होने की नहीं। अगर तुमने दुख से मुक्त होने की कोशिश की, तो तुमने दुख जाना ही नहीं। दुख से सभी मुक्त होना चाहते हैं। सुख सभी पाना चाहते हैं। यह तो सीधी बात है। सभी दुख छोड़ना चाहते हैं और सभी दुख पाते हैं। सुख किसी को मिलता नहीं।

अब गणित में कहीं कठिनाई है । इसे थोड़ा समझ लेना पड़े। साफ कर लेना पड़े। सुख मत चाहो, दुख न मिलेगा। सुख चाहोगे, दुख मिलेगा। अज्ञानी सुख मांगता है, दुख में फंसता है। ज्ञानी सुख मांगना बंद कर देता है दुख का द्वार ही बंद हो गया। और जब ज्ञानी सुख मांगना बंद कर देता है, तो दुख का द्वार बंद हो जाता है। तब जो घड़ी आती है जीवन में उसको शान्ति कहो, आनंद कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो, जो कहना हो। लेकिन वह सुख-दुख दोनों के पार है।

'जन्मों-जन्मों से हमने दुख का अनुभव जाना, लेकिन किस कारण हमें हमारी भूल नहीं दिख पाती!'

नहीं, न तो जन्मों-जन्मों से कुछ जाना है, न तुमने दुख जाना है, अन्यथा भूल दिख जाती। यही भूल है, कि तुम समझ रहे हो कि जाना है, और जाना नहीं। अब यह भूल छोड़ो। और फिर से अ, ब, स से शुरू करो। अभी तक तुम्हारा जाना हुआ किसी काम का नही। अब फिर से आंख खोलो और देखो। हर जगह, जहां तुम्हे सुख की पुकार आए, रुक जाना। वह दुख का धोखा है। मत जाना! कहना, हमें सुख चाहिए ही नहीं। शांति को लक्ष्य बनाओ। सुख को लक्ष्य बना कर अब तक रहे हो और दुख पाया है। अब शांति को लक्ष्य बनाओ।

शांति का अर्थ है, न सुख चाहिए। न दुख चाहिए क्योंकि सुख-दुख दोनों उत्तेजनाएं है। और शांति अनुत्तेजना की अवस्था है। और जो व्यक्ति शांत होने को राजी है, उसके जीवन मे आनंद की वर्षा हो जाती है। मैंने कहा, सुख दुख का द्वार है। ऐसा शांति आनद का द्वार है।

साधो शांति, आनंद फलित होता है। आनंद को तुम साध नहीं सकते। साधोगे तो शांति को। और शांति का कुल इतना ही अर्थ है, कि अब मुझे सुख-दुख मे कोई रस नहीं। क्योंकि मैंने जान लिया, दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अब मैं दोनो को छोड़ता हूं—यही संन्यास है। यही भाव-दशा संन्यास है कि मैं सुख-दुख दोनों को छोड़ता हूं। जो दुख को छोड़ता है, सुख को चाहता है, वह ससारी है। जो सुख को मांगता है, दुख से बचना चाहता है वह संसारी है। जो सुख-दुख दोनो को छोड़ने को राजी है, वह संन्यासी है।

संन्यासी पहले शात हो जाता है। लेकिन संन्यासी की शांति संसारी को बड़ी उदास लगेगी; मंदिर का सन्नाटा मालूम होगा। वह कहेगा, यह तुम क्या कर रहे हो? जी लो, जीवन थोड़े दिन का है। यह राग-रंग सदा

न रहेगा, कर लो, भोग लो। उसे पता ही नहीं, एक शांति का जिसे स्वाद आ गया उसे सुख दुख दोनों ही तिक्त और कड़वे हो जाते हैं। और शांति में जो थिर होता गया—शांति यानी ध्यान; जो थिर होता गया शांति में, बैठ गई जिसकी ज्योति शांति में, तार जुड़ता गया, एक दिन अचानक पायेगा, आनंद बरस गया।

शांति है साज का बिठाना, और आनंद है जब साज बैठ जाता है, तो परमात्मा की उंगलियां तुम्हारे साज पर खेलनी शुरू हो जाती हैं। शांति है स्वयं को तैयार करना; जिस दिन तुम तैयार हो जाते हो, उस दिन परमात्मा से मिलन हो जाता है। इसलिए हमने परमात्मा को सच्चिदानंद कहा है। वह सत् है, वह चित्त् है, वह आनंद है। उसकी गहनतम आंतरिक अवस्था आनंद है।

चौथा प्रश्न : क्या बुद्धपुरुष के होते हुए भी साधक को अपना स्वयं का समाधान खोजना अनिवार्य है?

समाधि उधार नही हो सकती। कोई तुम्हे दे नही सकता। कोई देता हो तो भूल कर लेना मत। वह झूठी होगी। समाधि तो तुम्हे ही खोजनी पड़ेगी। क्योंकि समाधि कोई बाह्य घटना नही, तुम्हारा आंतरिक विकास है।

धन मे तुम्हे दे सकता हूं। धन बाहरी घटना है। लेकिन ध्यान रखना' जो बाहर से दिया जा सकता, है, वह बाहर से छीना भी जा सकता है। कोई चोर उसे चुरा लेगा। अगर दिया जा सकता है, तो लिया जा सकता है।

वह समाधि ही क्या, जो ली जा सके। जो चोर चुरा ले, डाकू लूट ले, इन्कम टैक्स, का दफ्तर उसमे कटौती कर ले, वह समाधि क्या! समाधि तो वह है, जो तुम से ली न जा सके। समाधि तो वह है, कि तुम्हें मार भी डाला जाए, तो भी समाधी को न मारा जा सके। तुम कट जाओ, समाधि न कटे। तुम जल जाओ, समाधि न जले। तुम्हारी मृत्यु भी समाधि की मृत्यु न बने। तभी समाधि है। नही तो क्या खाक समाधान हुआ!

तो फिर ऐसी समाधि तो कोई भी दे नहीं सकता, तुम्हे खोजनी होगी। बुद्धपुरुष भी नही दे सकते। अनिवार्य है, कि तुम अपना विकास खुद खोजो। हां, बुद्धपुरुष सहारा दे सकते है, उनकी मौजूदगी बड़ी कीमत की हो सकती है, उनकी मौजूदगी में तुम्हारा भरोसा बढ़ सकता है।

ऐसे ही जैसे मां मौजूद होती है तो छोटा बच्चा खड़े होने की चेष्टा करता है। उसे पता है, अगर गिरेगा तो मां सम्हालेगी। मां नही चल सकती बेटे के

लिए; बेटे को ही चलना पड़ेगा। बेटे के पैर ही जब शक्तिवान होंगे तभी चल पायेगा। मां के मजबूत पैरों से कुछ न होगा। लेकिन मां कह सकती है कि हां, बेटा चल। डर मत, मैं मौजूद हूं। गिरेगा नहीं। मां थोड़ा हाथ का सहारा दे सकती है। खड़ा तो बेटा अपने ही भरोसे पर होगा, अपने ही बल पर होगा। लेकिन मां की मौजूदगी एक वातावरण, एक परिवेश देती है। उस परिवेश में हिम्मत बढ़ जाती है।

मनोवैज्ञानिकों ने बहुत अध्ययन किए हैं। अगर बच्चों के पास परिवेश न हो प्रेम का तो वे देर से चलते हैं। अगर प्रेम का परिवेश हो, जल्दी खड़े होने लगते हैं। अगर प्रेम का परिवेश न हो, तो उन्हें बहुत देर लग जाती है बोलने में। अगर प्रेम का परिवेश हो, तो वे जल्दी बोलने लगते हैं। अगर उन्हें प्रेम बिलकुल भी न मिले तले तो वे खाट पर पड़े रह जाते हैं। वे पहले से ही रुग्ण हो जाते हैं। उठ नहीं सकते, चल नहीं सकते। किसी ने भरोसा ही न दिया, कि तुम चल सकते हो।

बच्चे को पता भी कैसे चले, कि मैं चल सकता हूं? उसका कोई अनुभव नहीं, कोई पिछली याद नहीं। बच्चे को पता भी कैसे चले, कि मैं बोल सकता हूं? उसने अपने कण्ठ से कभी कोई शब्द निकलते देखा नहीं। हां, अगर प्रेम का परिवेश हो, कोई उसे उकसाता हो, सहारा देता हो, कोई कहता हो घबराओ मत, आज नहीं होता है, कल हो जाएगा। ऐसे ही हम भी चले, ऐसे ही हम भी गिरे थे, ऐसी चोट खानी ही पड़ती है, यह कोई चोट नहीं है, यह तो शिक्षण है। ऐसा कोई सहारा देता हो, प्रेम की हवा बनाता हो, तो चलना आसान हो जाता है, उठना आसान हो जाता है, बोलना आसान हो जाता है।

जो छोटे बच्चे के लिए सही है, वही साधक के लिए भी सही है। साधक बच्चा है आत्मा के जगत मे। बुद्ध तुम्हे देते नहीं, दे नहीं सकते; सिर्फ तुम्हारे चारों तरफ एक प्रेम का परिवार बना सकते हैं। उस हवा मे बहुत कुछ घट जाता है। तुमने कभी सोचा, कभी निरीक्षण किया? अगर दस आदमी प्रसन्न-चित्त बैठे हों, हस रहे हों, गपशप कर रहे हो, तो तुम उदास भी हो, तो जल्दी ही उदासी भूल जाते हो। उनकी हँसी संक्रामक हो जाती है। वह तुम्हे छू लेती है। तुम भूल ही जाते हो, कि तुम उदास आए थे।

दस आदमी उदास बैठे हों, कोई मर गया हो, रो रहे हों, तुम गीत गुनगुनाते रास्ते से जा रहे थे। अचानक किसी ने कहा, कि कोई मर गया परिचित। वहां घर मे गए हो, तुम एकदम उदास हो गये। हृदय बैठ गया।

जैसे श्वास बंद हो गई। खून बहता नहीं, जम गया। क्या हो गया? एक हवा है वहां उदासी की।

इसलिए परिवार बनाए हैं बुद्धों ने। बुद्ध ने संघ बनाया। बुद्ध ने संघ के तीन सूत्र बनाए... कि मैं बुद्ध की शरण जाता हूं। पहला सूत्र था, बुद्धं शरणं गच्छामि कि मैं बुद्ध की शरण जाता हूं। लेकिन बुद्ध जब तक जीवित हैं, तब तक यह आसान होगा। बुद्ध के जीवित न होने पर साधारण आदमी को मुश्किल हो जाएगा, कि जो बुद्ध नहीं हैं उनकी शरण कैसे जाऊं? कहीं दिखाई नही पड़ते, अदृश्य हैं, चरण भी दिखाई नहीं पड़ते, शरण कैसे जाऊं?

तो बुद्ध ने दूसरा सूत्र बनाया—"धम्मं शरणं गच्छामि।" अगर बुद्ध नहीं हो तो धर्म की शरण जाना। लेकिन धर्म भी बड़ी वायवीय बात है, हवाई बात है। धर्म यानी नियम, जिससे जगत चलता है। लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता।

तो फिर बुद्ध ने तीसरा सूत्र बनाया—"संघं शरणं गच्छामि।" संघ का अर्थ है : भिक्षुओं का संघ; परिवार।

बुद्ध सर्वाधिक सूक्ष्म बात है। बुद्धत्व का अर्थ है, धर्म को उपलब्ध, जाग कर उपलब्ध हुआ व्यक्ति। फिर बुद्ध से थोड़ा नीचे आएं, तो नियम, गणित विज्ञान की बात है—धर्म। फिर उससे और नीचे आए तो संघ, परिवार।

मुझसे लोग पूछते हैं, कि आप हजारों लोगों को संन्यास दे रहे हैं, क्या मतलब? क्या प्रयोजन? क्या आप का कोई इरादा है समाज को, दुनिया को बदलने का?

बिलकुल नही है। समाज को बदलने का कोई इरादा नही। दुनिया को बदलने का कोई इरादा नही। दुनिया कभी बदलती नही; बदलने की कोई जरूरत भी नही है। क्योंकि दुनिया भी चाहिए। जिनको उस ढंग से रहना है, उनके लिए वैसी दुनिया चाहिए। उतनी स्वतंत्रता चाहिए। बाजार को मिटा दोगे, अच्छा न होगा। रहने दो; कुछ लोगों को बाजार चाहिए। वे बाजार में ही जी सकते हैं, वे बाजार के ही कीड़े हैं। उनको कहीं और ले जाओ, वे मर जाएंगे। संसार जिनको चाहिए उनके लिए संसार है।

नहीं, ये जो हजारों लोगों को मैं संन्यास दे रहा हूं, यह एक संघ है, एक परिवार है, एक हवा है। जहां दस संन्यासी बैठेंगे वहां रंग बदल जाएगा। इसलिए तुम्हें लाल रंग दिया है। वह अग्नि का रंग है। वह लपट का रंग है। जिस को दादू लौ कह रहे हैं, उसका रंग है।

जहां दस संन्यासी बैठेंगे, वहां रस बदल जाएगा, वहां चर्चा बदल जाएगी, वहां हवा और हो जाएगी। तुम बात परमात्मा की करोगे। तुम बीज पर-

मात्मा के बोओगे। तुम नाचोगे। तुम नाचोगे, तुम गाओगे, तुम उत्सव मनाओगे। वह जो उदास भी आया था, थका-मांदा आया था, पुनरुज्जीवित हो उठेगा।

एक परिवेश चाहिए। बुद्ध सिर्फ परिवेश देते हैं, इशारा देते हैं, सहारा देते हैं। चलना तुम्हें है, जाना तुम्हें है, खोजना तुम्हें है। मोक्ष कोई दूसरा दे भी कैसे सकता है! अन्यथा वह क्या खाक मोक्ष होगा। वह तुम्हारा अंतर-विकास है। वह तुम्हारे अंतरतम की आत्यन्तिक अवस्था है।

इससे निराश मत होना। उसे सहारा दिया जा सकता है, उसे बड़ा सहारा दिया जा सकता है। और अगर तुम अपने गुरु के प्रेम में हो, तो सहारा ही विकास है। सहारा है।

पांचवां प्रश्न: ध्यान करते समय एक ओर शांति और आनंद का अनुभव होता है तो दूसरी ओर विचार की एक हल्की धारा चलती रहती है। इस हालत में अनुभूत शांति मन का धोखा है क्या?

मन बहुत अद्‌भुत है। वह कभी शक नहीं करता . . । अगर दुख हो तो वह कभी नहीं पूछता, कि मन का धोखा है? क्रोध हो, कभी नही पूछता कि मन का धोखा है? लेकिन अगर थोड़ी शांति मिले तो भरोसा नही आता। मन पूछता है, धोखा होगा। तुम्हे और शांति मिल सकती है? असंभव। तुम और आनद अनुभव कर सकते हो? यह हो ही नही सकता। जरूर कहीं कोई भूल हो रही है।

तुमने अपने पर कितनी आस्था खो दी है। तुमने अपने भाग्य को बिल-कुल अंधकार के साथ जोड़ रखा है। तुमने विषाद को नियति बना लिया है। अगर उस विषाद के क्षण में कभी एक सूरज की किरण भी उतरे, तो तुम मानते हो कि सपना होगा। सूरज की किरण और मुझ पर उतर सकती है? हो ही नही सकता। अधेरा ही उतर सकता है तुम पर, ऐसा तुमने भरोसा क्यों कर लिया है?

और अगर यह भरोसा तुम्हारा है, तो ऐसा ही होगा। क्योंकि तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारा भाग्य बन जाता है। सूरज की किरण उतरेगी, तो तुम स्वागत न कर पाओगे, तुम संदेह से देखोगे। अंधेरा आएगा, तुम छाती से लगा लोगे। स्वभावत: अधेरा बढ़ेगा। सूरज की किरण धीरे-धीरे कम आएगी। जहा स्वागत ही न होता हो, वहा आने का भी क्या प्रयोजन? जहां अतिथि की तरह सम्मान न होता हो, वहा परमात्मा भी धीरे-धीरे बचने लगेगा। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे द्वार पर आ जाए तो यह पक्का है, तुम भरोसा

न करोगे कि यह परमात्मा हो सकता है। हो सकता है पीछे के दरवाजे से भाग कर तुम पुलिस में रिपोर्ट लिखवा आओ, कि पता नही कौन खड़ा है। परमात्मा हो ही नहीं सकता। कोई न कोई झंझट आ गई। परमात्मा और हमारे द्वार पर!

तुमने क्यों अपने को इतना दीन समझ लिया है? तुमने क्यों अपने को इतना दुर्बल मान लिया है? तुम क्यों इतने अपने शत्रु हो गए हो?

अब दो घटनाएं घट रही हैं। मन में शांति आ रही है ध्यान में। आनंद की थोड़ी-सी पुलक आ रही है। पास ही थोड़े से मन की तरंगें चल रही हैं, विचार चल रहे हैं। दो घटनाएं घट रही हैं।

लेकिन पूछनेवाला यह नही पूछता, कि ये जो तरंगें चल रही हैं, यह कहीं धोखा तो नही है। वह पूछता है, कि यह जो शांति मालूम हो रही है, यह धोखा तो नहीं है। जिसको तुम धोखा समझोगे, वह मिट जाएगा। जिसको तुम सत्य समझोगे, वह हो जाएगा। विचार वस्तुएँ बन जाते हैं। भाव-दशाएं स्थितियाँ हो जाती हैं। जिसने जैसा माना, वैसा हो जाता है।

बुद्ध का बड़ा प्रसिद्ध वचन है धम्मपद मे, कि तुमने जो सोचा, तुम वही हो जाओगे। तुम आज जो हो, वह तुम्हारे बीते कल के सोचने का परिणाम है। आज तुम जो सोचोगे वह तुम कल हो जाओगे। सोचना तो बीज बोना है। फिर तुम रोते हो, जब फल काटते हो।

चलने दो विचारों की तरंगों को। तुम अपने ध्यान को शांति पर लगाओ और अहो-भाव से भरो। और तुम धन्यवाद दो परमात्मा को, कि इतनी शांति मिली। परम कृतज्ञ हो जाओ, शांति रोज बढ़ने लगेगी। जितनी शांति बढ़ेगी, उतनी ही मन की जो तरंगें हैं, वे कम होने लगेंगी। क्योंकि, वही तो उर्जा है जो अब शांति बनने लगेगी। मन उसको पा न सकेगा।

एक दिन तुम अचानक पाओगे, कि मन की सब तरंगें खो गईं। वह कोलाहल अब होता ही नही। वह रास्ता ही चलना बंद हो गया। उस पर कोई यात्री नही गुजरते। अब वहां विचारों का कोई आवागमन नहीं है। अब गहन शांति तुममे विराजमान हो गई।

लेकिन अगर तुमने शांति पर संदेह किया, तो जल्दी ही तुम पाओगे, कि जो ऊर्जा शांति की तरफ बहती थी, वह विचारों की तरफ वापिस बहने लगी है। यह संदेह उन्हीं विचारों से आ रहा है। ये जो किनारे पर चलती हुई थोड़े से विचार की तरंगें हैं, आखिरी कोशिश कर रही हैं अपने को बचाने की। वे तुम्हारे मन को आच्छादित

कर रही हैं। वे कह रही हैं, क्या शांति! शांति हो ही नहीं सकती। शांति कभी किसी को हुई है ?

पश्चिम का एक मनोवैज्ञानिक इधर कुछ महीनों पहले मेरे पास था। बहुत विचार-शील व्यक्ति है। उसने मुझे कहा, कि मैं मान ही नही सकता, कि मन कभी शांत हो सकता है। यह अस्वाभाविक है। मन में विचार का चलना तो ऐसे ही है, जैसे शरीर में खून का बहना। और मनोविज्ञान मानता ही नही, कि कभी ऐसी घड़ी आ सकती है, कि मन में विचार न चले। यह तो ऐसे ही होगा, जैसे शरीर में खून न बहे, तो आदमी मर जाए। विचार की गति तो रहेगी ही।

मैंने उन्हें कहा कि, थोड़ा प्रयोग करो। अब कोई उपाय नही है तुम्हें समझाने का फिलहाल। थोड़े प्रयोग करो, शायद किसी दिन क्षण भर को भी मन में विचार रुक जाए, तो जो क्षण भर को हो सकता है, वह दो क्षण को भी हो सकता है, तीन क्षण को भी हो सकता है। फिर हम आगे बात करेंगे।

संयोग की बात! कोई पदरहवें-सोलहवें दिन वह घटना घटी, कि कुछ क्षणों के लिए विचार बद हो गये होंगे ध्यान में। वह व्यक्ति भागे हुए आये और उन्होंने कहा, मैं यह मान ही नही सकता, यह असंभव है। अब यह हो गया है तो भी नही मान सकते, असंभव है! वे कहने लगे, कि जरूर मैंने कल्पना की कर ली होगी।

पर शांति की तुम कल्पना भी कैसे कर सकते हो, अगर शांति को तुम जानो न? कल्पना भी उसकी हो सकती है, जिसको तुमने जाना हो। तुम ऐसी भी कोई कल्पना कर सकते हो, जो बिलकुल ही अपरिचित, अनजान अज्ञात की हो? असंभव। हां, तुम ऐसी कल्पना कर सकते हो, जिसमें ज्ञान के कुछ खंड जोड़ लिए हो। तुम एक ऐसे घोड़े की कल्पना कर सकते हो, जो सोने का है और आकाश में उडता है। इसमे कोई अड़चन नही। क्योंकि उड़नेवाले पक्षी तुमने देखा है, सोने का सामान तुमने देखा है, घोड़ों को तुम जानते हो। तीनों को तुमने जोड़ दिया। लेकिन क्या तुम ऐसी कोई कल्पना कर सकते हो, जो तुमने जानी ही नही।

मैंने उन मित्र को कहा, कि तुमने शांति पहले कभी जानी ? उन मित्र ने कहा, नही। पहली दफा जानी है। मगर ऐसे लगता है, मन की कल्पना है।

जिसको तुमने कभी जाना नही, तुम उसे कैसे कल्पना करोगे? कल्पना का तो अर्थ ही यही हो सकता है, जाने हुए की पुनरुक्ति। हां, (को जाने हुए) थोड़ा सुधार सकते सजा सकते हो। लेकिन अनजाने की कोई कल्पना नही हो सकती। हां, परमात्मा की तुम कल्पना कर सकते हो, क्योकि मंदिरों मे तस्वीरें लटकती हैं, मूर्तियां रखी है। लेकिन शांति की कही कोई तुमने तस्वीर देखी है? शांति की कही कोई मूर्ति देखी है? शांति तो भाव है। उसे तो कही भी चित्रित करने का कोई उपाय नहीं।

मैंने उनसे कहा, कि चलो कल्पना ही सही; बुरी तो नहीं है? उन्होंने कहा, बुरी तो नहीं, आनंद तो बहुत आया। लेकिन शक होता है।

यह हो नहीं सकता। कुछ दिन और चलाओ, थोड़ा और अनुभव करो। तुम्हारा मन जो दुख पर कभी संदेह नहीं करता, अशांति को बिलकुल स्वीकार करता है, वह शांति पर संदेह करता है। मन तुम्हारा शत्रु है।

ऐसी जब घड़ी आए तो तुम मन की सुनना ही मत। तुम मन से यह कह देना, कि कल्पना ही सही। लेकिन तेरे सत्यों से यह कल्पना बेहतर है। तेरा सत्य है— दुख, चिंता, विषाद। तेरा सत्य है, अशांति, तनाव, संताप। तेरे सत्यों में यह कल्पना बेहतर है शांति की, संतोष की, एक गहन आनंद की। कल्पना में ही रहेंगे। तेरे सत्यों से छुटकारा चाहिए। अगर तुम अपने ध्यान को इस शांति को स्वीकार करने के लिए कर सको, और तुम्हारा सारा ध्यान शांति की तरफ बहने लगे, तुम्हारी जीवन-ऊर्जा शांति को पल्लवित करने लगे, पोषित करने लगे, भोजन देने लगे, तो तुम जल्दी ही पाओगे, कि जो तुम्हें आज कल्पना जैसे लगी है, वही जीवन का सबसे बड़ा सत्य हो जाती है। और जिस मन को तुमने सत्य समझा था, वह सिर्फ एक अतीत का सपना हो जाता है।

मन सपना है; लेकिन सपना बहुत पुराना है। उसकी बड़ी गहरी जड़ें तुम्हारे भीतर हैं। और शांति सत्य है; लेकिन वह बिलकुल नया पौधा है। आज ही अवतरित हुआ है। बल दो उसे, भूमि दो उसे, जल दो उसे, पोषण दो, ताकि वह बड़ा हो सके। और अगर आज ही तुमने मन से उसे लड़ाया, तो वह बहुत पुराना है, बहुत मजबूत है। स्वभावतः लड़ने में ज्यादा समर्थ है। जड़ें बहुत मजबूत हैं। मन को कह दो, कि तू अपना सम्हाल, हमें थोड़ी कल्पना का आनंद लेने दे। जल्दी ही तुम पाओगे, वह बड़ा वृक्ष मन का गिरने लगा। वह तुम्हारे सहारे से जीता है, तुम्हारी ही ऊर्जा के शोषण से जीता है। अगर तुम्हारी ऊर्जा शांति के पौधे पर लगने लगी, उपेक्षित मन का पौधा अपने आप सूख जाएगा। और जिस दिन मन का पौधा अचानक सूख कर गिर जाता है, उस दिन तुम अचानक पाते हो, जहां स्वर्ग था, वहां मन के कारण तुमने नर्क बना रखा था।

छठवां प्रश्न : कल आपने समझाया कि सुख-पूर्वक सुरति से समाधान घटता है, परंतु, मुझे तो बड़े प्रयास, अभ्यास और श्रम से गुजरना पड़ रहा है, क्यों? साधक को बहुत प्रयास, तप और तपश्चर्या से क्यों गुजरना पड़ता है?

आलस्य हो मन में, तो छोटी-मोटी चीजें बड़ा प्रयास मालूम होती हैं। तुम्हारी व्याख्या की बात है। कुछ भी तुम्हें श्रम नहीं करना पड़ रहा है। मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे निकट जो लोग साधना में लगे हैं, पृथ्वी पर सबसे कम श्रम उन्हें करना पड़ रहा है। तुम्हें श्रम का कुछ पता ही नहीं है।

मगर महाआलसी व्यक्तित्व हो; तो छोटी-छोटी बातें श्रम मालूम पड़ती हैं। कर क्या रहे हो तुम? किस बात को तुम बार-बार कहते हो, कि बड़े प्रयास। कौन-सा बड़ा प्रयास कर रहे हो?

थोड़ा नाच लेते हो, इसको बड़ा प्रयास कहते हो? नाचना प्रयास है? नाचना तो आनंद है। लेकिन तुम्हारी दृष्टि! आनंद को प्रयास समझोगे, चूक गए। नाचना तो उत्सव है, एक रसपूर्ण घटना है, प्रयास क्या है? अगर नाचना ही प्रयास है, तो फिर अप्रयास क्या होगा?

अगर मैं तुमसे कहूँ कि, खाली बैठे रहो, तो भी तुम कहते हो, कि बड़ा प्रयास करना पड़ता है। खाली बैठे रहो, आँख बद करके बैठो। बड़ा प्रयास करना पड़ता है। नाचने को कहूँ तो बडा प्रयास है। तुम्हारे आलस्य का कोई अंत नही मालूम पड़ता। और तुम इसे बड़ा गौरवपूर्ण समझ रहे हो, कि बड़ा प्रयास कर रहे हो।

मैंने सुना है, कि एक गाँव में वन-महोत्सव चल रहा था और एक बड़े नेता ने व्याख्यान दिया और लोगों को समझाया, कि वृक्षों को बचाना चाहिए, रक्षा करनी चाहिए। वृक्ष जीवन है, उनके बिना पृथ्वी उजाड हो जाएगी। और फिर उसने कहा, कि जहाँ तक मैं जानता हूँ, वहाँ जो लोग भी मौजूद हैं, इनमें से किसी भी कभी अपने जीवन में किसी वृक्ष की कोई रक्षा नही की। कोई नही उठा, लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन बड़े गौरव से खड़ा हो गया। उसने कहा, आप गलत कहते हैं। एक बार मैंने पत्थर से एक कठफोड़वा को मारा था-- वह जो कठफोड़वा पक्षी होता है--उसको मैंने पत्थर से मारा था। मरा नहीं, मगर चेष्टा मैंने बड़ी की थी।

इसको वे वृक्षों की रक्षा समझ रहे हैं! कठफोड़वा को मारा, क्योंकि कठफोड़वा वृक्षों को खराब करता है। वह भी मरा नही, मगर पत्थर चूक जाए, इसमे मेरा क्या कसूर है? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, मैंने कोशिश की थी।

बड़ा प्रयास कर रहे हो-- कठफोड़वा मार रहे हो! थोड़ी साँस ले ली जोर से, इसको तुम बडा अभ्यास कहते हो? इससे सिर्फ तुम्हारा महातमस और आलस्य पता चलता है और कुछ भी नही।

तो तुम्हें साधना का कुछ पता ही नही। तुमको तो कोई महावीर मिलता, तब पता चलता, कि साधना क्या है! जब वे तुम्हें तीन-तीन चार-चार महीने भूखा रखवाते, बारह साल तक मौन करवाते' तब तुम्हे पता चलता, कि साधना क्या है। मैं तो तुमसे नाचने को कह रहा हूँ, मैं तुमसे हँसने को कह रहा हूँ, मैं तुम्हे जीवन में कुछ भी तोड़ने को नही कह रहा हूँ, जीवन ने जो कुछ दिया है उसका उपभोग करने को कह रहा हूँ। मैं तुम्हें पहाड़ों पर भागने को नहीं कह रहा हूँ, पहाड़ को तुम्हारे बाजार मे लाने की चेष्टा कर रहा हूँ!

वस्तुतः तुमसे कुछ करने को नहीं कह रहा हूं, तुमसे कह रहा हूं; तुम समर्पण कर दो। समर्पण का मतलब है, कुछ भी तुम अपने ऊपर मत लो। करने की बात ही छोड़ दो। करने दो परमात्मा को। तुम चरणों को पकड़ लो और कह दो, अब तू जो करे, तेरी मर्जी। तुम नाचो कृतज्ञता से। बहुत मिला है।

मैं तुम्हें अहोभाव सिखा रहा हूं, साधना करवा ही नहीं रहा। वही दादू का अर्थ है, जब वे कहते हैं, सुखपूर्वक सुरति--सुख सुरति।

लेकिन तुम कहते हो, मुझे तो बड़े प्रयास, अभ्यास और श्रम से गुजरना पड़ रहा है।

मुझे दिखाई नहीं पड़ता कौन-सा श्रम तुम कर रहे हो, कौन-सा बड़ा अभ्यास कर रहे हो, कौन-सी तपश्चर्या तुमसे करवाई जा रही है? लेकिन तुम्हारे आलस्य को मैं समझता हूं। तुम्हारी दृष्टि से हो सकता है, नाचना भी बड़ी भारी तपश्चर्या हो। इससे तुम केवल अपनी दृष्टि की खबर देते हो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र के साथ एक वृक्ष के नीचे लेटा था। आम पक गए थे, एक आम गिरा। मित्र ने नसरुद्दीन से कहा, कि बिलकुल तेरे पास पड़ा है, उठा कर मेरे मुंह मे लगा दे। नसरुद्दीन ने कहा, 'तू मित्र नही शत्रु है। थोड़ी ही देर पहले एक कुत्ता मेरे कान मे मूत रहा था, तूने उसे भगाया तक नही, और मैं आम उठाकर तेरे मुंह मे लगा दूं।

बस, ऐसा ही तुम्हारा जीवन है। पड़े हो, आम भी कोई उठाकर तुम्हारे मुंह मे लगा दे। कुत्ता भी तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार कर रहा हो, तो भगा नही सकते। खुद नही भगा सकते, उसकी भी अपेक्षा दूसरे से कर रहे हो। और सोचते हो कि महातपश्चर्या में तुम सलग्न हो।

छोड़ो व्यर्थ की बातें। अपने आलस्य को तोड़ो, प्रमाद को हटाओ। जितने कम पर मैं तुम्हें जीवन-यात्रा को ले जाने के लिए कह रहा हू उससे कम पर कभी किसी दूसरे ने नहीं कहा है। और अगर तुम मेरे द्वारा चूक जाते हो, तो फिर तुम्हारे लिए कोई उपाय नही है।

आखिरी प्रश्न : अत्यल्प ही सही, मन का घोड़ा और चेतना का सवार समझ मे आता है; वैसे ही गुरु के शब्द का कोड़ा भी। लेकिन जिस लौ के लगाम की बात संत कहते हैं, दादू कहते हैं, वह कहां उपलब्ध है?

उसे अपने भीतर खोजो।

ये सब बातें समझ में आ जाती हैं। क्योंकि ये सब बातें बुद्धि की हैं। बुद्धि इन्हें समझ लेती है। लौ की बात हृदय की है, वह समझ में नही आती, क्योंकि बुद्धि से उसका लेना-देना नहीं।

मन का घोड़ा समझ में आता है। चौबीस घण्टे भाग रहा है। ऊबड़-खाबड़ रास्तों में ले जाता है, उल्टी-सीधी यात्राएँ करवाता है, जहाँ नहीं जाना था, वहाँ पहुँचा देता है। जहाँ जाना था, वहाँ नहीं पहुँच पाते क्योंकि, घोड़ा कहीं और भागा जा रहा है। समझ में आता है। बुद्धि समझ लेती है इस बात को। इसमें कुछ अड़चन नहीं है।

चेतना का सवार भी समझ में आता है, कि अगर होश साधो, कभी घोड़ा भी साधो, तो घोड़े पर सवारी हो जाती है। होश अगर हो, तो फिर घोड़ा तुम्हे हर कहीं नहीं ले जा सकता। तुम कहाँ जाना चाहते हो, उस तरफ यात्रा शुरू हो जाती है, एक दिशा मिलती है, एक भाव-दशा निर्मित होती है, जिसमें यात्रा हो पाती है। मन तो केवल भटकता है, चैतन्य पहुँचाता है। वह भी समझ मे आता है।

गुरु के शब्द का कोड़ा भी समझ मे आ जाता है, क्योंकि गुरु सदा ही कोड़े मारते रहे– यह सब बात समझ मे आ जाती है।

समझ में नहीं आती एक बात– लौ की बात। वह प्यास कैसे जगे? वह आग कैसे उठे? और अगर वह न उठे, तो सब समझ बेकार है। वह ऐसा ही है, कि भूख ही न लगी थी, भोजन तैयार था। प्यास ही न लगी थी। सरोवर घर के सामने आ गया था। लेकिन प्यास ही न हो तो क्या करोगे सरोवर को? बाकी सब समझ बेकार है, जब तक लौ न हो।

लेकिन लौ को कहाँ पाओगे? और तो कहीं पाने का उपाय नहीं। अपने भीतर ही खोजनी पड़ेगी। लौ जल रही है, लेकिन तुम्हारे हृदय मे और तुम्हारे सिर मे सबध टूट गया है। लौ तुम्हारे हृदय मे जल रही है। हृदय की तुमने सुनना बद कर दिया है, और बुद्धि सोचे चली जाती है। और उसे लौ कहीं मिलती नहीं। क्योंकि लौ सदा हृदय की है। उतना पागलपन सिर्फ हृदय ही कर सकता है––जलने का, विरह का, लौ का, प्यास का।

जब तुम प्रेम करते हो किसी को, तो तुम ऐसा नहीं कहते कि किसी से प्रेम हो गया है और सिर पर हाथ रख कर बताओ। हृदय पर हाथ रखकर बताते हो। तुमने कभी कोई प्रेमी देखा, जो सिर पर हाथ रख कर बताता हो? वह बात ही न जँचेगी। सारी दुनिया मे सभी संस्कृतियो में, सभी सभ्यताओ में जब भी कोई व्यक्ति प्रेम मे पड़ता है तो वह हृदय पर हाथ रखता है। कुछ हृदय मे होने लगता है, कोई सुगबुगाहट, कोई अंकुर का फूटना, जमीन का टूटना, हृदय के भीतर कोई हलचल––हृदय पर हाथ रखता है।

वहां—वहां से तुम प्रेम करते हो, वहीं से तुम प्रार्थना भी करोगे। वहीं खोजो। उतरो नीचे की तरफ, अपने हृदय में आओ। जब भी सवाल उठे, कि कहां खोजें उस लौ को, तो आंख बंद करो और हृदय में तलाशो। हृदय पर हाथ रखो और खोजो।

लेकिन कठिनाई यह हो गयी है कि तुमने प्रेम भी बंद कर दिया है, प्रार्थना भी बंद हो गई है, परमात्मा का द्वार अवरुद्ध हो गया है। प्रेम करो! अगर तुम प्रेम करने लगो, तो जल्दी ही तुम्हें लौ में गति मालूम होगी। लौ भभकने लगेगी। थोड़ा प्रेम का ईंधन दो।

प्रेम से मेरा मतलब है, अगर वृक्ष को छुओ तो प्रेम से छुओ। कुछ भी तो नहीं, कुछ भी तो खर्च नहीं होता। प्रेम से छुओ। कभी छोटे प्रयोग कर के देखो। वृक्ष के पास बैठे हो, हाथ रखो वृक्ष पर और ऐसा भाव करो, जैसे वृक्ष से तुम्हारा बड़ा गहरा प्रेम है। वृक्ष एक मित्र है, तुम बहुत दिन बाद आए हो, वृक्ष से हाथ में हाथ लिए बैठे हो, कि वृक्ष को आलिंगन कर के छाती से लगा लो। और आंख बंद कर के थोड़ी देर वृक्ष के साथ रह जाओ।

और देखो, क्या घटता है! तुम पाओगे, हृदय की धड़कन बदली, हृदय का गुण बदला, तुम मस्तिष्क से नीचे उतरे। क्योंकि वृक्ष के पास तो कोई मस्तिष्क नहीं है। उसके पास तो सिर्फ हृदय है। अगर उससे तुमने थोड़ी हृदय की बात की, थोड़ा हृदय का राग-रंग जोड़ा,—वह बड़ा सरल है—वह जल्दी ही तुम्हारी तरफ प्रेम की किरणें फेंकने लगेगा। तुम्हारे हृदय ने अगर उसे पुकारा, तो वह तुम्हारे हृदय को पुकारेगा।

चट्टान को भी छुओ तो प्रेम से छुओ और तुम फर्क पाओगे। चट्टान को अगर तुम प्रेम से छुओगे तो लगेगा, चट्टान में भी एक ऊष्मा है, एक गरमी है। और अगर तुम मनुष्यों के हाथ के भी हाथ में लोगे और बिना प्रेम के लोगे तो पाओगे एक ठंडापन है, एक मुर्दापन है।

थोड़ा अपने प्रेम को फैलाओ। भोजन करो तो प्रेम से करो। क्योंकि भोजन तुम अपने भीतर ले जा रहे हो। ले जाओ अहोभाव से। बड़े प्रेम से निमंत्रण को दो।

हिंदू बड़े कुशल थे। वे पहले परमात्मा को चढ़ाते फिर अपने को। बड़ा प्रेम का कृत्य था। वे यह कहते थे, कि अन्न ब्रह्म है। इसको ऐसे ही नहीं ले जाना है। प्रार्थना करनी है, पूजा करनी है, परमात्मा को प्रसाद लगा देना है। भोग लगाना परमात्मा को, फिर प्रसाद लेना है।

स्नान करो तो जल के साथ भरो। क्योंकि जल है तुम्हारा शरीर। तुम्हारे शरीर में निम्नानबे प्रतिशत तो जल है। तुम सागर से आए हो। सारा जीवन सागर से आया है, सागर के पास बैठो, तो सागर को तरफ बड़े प्रेम से देखो। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को देखता है। तब तुम लहरों में आमंत्रण पाओगे। और जल्दी ही पाओगे कि तुम्हारा सिर तो अलग हो गया, बीच से हट गया, हृदय का तार जुड़ गया।

पहाड़ पर जाओ। हरियाली को देख कर प्रसन्न होते हो, नाचो। आकाश को देखो, चांद-तारों को! तुम सारे अस्तित्व से जुड़े हो! प्रेम जोड़ेगा, मस्तिष्क ने तोड़ा है। और जैसे-जैसे यह जोड़ जगेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे, दादू की लौ भभकने लगी।

पहले तो तुम प्रेम में पड़ो अस्तित्व के, उसी प्रेम में उतरने से धीरे-धीरे तुम पाओगे, कि तुम्हारा प्रेम इतना बड़ा होता जा रहा है, कि अब छोटे-मोटे प्रेम-पात्र काम न देंगे, अब परमात्मा ही चाहिए। समग्र अस्तित्व चाहिए। प्रेम की पात्रता बढ़ाओ, तभी तुम परमात्मा को प्रेम-पात्र बना सकोगे।

तुम्हारी जितनी पात्रता होती है, वैसा ही तुम्हारा प्रेम होता है। कोई आदमी तिजोड़ी को प्रेम करता है, उसके पास लोहे का हृदय है। वह आदमी को प्रेम नहीं कर सकता, रुपये को प्रेम करता है। रुपया यानी धातु; बस उसी तल की उसकी दुनिया है। उसके हृदय मे धातु भरी है, उससे ज्यादा कुछ भी नहीं।

कोई आदमी मनुष्यों को प्रेम करता है—ऊपर उठा। कोई आदमी बुद्ध, महावीर, कृष्ण को प्रेम करता है—और उपर उठा। अवतारों को प्रेम करता है—उपर आ गया।

फिर एक ऐसी घड़ी आती है, तुम्हारे प्रेम का पात्र इतना बड़ा हो जाता है, सिवाय परमात्मा के कोई तुम्हारा पात्र नही हो सकता। उस दिन लौ भभकती है।

इसे तुम कहीं और न पा सकोगे। तुम्हारे हृदय मे मौजूद है चिनगारी। राख जम गई है। उतरो हृदय में। डरो मत।

हृदय में उतरने मे डर लगता है। यह ऐसे ही है, जैसे कोई खाई, कुएं में उतरता है, गहरे मे। घबराहट होती है, भीतर जाने में घबराहट होती है। खोपड़ी में बने रहने में सब ठीक मालूम पड़ता है। वहां तुम बिलकुल परिचित हो। वहां सुपरिचित भूमि पर चलते हो। सब नक्शा साफ है।

हृदय मे जाओ। बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। क्योंकि हृदय इतना जाम पड़ा है, इतने दिनों से यंत्र काम ही नही कर रहा है, तुम भूल ही गए हो, कहाँ है हृदय। प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। प्रतीक्षा करना भी भूल गए हो। जो प्रेम करना जानता है, वह प्रतीक्षा करना भी जानता है।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ एक स्टेशन पर बैठा था, ट्रेन लेट हो गई थी। उसने एक कुली को बुलाया। वह नाराज हो रहा था और एक क्षण भी शांति से न बैठ पा रहा था। फिर खड़ा हो जाता, फिर टाइमटेबल देखता। फिर तख्ते पर जा कर पढ़ता, जा कर स्टेशन मास्टर को पूछता, कि कितनी देर है? फिर घड़ी मिलाता, यह करता, वह करता। एक कुली को बुलाया। पूछा कुली से, कि यहाँ कोई कब्रिस्तान है पास में? उस कुली ने पूछा। कब्रिस्तान यहाँ किसलिए? यहाँ तो स्टेशन है।

मुल्ला ने कहा, कि यहाँ जो लोग प्रतीक्षा करते-करते मर जाते हैं उनको कहाँ दफनाते हो?

प्रतीक्षा की तो जरा भी सुविधा नही रही है। मरते है—जैसे प्रतीक्षा यानी मौत आई। एक क्षण रुकना पड़े कहीं, प्रतीक्षा करनी पड़े, मरे! दौड़ने में जिंदगी मालूम पड़ती है, रुकने में मौत मालूम पड़ती है।

और हृदय में वही उतर सकता है जो बहुत प्रतीक्षा करने को राजी हो। हृदय और मस्तिष्क मे इतना फासला है, कि प्रतीक्षा... ऐसा मत सोचना, कि पास-पास है। शरीर में पास-पास दिखाई पड़ते हैं, कि हाथ भर का फासला है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि हृदय और मस्तिष्क में इतना फासला है, जितना फासला और दो चीजों मे और कभी भी हो नहीं सकता। ये बिंदु दो अत्यंत विपरीत बिंदु हैं। इनमें जमीन-आसमान का फासला है।

यात्रा लम्बी है। और वहाँ जाए बिना कोई उपाय नही। इसलिए करनी ही पड़ेगी। जितना समय यहाँ-वहाँ गँवाओगे, व्यर्थ गँवाया हुआ सिद्ध होगा। मत भटको कहीं। खोपड़ी से नीचे उतरो, और हृदय की तरफ जाओ। और जियो हृदय से। विचार से जीना बंद करो। अगर लुट भी जाओ हृदय के साथ जीने मे, तो लुट जाना। उस लुट जाने में बड़ी संपदा पाओगे। और अगर सिर के साथ जी कर जरा भी न लुटे और दुनिया को लूट लिया, तो भी आखिर में पाओगे, खाली हाथ जा रहे हो; कुछ कमा न पाए, जिन्दगी गँवा दी है। केवल वे ही जीवन की संपदा पाते है, जो हृदय की लौ को जगा लेते हैं।

वहीं मन्दिर है, वहीं जल रही है अहर्निश अग्नि। मत पूछो, कि कहाँ खोजें, कहाँ पाएँ? तुम्हारे भीतर है।

मन चित चातक ज्यूं रटै

प्रवचन नौ : दिनांक १९-७-१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी ध्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस॥
बिरहिन दुःख कासनि कहुं, कासनि देह संदेस।
पंथ निहारत पीव का, बिरहिन पलटे केस॥
ना वहु मिलै न मै सुखी कहु क्यूं जीवन होइ।
जिन मुझको घायल किया मेरी दारू सोइ॥
कर बिन सर बिन कमान बिन सा मरै खैंचि कसीस।
लागी चोट सरीर में नख सिख सालै सीस॥
बिरह जगावे दरद को दरद जगावै जी।
जीव जगावै सुरति को पंच पुकारैं पीव।



अंधेरा है घना, चारो दिशाओं मे—बाहर-भीतर; पर तुम्हे दिखाई नहीं पड़ता। अंधेरे को देखने के लिए भी आँख चाहिए। प्रकाश को देखने के लिए तो आँख चाहिए ही, अंधेरे को भी देखने के लिए आँख चाहिए।

अंधा अंधेरे को नही देखता। ऐसा मत सोचना कि अंधा अंधेरे में नहीं रहता होगा। अंधे को अंधेरे का भी पता नही है। आँख चाहिए। आंख हो, तो अंधेरा दिखाई पडता है। और आँख हो, तो रोशनी की खोज शुरू हो जाती है। जिसे अंधेरा दिखा वह बिना प्रकाश को खोजे कैसे रहेगा? अगर तुम बिना खोजे बैठे हो, तो एक ही अर्थ हो सकता है, कि तुम्हें अंधेरा दिखाई नही पड़ता है।

सत्य की खोज अंधकार की प्रतीति से शुरू होती है। प्रभु की खोज अंधकार के एहसास से शुरू होती है। प्रकाश की यात्रा अंधकार की गहन पीड़ा से शुरू होती है। तुमने अंधकार को ही जीवन मान रखा है। अंधकार के साथ तुमने तादात्म्य जोड लिया है। तुम शायद सोचते हो बस, यही जीवन है। यह तो जीवन की शुरुआत भी नही है।

जन्म के साथ जीवन की संभावना भर शुरू होती है। लेकिन लोग मान लेते है कि जैसे वे पूरे के पूरे पैदा हुए। सिर्फ संभावना थी; खो भी सकते हो संभावना को, वास्तविक भी बना सकते हो। एक-एक पल जाता है, उतनी ही संभावना क्षीण होती चली जाती है।

जिसे जीवन का यह बोध होगा वह बैठा न रह सकेगा। रोयेगा, चीखेगा, चिल्लायेगा। एक अज्ञात की आकांक्षा उसके भीतर जन्म लेगी। उसकी जीवन-धारा एक यात्रा बन जायेगी। वह डबरे की तरह पड़ा न रहेगा, सड़ेगा नही। वह सरिता की तरह बहेगा, वह खोजेगा सागर को।

और अगर बिना प्यास के तुम खोजने निकल गये और बिना अंधकार को अनुभव किए तुमने प्रकाश की चर्चा शुरू कर दी, जिज्ञासा शुरू कर दी, तो

कुछ हाथ न आयेगा। क्योंकि जिसे अंधेरा साल नहीं रहा है, कांटे की तरह चुभ नहीं रहा है, उसकी प्रकाश की बातचीत सिर्फ बातचीत होगी, मन बहलाव होगा, मनोरंजन होगा। एक बहाना होगा समय को काटने का, लेकिन यात्रा नहीं हो सकती। उसके पैर उठेंगे न।

जिसने अनुभव नहीं किया प्यास को, सरोवर उसके सामने भी आ जायेगा तो वह पहचानेगा कैसे! प्यास ही पहचानती है। अंधेरे के प्रति जाग गई आंख ही प्रकाश को पहचानती है। जीवन की पीड़ा को जब तुम अनुभव करोगे तभी तुम परमात्मा के उस महासुख की आशा से, आकांक्षा से, अभीप्सा से भरोगे।

और हमने उलटा ही किया है। हमने ऐसी व्यवस्था की है, कि हमें जीवन की पीड़ा कम से कम अनुभव हो। सारी संस्कृति, सभ्यता, समाज इसी प्रकार का आयोजन है, कि जिससे तुम्हें चोट न लगे। इतनी चोट लगे जितनी तुम सह सको, असह्य न हो जाय। इतनी बेचैनी न हो जाय, कि तुम अनंत की खोज पर निकलने लगो। तुम बंधे रहो खूंटे से यहीं।

थोड़ी स्वतंत्रता भी तुम्हें चाहिए, तो खूंटे की रस्सी तुम्हें थोड़ी स्वतंत्रता देती है। रस्सी से बंधे हो, थोड़ा घूम-फिर लेते हो आसपास। घूमने-फिरने से तुम्हें लगता है, स्वतंत्रता है। लेकिन तुम्हें ख्याल नहीं है, वह स्वतंत्रता केवल रस्सी की लंबाई है। ऐसे तुम खूंटे से ही बंधे हो।

संस्कृति की पूरी चेष्टा यही है, सारे संस्कारों का आयोजन यही है, जिसको जार्ज गुरजिएफ ने बफर पैदा करना कहा है। जैसे रेलगाड़ी के दो डब्बों के बीच में बफर लगे होते हैं; अगर धक्का लगे, एक्सीडेन्ट हो जाय, अचानक इंजिन रुक जाय और बीच में बफर न हो, तो सारे डब्बे एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जायेंगे। सारे डब्बे एक-दूसरे को इतनी भयंकर चोट देंगे, कि कई यात्री मर जायेंगे। सब अस्तव्यस्त हो जायेगा। तो दो डब्बों के बीच में बफर लगे हैं। बफर चोट को पी जाते हैं। चोट तो लगती है, थोड़ा-सा धक्का आता है, लेकिन सहने योग्य होता है।

कार में स्प्रिंग लगे होते हैं वे रास्ते के गड्ढों का पता नहीं चलने देते। गड्ढे तो आते हैं, पता भी चलता है, लेकिन इतना चलता है, एक भीतर का यात्री यात्रा ही बन्द नहीं कर देता; जारी रखता है, आदी हो जाता है।

जीवन के रास्ते पर भी गड्ढे बड़े हैं, अंधकार भयंकर है, पीड़ा बड़ी है, नारकीय है, लेकिन बफर समाज पैदा कर देता है, । वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। बफर झेल लेता है सारी तकलीफ को। तुम्हारे तक तकलीफ ही

नहीं आ पाती पूरी तरह से, तो तुम पीड़ा से ही न भरोगे, तो आनंद की खोज कैसे शुरू होगी?

जिस व्यक्ति को भी उस यात्रा पर जाना हो, उसे बफर तोड़ देने पड़ेंगे। उसे रास्ते के गड्ढों का सीधा-सीधा साक्षात्कार करना पड़ेगा। उसे जीवन की पीड़ा जैसी वह है, उसकी सचाई में ही एहसास करनी पड़ेगी।

एहसास करते ही तुम पाओगे, कि एक क्रांति शुरू हो गई। अब तुम इस जीवन से राजी नही हो सकते, महाजीवन चाहिए। क्योंकि यह भी कोई जीवन है! धोखा है जीवन का। सुबह उठ आते हो, सांझ सो जाते हो, फिर रोज सुबह वही दोहराते हो, फिर रोज सांझ वही दोहराते हो—कोल्हू के बैल हो। घूमते रहते हो एक परिधि में। लगता है, कहीं पहुँच रहे हो। ऐसा खयाल होता रहता है, भीतर भनक होती रहती है, कि अब—अब आई मंजिल, पर कोल्हू के बैल की कोई मंजिल होती है! वह गोल घेरे मे घूमता रहता है। वह वही के वही सदा है।

तुमने कभी इस पर खयाल किया, कि तुम सदा वही के वही हो, रत्ती भर भी आगे नही गये, ऊंचे नही उठे? जहाँ बचपन मे थे, तुम मरते वक्त अपने को वही पाओगे। शायद कुछ खो भला दो, उपलब्धि कुछ भी न होगी। बचपन का भोलापन खो जायेगा, निर्दोषता खो जायेगी, कुआरापन खो जायेगा, ताजगी खो जायेगी, लेकिन पाओगे क्या खोकर? सौदा बड़ा महंगा है। खो तो सब जाता है, मिलता है कुछ भी नही। बफर निश्चित ही बडे होंगे जो पता नहीं चलने देते।

कोई मर जाता है—मेरे पड़ोस मे, एक गांव में रहता था। कोई मर गया, तो मै गया। वहाँ देखा मैंने, कि लोग आत्मज्ञान की बाते कर रहे है। समझा रहे है, कि आत्मा तो अमर है, क्यों रोते हो? जो समझा रहे थे मैंने समझा, कि बडे ज्ञानी होंगे। क्योंकि इनको आत्मा की अमर होने का पता है। और दूसरो के दुःख मे सहारा देने आये हैं।

फिर संयोग की बात! जो समझा रहे थे—वे बड़े प्रखर थे समझाने में—कोई चार-छह महीने बाद उनकी पत्नी चल बसी। तो मैं वहाँ भी गया। मैंने सोचा, कि ये तो रोते न होंगे, परेशान न होते होंगे। ये तो जानते ही हैं। देखा, तो बड़ा हैरान हुआ। जिनके घर वे समझा रहे थे, वे अब उनको समझा रहे हैं, कि आत्मा तो अमर है, क्यों रोते हो? शरीर तो वस्त्रों की भांति है, छूट गया। आत्मा दूसरी जगह चली गई, दूसरे घर में प्रवेश कर लिया। कोई मरता थोड़े ही है।

यह बफर हैं। जब तुम्हारी जरूरत थी, पडोसी ने आ कर बफर संभाल लिए। अब पडोसी की जरूरत है, तुम गये; तुमने उसके बफर सभाल लिए। अन्यथा मौत तुम्हारी सारी व्यवस्थाओ को तोड देगी।

मौत भी नही तोड पाती है। मौत से भी बचाने के लिए तुमने स्प्रिंग लगा रखे हैं चारों तरफ—आत्मा अमर है। पर इस बात का स्मरण तुम तभी करते हो, जब कोई मर जाता है। मरघट पर जाओ, जहां लोग मुर्दों को भेजने आते हैं, वहां बडी ब्रह्मचर्चा होती है। वहाँ बडी ज्ञान की बाते होती है। और तुम सोच भी नही सकते, कि ये लोग गाव मे कभी ज्ञानी न मालूम पड़े, ये उपनिषद और वेदों का उल्लेख कर रहे है। वे बफर सभाल रहे हैं। किसी का टूट गया है मौत से, उखड गये है स्क्रू, यहा-वहाँ, वे कस रहे वापिस; ताकि वह फिर जीने के योग्य हो जाय। यह कोल्हू का बैल घबड़ा कर मौत को देख कर बैठ गया, उठता नही। वे उसे उठाने की कोशिश कर रहे हैं, वेद-उपनिषद् का सहारा ले रहे है। जुते रहो कोल्हू मे।

यदि मौत तुम्हे ठीक से दिखाई पडे, अगर तुम मौत का साक्षात्कार करो, तो क्या तुम्हे यह स्मरण न आयेगा, कि तुम भी मर रहे हो? दूसरे की मौत क्या दूसरे की ही मौत रहेगी, तुम्हारी अपनी मौत न बन जायेगी?

जब भी कोई मरता है, तुम भी मरते हो। जब भी कोई मरता है, तुम्हारा एक हिस्सा मरता है। जब भी कोई मरता है, तुम्हारी मौत का सदेश घर आता है। हर मौत तुम्हारी मौत की खबर है। लेकिन तब तुम आत्मज्ञान की बाते करते हो, ताकि खबर तुम तक न पहुँच जाय। तुम्हारी छाती मे छिद न जाय तीर मौत का, नही तो फिर तुम जीओगे कैसे! फिर कल सुबह तुम कैसे गुनगुनाते उठोगे? फिर कैसे तुम दफ्तर जाओगे, बाजार जाओगे, फिर तुम कैसे अपने कोल्हू मे जुतोगे?

अगर मौत दिख गई, तो तुम बैठ ही जाओगे। तुम कहोगे, जब मौत होनी ही है, तो यह जीवन जीवन नही है। जिस जीवन का अतिम परिणाम मौत हो, जिस जीवन का आखिरी हिसाब-किताब बस, सिर्फ नष्ट हो जाना हो, उसको कौन जीवन कहेगा?

कोई महा-जीवन चाहिए। कोई ऐसा जीवन चाहिए, जिसका आधार अमृत हो; जहाँ मिटना न होता हो, जहाँ खोना न होता हो। जब तक मिटना है, खोना है, तब तक होना ही नही है। जब मिटना-खोना सब समाप्त हो जाता है, तभी तो शुद्ध होने का पहली दफा आविर्भाव होता है।

लेकिन बफर जागने नहीं देते। हजार बार मौके आते हैं तुम्हारे जीवन में, जब तुम जाग सकते थे। वे मौके तुम्हें दादू बना देते, कबीर बना देते, लेकिन तुम नहीं जागते। तुम जल्दी से इन्तजाम जुटाने लगते हो, कि कैसे फिर से सो जाओ। यह सो जाने की प्रक्रिया कैसे तुम्हें समझने देगी, कि कबीर क्या कह रहे हैं, दादू क्या कह रहे हैं,नानक क्या कह रहे हैं। वे कुछ ऐसी भाषा बोल रहे हैं, वह उसी आदमी को समझ में आ सकती है, जिसने थोड़ा-सा अपनी व्यवस्थाओं को तोड़ना शुरू किया। जिसने थोडा वातायन बनाया, अपने चारों तरफ जुडे हुए जाल को जिसने थोड़ा काटा, संध बनाई, ताकि जीवन को देख सके।

यहाँ तो जीवन मृत्यु पर खडा है। यहाँ तो हर चीज मिटने को है। यहाँ तो सब कंपता हुआ है। यहाँ तो प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु की तरफ जा रहा है। पूरब से जाओ, पश्चिम से जाओ, दक्षिण से जाओ, कही से जाओ, आखिर में मौत मिल जाती है। और जब मौत होनी ही है दस साल बाद, बीस साल बाद, पचास साल बाद, सत्तर साल बाद, तो जिसको थोड़ा होश है वह समझेगा, मौत हो ही गई।

बुद्ध को ऐसे ही होश के क्षण में सारी संस्कृति की मूढता स्मरण आ गई। देखा एक मुर्दे को, पूछा अपने सारथि से, क्या हुआ इसे? उस क्षण मे बुद्ध की आँखों पर कोई भी संस्कार न होगा। असल में बुद्ध को बचाया गया था, संस्कार आँख पर पडने न दिए गये थे। बुद्ध जब पैदा हुए, ज्योतिषियों से पिता ने पूछा था, कि इस लड़के का भविष्य क्या है? ज्योतिषियों ने कहा, या तो यह होगा चक्रवर्ती सम्राट, और या हो जायेगा संन्यासी। दुनिया मे दो ही तरह के सम्राट है; एक तो चक्रवर्ती सम्राट है और एक संन्यासी सम्राट है। बाप न समझ पाये। बाप को बड़ी चोट लगी, कि संन्यासी हो जायेगा बेटा।

अब यह बड़े मजे की बात है, दूसरे का बेटा संन्यासी हो जाय, तो लोग उसके पैर छूने जाते है और कहते हैं, धन्यभाग तुम्हारे! खुद का बेटा संन्यासी होने लगे, तो प्राण पर बनती है। क्या मामला होगा? तुम दूसरे का बेटा संन्यासी होता है तो कहते हो, धन्यभाग! कैसी धार्मिक भावना पैदा हुई, कैसी उद्भावना, कैसे सच्चे संस्कार! धन्य वह कुल जिसमें तुम पैदा हुए! और जब तुम्हारे कुल में पैदा हुआ कोई संन्यासी होने लगे तो प्राण कंपते हैं; क्यों?

क्योंकि हर संन्यासी संस्कार को तोड़ता है। हर संन्यासी संस्कृति के पार जाता है। समाज के पार जाता है। हर संन्यासी यह कहता है, कि तुम्हारे

जीवन का ढंग गलत है। और जब बेटा सन्यासी होता है तो वह यह कह रहा है, कि बाप तुम्हारे जीवन का ढंग गलत है और यह बाप को बर्दाश्त नही होता। अपने ही बेटे से यह सुनना! कोई कहता नही है बेटा, लेकिन उसके संन्यासी होने से यह घटना फलित होती है, कि तुम्हारे होने का ढंग गलत है। यह बाप के अहंकार को बड़ी चोट हो जाती है। और फिर भय लगता है, कि मेरा सारा जीवन अस्तव्यस्त हुआ जा रहा है। खुद भी दिखाई पड़ने लगती है संध, खुद भी भूल एहसास होने लगती है, लेकिन अपने ही बेटे से हारने को कही कोई तैयार होता है!

बाप थोड़े दुःखी हुए और उन्होंने कहा, कि कुछ करना होगा। इसके पहले कि यह संन्यासी हो जाय, रोकना होगा। ज्योतिषियो ने कहा, फिर ऐसा करें, कि इस व्यक्ति को समाज से बिलकुल दूर ही रखे। इसको समाज मे जाने ही मत दे। न जायेगा समाज में, न कभी सन्यासियों को देखेगा, न कभी बात सुनेगा सन्यासियो की, हवा ही न लगेगी तो रग ही न चढ़ेगा। इसको जाने ही मत दे उस तरफ।

और दूसरा यह ख्याल रखे कि इसे मौत के निकट मत आने दे। अगर पत्ता भी सूख जाय इसके बगीचे का, तो इसके जाने बिना अलग कर दिया जाय। अगर यह पत्ते को सूखता देखेगा तो शायद मन मे प्रश्न उठे, कि अगर पत्ता सूख जाता है, तो कही ऐसा तो न होगा, कि मै भी सूख जाऊगा? कुम्हलाये हुए फूल को मत देखने देना इसे। बूढ़े आदमियो को पास मत आने देना इसके, अन्यथा यह पूछेगा, कि यह आदमी बूढ़ा हो गया, कही मै तो बूढ़ा न हो जाऊगा?

इसे एक सपने मे रहने दो। इसे घेर दो सुन्दर युवतियो से, शराब से, नाच-गान से, संगीत से। इसे याद ही मत आने दो, कि मौत भी है; क्योंकि जिसमें मौत की याद आ गई वह सन्यस्त हो ही जायेगा। जिसे मौत की याद आ गई उसे जीवन व्यर्थ हो गया। उसे नए जीवन की खोज शुरू हो गई। इसे मौत के करीब मत आने देना। इसे एक झूठे सपने मे लुभाये रखना।

ऐसा ही बुद्ध को बड़ा किया गया—एक झूठे सपने मे। मगर वही भूल हो गई। कभी तो आदमी सपने के बाहर आयेगा!

बुद्ध जवान हो गए। वे एक युवको के महोत्सव का उद्घाटन करने जाते थे। अब राज्य का भार उनके ऊपर आने को है, तो जीवन मे आना पड़ेगा। जाना पड़ेगा दरबार मे, समाज से जुड़ना पड़ेगा। और अब तक संस्कार से बिलकुल दूर रखा, जैसे यह आदमी सोया ही रहा, एक मीठे सपने में खोया रहा। चारो तरफ काव्य था। कही कांटे न थे, बस फूल ही फूल

थे। कहीं कोई पीड़ा न थी, जाना ही नहीं बुढ़ापे को, देखा ही नहीं बूढ़े आदमी को, जीवन में दुर्दिन पहचाना ही नहीं; बस, सौभाग्य ही सौभाग्य की वर्षा थी।

यह आदमी बड़ा कमजोर था; इसके पास बफर न थे। बफर पैदा करने हों, तो जीवन के संघर्ष में पैदा होते हैं, टकराहट में पैदा होते हैं, रोज मौत को देख-देख कर आदमी अपना बफर तैयार करता है, ताकि मौत से बच सके। रोज बूढ़े आदमी को देख-देख कर बफर तैयार करता है। ताकि यह याद न आये कि मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा। रोज आदमी मरता है, धीरे-धीरे तुम्हें पता ही नहीं चलता कि कोई मर गया। तुम देख लेते हो ऐसे, जैसे कुछ भी नहीं हुआ; जैसे साधारण-सी घटना है, तुम अंधे हो गए।

बुद्ध के पास संस्कार न थे, संस्कृति न थी, समाज न था। वे अकेले बड़े हुए और सोये-सोये बड़े हुए। सपने में खोये-खोये बड़े हुए। बड़ी मुश्किल हो गई। पहले ही आघात मे नींद टूट गई। बचानेवाली सुविधा संरक्षण की दीवाल न थी। राह पर देखा उन्होंने एक आदमी को मरा हुआ।

कहानी बड़ी मधुर है। मैंने बहुत बार कही। हर बार कहता हूं, तब मुझे लगता है उसमें कुछ नये आयाम हैं।

पहले तो उन्होंने देखा एक बूढ़े आदमी को; तो पूछा सारथी से यह आदमी को क्या हो गया? यह ऐसा लंगड़ा कर लूला-सा झुका-झुका क्यों चलता है? इसके चेहरे पर झुर्रियां क्यों पड़ी हैं? इसकी आँखें धुंधली क्यों मालूम पड़ती हैं? यह किसी का सहारा क्यों लिए हैं? पहली दफा बूढा देखा हो,—स्वभावतः तुम्हे यह प्रश्न नही उठता। तुमने इतनी बार देखा है और तुमने सुरक्षा कर ली है। तुमने इतने बचपन से देखा है; जब प्रश्न उठ ही नहीं सकता था, तबसे तुम बूढ़े को देखते रहे हो। अब क्या प्रश्न उठेगा!

बुद्ध को उठा, नयी घटना थी। सारथी ने कहा कि यह आदमी बूढ़ा हो गया है। बुद्ध ने कहा, यह बूढ़ा होना क्या है? सारथि ने कहा, मैं आपको कैसे समझाऊं? आज्ञा भी नहीं है। लेकिन आपने पूछा है तो झूठ भी नहीं बोल सकता।

कहानी यह है, कि सारथि तो झूठ बोलना चाहता था लेकिन देवताओं ने उसको झूठ न बोलने दिया। देवता उसमें प्रविष्ट हो गए। कहानी तो यह है, कि सारथि को रोका देवताओं ने, कि झूठ मत बोल क्योंकि यह घड़ी मुश्किल से कभी आती है कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। इस घड़ी के लिए हम सदियों से प्रतीक्षा कर रहे हैं; इस आदमी को भटका मत।

मतलब इतना है कहानी में, कि अशुभ तो चाहेगा कि संसार बचा रहे; शुभ चाहेगा कि संन्यास फलित हो। शैतान तो चाहेगा तुम संसार में आँख बंद कर के कोल्हू के बैल बने रहो, लेकिन शुभ वृत्तियां चाहेंगी, कि तुम जागो, प्रकाश का आरोहण करो। अभियान बड़ा है सामने, सूरज तक पहुँचना है तुम उसी की किरण हो।

देवताओं ने सारथि की जबान पर सवारी कर ली। उन्होंने उसके प्राणों को पकड़ लिया। उसने बोलना भी चाहा लेकिन वह बोल न सका झूठ। उसने कहा, यह आदमी बूढ़ा हो गया है, और हर आदमी बूढा हो जाता है और इससे बचने का कोई उपाय नही। आप एक सपने में जिये है।

बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी बूढा हो जाऊंगा?

बस, इसी प्रश्न पर सारा बुद्ध का जीवन-रूपातर टिका। जब कोई मरता है, क्या तुम पूछते हो मैं भी मर जाऊंगा? अगर तुमने पूछ लिया तो तुम कोल्हू के बैल न रह जाओगे। लेकिन तुम पूछते ही नही। तुम सदा सोचते हो कोई और मरता है, तुम तो कभी मरते ही नही। कभी 'अ' मरता, कभी 'ब' मरता, कभी 'स' मरता। तुम तो हमेशा मौजूद रहते हो पूछने को, कि कौन मर गया भाई! तुम तो सदा सान्त्वना देने को रहते हो, कि बहुत बुरा हुआ, अभी उम्र ही क्या थी! तुम तो सदा जिन्दा रहते हो। हमेशा कोई और मरता है।

लेकिन बुद्ध ने जो प्रश्न पूछा वह कोई भी व्यक्ति जिसके बफर न हों, पूछेगा ही स्वभावत:। असली सवाल यह नही है, कि कौन मर गया। असली सवाल यह है कि क्या मैं भी मरूंगा! क्योंकि उस पर ही तो सारे जीवन की व्यवस्था निर्भर होगी। अगर मुझे भी मरना है तो कैसे जिऊ, यह सवाल उठेगा। कैसे जीऊं, कि मरने के पार जा सकूं? और अगर मरने के पार जाने का कोई उपाय ही नही है, तो जीने मे कोई सार नही है। तो फिर जिऊं ही क्यो? फिर कल तक भी प्रतीक्षा किस बात की? फल तो लगने ही नही है, जीवन ऐसे ही जाना है।

कोल्हू का बैल भी बैठ जायेगा अगर उसको भी पता चल जाय कि जिंदगी भर ऐसे ही कोल्हू चलाना है। और कोई परिणति नही है, कोई परिणाम नही है, कोई फल नही है, कही पहुँचूगा नही। ऐसे जुता-जुता ही कोल्हू मे मर जाऊंगा।

बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी बूढा हो जाऊंगा? सारथि कहना चाहता था, आप कैसे बूढ़े हो सकते है, लेकिन देवताओं ने जबान पकड़ ली और उससे

कहलवाया, कि नहीं; कहना तो मैं नहीं चाहता हूँ, लेकिन मजबूरी है, सत्य को झुठला भी नहीं सकता। आप भी बूढ़े हो जायेंगे, कोई भी अपवाद नहीं है।

बुद्ध उदास हो गये। जो भी जीवन को देखेगा वह तत्क्षण उदास हो जायेगा। यह सारा जीवन एकदम झूठा है। यह जीवन सपने से भी पतला है। इसे जरा कुरेदो और मौत मिल जाती है। यह बड़ी पतली धार है। इसके भीतर मौत ही मौत छिपी है।

बुद्ध का मन लौटने का होने लगा लेकिन तभी उन्होंने देखा कि एक अर्थी गुजर रही है, तो पूछा यह कौन है? इसको क्या हुआ? इस आदमी को क्यों बांधा हुआ है बांसों के ऊपर? इसने क्या भूल-चूक की है? सारथि ने कहा, भूल-चूक कुछ भी नही की, यह मर ही गया। यह अब जिन्दा ही नही है। बुद्ध ने कहा, क्या मैं भी मर जाऊँगा? सारथि ने कहा, बुढ़ापे के बाद वही कदम है, अनिवार्य कदम है, सभी को मरना होता है।

बुद्ध ने कहा, फिर लौटा लो रथ को वापिस; फिर युवक-महोत्सव में जाने का क्या अर्थ! बूढ़ा तो मैं हो ही गया। और मौत तो आ ही गई। कल आयेगी, कि परसों, इससे क्या फर्क पड़ता है। आ ही गई।

लेकिन हटने को ही थे, रथ लौटने को ही था, कि एक संन्यासी को देखा। यह ठीक क्रम है। बुढ़ापे की स्मृति, मृत्यु का बोध, सन्यास का भाव। एक गैरिक वस्त्र संन्यासी को देखा। ऐसा आदमी बुद्ध ने कभी न देखा था। उन्होंने पूछा इस आदमी को क्या हुआ है? इसने गैरिक वस्त्र क्यों पहन रखे है? और यह कुछ अलग ही मालूम पड़ता है। इसकी चाल में ढंग और! इसकी आँख में रंग और! इसकी जीवन-शैली ही अलग मालूम पड़ती है, ऐसा आदमी मैंने कभी नही देखा। इसके चलने में एक गरिमा है, एक प्रखर प्रकाश है। इसके चेहरे पर दीप्ति कहाँ से आई? इसे क्या हो गया है?

उस सारथि ने कहा, कि जैसे आपने बूढे को देखा और मुर्दे को देखा, इसने भी देखा और पहचान लिया। इसने संसार छोड दिया है। इसने एक नये जीवन को बनाने की कसम ले ली है, प्रतिज्ञा ले ली है।

संन्यास का अर्थ है, यह जीवन जैसा हम उसे जीते हैं व्यर्थतापूर्ण है। यह रेत से तेल निचोड़ने जैसा है। इसकी परिणति कुछ भी नहीं है। यह पानी पर उठे बबूलों जैसा है। आज है, कल फूट जायेगा। फूट जायेगा तो पीछे कोई रूपरेखा भी न बचेगी। इसमें जो गया वह व्यर्थ ही गया है। जितना समय बीता, वह यूं ही बीत गया है।

संन्यास का अर्थ है, एक नये जीवन की उद्भावना, एक नये जीवन का सूत्रपात, जीने का एक नया ही ढंग, जागे हुए जीने की तरकीब, बिना बफर के, बिना किसी सुरक्षा के—असुरक्षित, बिना किसी व्यवस्था के, बिना किसी धारणा के, बिना समाज, बिना संस्कृति-संस्कार के, एक निर्दोष जीवन की प्रक्रिया।

सारथि ने कहा, यह व्यक्ति संन्यस्त हो गया। बुद्ध को उसी दिन संन्यस्त होने का भाव पैदा हो गया। उसी रात उन्होंने महल छोड़ दिया।

जिस दिन तुम्हें भी दिखाई पड़ जायेगा कि जीवन एक अंधकार है, उसी दिन तुम प्रकाश की खोज पर निकल जाओगे। अभी तुमने अंधकार को ही प्रकाश समझ रखा है। तुम बड़े मजे से जी रहे हो।

इसलिए तुम डरते भी हो उन लोगों के पास जाने से, जो तुम्हे जगा दें और चौंका दें। क्योंकि वे तुम्हारी नींद तोड़ देंगे। और उनके कारण तुम्हारे जीवन में एक नई यात्रा शुरू होगी, जो कि बड़ी कठिन है। कठिन इसलिए, कि तुम्हारे पैर अंधेरे में इस तरह जम गये हैं, कि प्रकाश की तरफ उठेंगे ही नहीं। तुम्हारी आँखें अंधेरे की इतनी आदी हो गई हैं, कि तुम प्रकाश की तरफ देखोगे तो बंद हो जायेंगी। कठिन इसलिए नहीं है कि सत्य कठिन है।

सत्य तो बड़ा सहज है—"सुख सुरति सहजे सहजे आव।" वह तो बड़ा सुखपूर्वक आ जाता है। सीधे-सीधे, चुपचाप चला आता है। पगध्वनि भी नहीं होती, कुछ करना भी नहीं होता और आ जाता है। सत्य तो सरल है। तुम कठिन हो, इसलिए यात्रा कठिन होगी।

तो जो डरे हुए हैं, कमजोर हैं, कायर हैं, वे यात्रा पर ही नहीं निकलते, हारने के भय से, टूटने के डर से। पराजित होने के कारण वे युद्ध के स्थल पर ही नहीं जाते। वे पीठ किए खड़े रहते हैं।

और युद्ध पर न जाना हो तो सबसे अच्छी तरकीब यही है, कि तुम कहो, युद्ध है ही नहीं। क्योंकि अगर युद्ध है और तुम नहीं जा रहे, तो मन कचोटेगा, अपराध अनुभव होगा। अगर परमात्मा की तरफ न जाना हो तो सबसे गहरी व्यवस्था नास्तिक की है। वह कहता है, परमात्मा है ही नहीं। वह कह रहा है, कि प्रकाश है ही नहीं, कहाँ की बातों में पड़े हो? अंधेरा ही बस है। नास्तिक डरा हुआ है। अगर प्रकाश है, तो जाना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा। अगर सत्य है, तो फिर कैसे असत्य में बैठे रहोगे? इसलिए वह कह रहा है, कि सत्य है ही नहीं।

मैं एक आदमी को जानता हूँ, वे डाक्टर के पास जाने से डरते हैं। उनको कैंसर है, लेकिन वे डाक्टर के पास जाने से डरते हैं। वे कभी-कभी मेरे पास आते हैं। वे मुझसे कहलवाना चाहते हैं, कि मैं कह दूं, कैंसर नहीं है। वे कहते हैं, आप तो मुझे जानते हैं। आप तो सभी जानते हैं, मैं कहीं बीमार हूँ! मैं तो बिलकुल ठीक हूँ।

लेकिन जब वे यह कहते हैं "मैं बिलकुल ठीक हूँ," तब उनके हाथों में कंपन साफ है। उनकी आँखों में भय है। उनसे सच बोलने में मुझे भी कठिनाई होती है, कि उनको कहना क्या! वे अपनी पत्नी से पूछते हैं, अपने बेटों से पूछते हैं, मैं ठीक हूँ न? कोई गड़बड़ तो नहीं है। और अगर कोई उनसे कहे कि जरा डाक्टर के पास चल कर जांच-पड़ताल करवा लो, तो वे कहते हैं, किसलिए? जब मैं ठीक ही हूँ,। तो बहुत दिन तक तो वे गये न। डाक्टरों को शक था। उनकी पत्नी मेरे पास आई और उसने कहा, हम थक गये हैं इनको भेजने से। ये तो जाते नहीं और जाने की बात करो। तो ये कहते हैं किसलिए? मैं बिलकुल ठीक हूँ। और ये ठीक हैं नहीं। इनकी हालत खराब है, ये रोज दुर्बल होते जाते हैं, रोज इनका वजन गिरता जा रहा है, मगर ये कहते हैं कहाँ गिर रहा है वजन? सब ठीक है। ये बात ही नहीं उठने देते बीमारी की। बीमारी की चर्चा से ही भयभीत होते हैं। इनको कोई भय समा गया है भीतर। इनको मैं कैसे डाक्टर के पास ले जाऊं?

मैंने कहा, तुम मेरे पास लाओ। वे लाये गये। मैंने उनसे पूछा, क्या आप क्या बीमार हो? उन्होंने कहा, कि नहीं। तो मैंने कहा, डाक्टर के पास जाने से क्यों डरते हो? यह बेचारी पत्नी परेशान हो रही है, इसको भय समा गया है, इसका दिमाग खराब है। आप तो बिलकुल ठीक हैं। मैं भी देखता हूँ, कि आप बिलकुल ठीक हैं। पत्नी की तृप्ति के लिए आप चले जाओ। उन्होंने कहा, अब आप ऐसा कहते हैं, तो चला जाऊंगा। लेकिन उनके हाथ पैर कंप रहे हैं। अब बड़ी मुश्किल में खड़े हो गये हैं, कि अब क्या कहें! जब हैं ही नहीं बीमार, तो डरना क्या है?

ईश्वर नहीं है, ऐसा नास्तिक कह कर अपने को सान्त्वना दे रहा है। नहीं है, तो फिर खोज पर जाने की कोई जरूरत नहीं है। सो जाओ, विश्राम करो। जहां हो, वहीं ठीक है।

जो नास्तिक नहीं हैं, उन्होंने भी बचने की तरकीबें निकाल ली हैं उन्होंने और भी सस्ती तरकीबें निकाल ली हैं। मंदिर हो आते हैं, मस्जिद हो आते हैं, गुरुद्वारा चले जाते हैं, चर्च पर रविवार को जा कर प्रार्थना कर

आते हैं। एक सामाजिक औपचारिकता है, पूरी कर लेते है कि पता नहीं भगवान हो ही! तो कहने को रहेगा, कि हम हर शनिवार को मंदिर आते थे, कि हर रविवार को चर्च आते थे, कि हर शुक्रवार को मस्जिद आते थे। याद ही होगा, आपके हिसाब-किताब मे तो लिखा ही होगा। कही हो, तो कुछ कर लेते है, ताकि ऐसा न हो कहने को, कि हमने कुछ भी न किया।

वे भी अपने को बचा रहे है। क्योंकि मंदिर जाने से कही कोई परमात्मा तक पहुँचा है। हाँ, परमात्मा तक जो पहुँच जाता है, वह मंदिर तक जरूर पहुँच जाता है।

इसे थोडा ठीक से समझ लेना। मंदिर जाने से कोई परमात्मा तक अगर पहुँचता होता, तो सभी लोग मंदिर जाते है, पहुँच गये होते। मंदिर जाने से तो कोई पहुँचता नही दिखाई पडता। जरूर मंदिर तरकीब है बचने की। वह धोखा है, वह असली मंदिर तक जाने से बचने का उपाय है; तो तुमने एक नकली मंदिर बना लिया है। उस नकली मंदिर मे तुम हो आते हो, वह बिलकुल सस्ता है। उनमे कुछ भी नही लगता। दो पैसे चढा आये, दो फूल रख आये, वे भी किसी दूसरे के बगीचे से तोड़ लिए हैं। सिर झुका दिया—बिना झुके। अहंकार तो अकड़ा ही खडा रहा, सिर लगा दिया। पत्थर के सामने सिर लगाने मे अड़चन भी नही होती। जिंदा आदमी के चरणों मे सिर लगाने मे अड़चन भी होती है।

महावीर को छूने मे डर लगा होगा। महावीर की मूर्ति के चरणो मे सिर रखने मे किसी को डर नही लगता। वहाँ कोई है ही नहीं, तो झुकने मे डर क्या है। बुद्ध के सामने झुकने मे पीडा हुई है। लेकिन बुद्ध की प्रतिमा के सामने करोडो लोग झुक रहे है। जिन लोगों ने जीसस को सूली दी, वे ही उनके चर्च खड़े करके उनके चरणो में झुक रहे है। क्रॉस के सामने झुक रहे है, जीसस के सामने न झुके। कुछ मजा मालूम होता है।

जीसस मे खतरा है। अगर झुके तो यह आदमी तुम्हे जगायेगा। तुम झुके कि इसने तुम्हारी गर्दन पकड़ी। यह तुम्हे हिलायेगा। यह तुम्हारी नींद को तोड देगा। इसके पास जाने से तुम डरते हो। हाँ, मिट्टी के गणेश बिलकुल ठीक है। वे कुछ कर नही सकते। वे तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है। जब तुम उनको बनाओ, तब बन जाते है। जब तुम उनको डुबाओ नदी मे, तो डूब जाते है। उनका कुछ है नही; उनका कोई बस तुम पर नही। तुम्हारे बस में वे हैं।

तो तुमने झूठे भगवान खड़े किए हैं, जो तुम्हारे बस में हैं। झूठे मंदिर खड़े किए हैं। यह मंदिर से बचने की तरकीब है। यह परमात्मा के पास

जाने से बचने का उपाय है। तुमने अपने घरघूले बना लिए हैं, खेल बना लिया है। तुम उसी में रमे हुए हो। अगर तुम ये उपाय न करो, तो तुम्हें एक न एक दिन परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

नास्तिक बच रहे हैं इंकार करके; आस्तिक बच रहे है स्वीकार करके। कभी-कभी कोई आदमी न तो इन्कार करता, न स्वीकार करता, खोज पर निकलता है। मैं उसी को धार्मिक कहता हूँ, जो न तो आस्तिक है, न नास्तिक है; खोजी है, मजी है, जो कहता है जीवन दाव पर लगा देंगे, लेकिन खोज करके रहेंगे। उसके जीवन मे अंधेरे के प्रतीति हुई है। अब वह प्रकाश चाहता है। उसने प्यास को जाना है और जीवन के मरुस्थल को जाना है। वह मरूद्यान की खोज मे है। वह किसी सरोवर की तलाश मे है। और वह तलाश बौद्धिक नही है, उसका रोआं-रोआं प्यास से प्यासा है।

दादू उसी की बात कर रहे है। वे कहते है :

"मन चित चातक ज्यू रटैं, पिव पिव लागी प्यास।"

ऐसी बौद्धिक बातचीत से परमात्मा कुछ मिलेगा नही, कि तुम बैठ कर गीता पढ़ लो, कि दर्शन शास्त्र का विचार कर लो; नहीं, इससे कुछ न होगा "मन चित चातक ज्यू रटे"। जैसे चातक चिल्लाता है रात भर—'पिव पिव लागी प्यास'। "पियू पियू" कहे चला जाता है। साधारण जल से राजी नही होता, स्वाती की बूद की प्रतीक्षा करता है। वर्ष बिता देता है। दिन आते हैं, जाते हैं, चातक की रटन बढ़ती चली जाती है।

चातक तो एक काव्य-प्रतीक है। चातक तो कवियो की कल्पना है, कि स्वाती नक्षत्र मे यह चातक नाम का पक्षी केवल स्वाती नक्षत्र के पानी को ही पीता है। बाकी साल भर रोता रहता है। साधारण जल उसे तृप्त नहीं करता, स्वाती का परम जल चाहिए।

यह तो कवि की कल्पना है। लेकिन संत के लिए यह कल्पना नहीं है, यह उसका अनुभव है। संत साधारण जल से राजी नही, परमात्मा के जल से ही राजी है। साधारण भोजन उसकी भूख को नही मिटा पाता, वह तो जब परमात्मा के साथ ही लीन हो जाय, तब तक भूखा रहेगा। साधारण प्रेम उसे तृप्त नही कर पाता। जब तक परमात्मा की ही वर्षा उस पर न हो जाय, जब तक परम प्रेम न आ जाय तब तक वह प्यासा ही रहेगा। तब तक यह साधारण जगत का प्रेम तो उसकी प्यास में और जैसे अग्नि मे घी का काम होता है, ऐसा काम करेगा। इस प्रेम से तो वह और भी प्यासा होने लगेगा। इस प्रेम से तो उसे खबर मिलने लगेगी कि और भी बड़ी

सम्भावनायें हैं जिनके द्वार खुलते हैं। यह प्रेम उसे केवल प्रार्थना की याद दिलायेगा। यह प्रेम उसे परमात्मा की तरफ और भी आतुरता से भरेगा।

"मन चित चातक ज्यू रटै पिव पिव लागी प्यास।"

बस, उस प्यारे को ही प्यास लगी है। वही बुझा सकेगा।

दादू के शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं, वे कहते है, "मन चित"। मन के लिए भारत में बहुत शब्द है ऐसा दुनिया की किसी भाषा में नही है। अंग्रेजी मे एक ही शब्द है—"माइन्ड", लेकिन भारत में बहुत शब्द हैं। इसमे दो शब्दो का प्रयोग कर रहे है दादू: मन, चित-चातक।

साधारण मन तो तुम्हारे पास है, चित तुम्हारे पास नही है। जब तक मन अंधेरे से राजी है तब तक वह चित नही है। जब मन चैतन्य की प्यास से भरता है और चैतन्य के आरोहण पर निकलता है, और जब कहता है चैतन्य होना है और चेतना है, जागना है, जागरण की अभीप्सा जब मन में पैदा होती है तब मन चित हो जाता है। तब मन साधारण मन न रहा। तब एक नई ही घटना घट गई। वह चैतन्य होने लगा।

मन साधारणत. अचित है, वह बेहोश है। तुम्हारा मन तो बिलकुल बेहोश है। तुम्हे पता नही तुम्हारा मन तुमसे क्या करवाता है। तुम करते रहते हो। जैसे कि कोई शराब के नशे मे कर रहा है। किसी ने गाली दी, तुम्हे क्रोध आ गया। तुम कहते जरूर हो, कि मैंने क्रोध किया, अब मै क्रोध न करूगा, लेकिन तुम गलत कहते हो। तुमने क्रोध किया नही। मन ने क्रोध करवा लिया। तुम मालिक नही हो। इसलिए तुम यह मत कहो, कि मैंने क्रोध किया। अगर तुम करने ही वाले होते तब तो तुम्हारे बस मे होता करते, या न करते। तुम मालिक नही हो। मन ने क्रोध करवा लिया है। तुम्हारा बस नही है। तुम कसम भी खाओ कि अब न करेंगे, कुछ हल नहीं होता। दूसरे दिन फिर जब घड़ी आती है, फिर क्रोध हो जाता है।

क्रोध तुम्हारी बेहोश अवस्था है—मूछित। मन मूछित है। मन मूर्च्छा है। इसलिए मन तो परमात्मा की प्यास से नही भर सकता। लेकिन मन जब चित हो जाता है—चित का मतलब मन जब जागने लगता है और चैतन्य होने लगता है, जब तुम प्रत्येक कृत्य को जाग कर करने लगते हो; भोजन करते हो—अभी तो भोजन करते हो, बैठे भोजन की थाली पर होते हो, मन दुकान पर होता है, बाजार में होता है, न मालूम कहां कहां होता है। एक बात पक्की है, तुम जहां होते हो वहां मन नही होता। तुम यहां बैठे हो, तुम्हारा मन कही और पहुँच गया होगा। तुम कहीं भी जा सकते हो—मन।

अगर तुम्हारा मन कहीं और चला गया और तुम यहाँ बैठे हो, तो तुम यहाँ बेहोश बैठे हो। तुम्हारा यहाँ होना न होना बराबर है। शरीर यहाँ है, तुम यहाँ नहीं हो। तुम्हारी मौजूदगी मौजूदगी नही है, एक तरह की गैर-मौजूदगी है।

मन मूर्च्छा है। उठते, बैठते, तुम सब काम कर रहे हो, लेकिन यंत्रवत। तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं है, क्यों कर रहे हो? अगर तुम कारण को खोजने जाओ तो तुम बड़े हैरान होओगे कि कारण कुछ और ही होंगे, कारण तुम कुछ और ही समझते रहे। अगर तुम अपने मन का निरीक्षण करो तो धीरे-धीरे तुम्हें समझ में आयेगा।

दफ्तर में तो तुम नाराज़ हुए थे और आ कर पत्नी पर टूट पड़े। पत्नी का कोई कसूर ही न था। लेकिन तुमने कोई कसूर खोज लिया, कि आज रोटी जल गई है, कि दाल में नमक नही है। ऐसी घटनायें रोज ही घटती थी। लेकिन रोज तुमने न पकड़ी थी, आज तुमने पकड़ ली। आज क्रोध तैयार था। तुम दफ्तर से भरे आये थे। क्रोध तो आया था दफ्तर में मालिक पर, लेकिन मालिक पर क्रोध बताना बहुत महंगा सौदा हो जायेगा। वहाँ तुम न बता पाये। वहाँ तो तुम मुस्कुराते रहे। वहाँ तो तुम पूछ हिलाते रहे। अब क्रोध भरा है हृदय में, वह बरसना चाहता है। तुम कोई कमजोर व्यक्ति चाहते हो, जिस पर टूट पडे।

पत्नी हमेशा उपयोगी है। उसके कई उपयोग है। बड़ा उपयोग तो यह है, कि हारे-पिटे बाज़ार से लौटे, पत्नी पर टूट पड़े। अब पति पत्नी पर टूटे तो पत्नी क्या---उसकी मारपीट तो कर नही सकती। पश्चिम में तो उन्होंने शुरू कर दी, पूरब में अभी नही कर सकती। तो वह बेटे की राह देखेगी। जब वह स्कूल से लौट आये, तब वह बेटे पर टूट पड़ेगी। क्योंकि पति तो परमात्मा है। ऐसा पतियों ने ही पत्नियों को समझवा दिया है। हजारों साल से शिक्षण दिया है, कि पति परमात्मा है। पत्नियां जानती भी है कि हैं नहीं परमात्मा, भलीभांति जानती है। उनसे ज्यादा और कौन जानेगा? लेकिन मानना पड़ता है।

जैसे पति डरता है दफ्तर में मालिक को नाराज करने से, ऐसा पत्नी भी डरती है इस मालिक को नाराज करने से, जो पति है। क्योंकि उसकी भी आर्थिक रूप से वैसी ही परतन्त्रता है, जैसी तुम्हारी दफ्तर में है। वह कमा नहीं सकती। तुम पर आर्थिक रूप से निर्भर है। वह क्या करे? वह प्रतीक्षा करेगी। ऐसे ऊपर से कुछ नही कहेगी, सब ठीक चलेगा, लेकिन बच्चे की राह देखेगी। यह सब अचेतन हो रहा है। यह मूर्च्छा-----

बच्चे का कोई कसूर नहीं है। बच्चा अपना खेलता-कूदता चला आ रहा है। उसे कुछ पता ही नहीं है, कि घर में कौन सा उपद्रव राह देख रहा है। वह कोई भूल देख लेगी, कि तुम आज कपड़ा खराब करके लौटे, कि धूल लगा ली, कि कीचड़ लगा ली, कि स्लेट फोड़ डाली। वह रोज ही यह करके लौट रहा है। मगर आज उसकी पिटाई हो जायेगी।

बच्चा क्या करे? वह जा कर कमरे में अपनी गुड़ियां की टांगें तोड़ कर खिड़की के बाहर फेंक देगा। वह जो दफ्तर में शुरू हुआ था, गुड़िया पर पूरा हुआ।

ऐसी अंधी यात्रा है। तुम कहीं क्रोधित हो, कहीं निकालते हो। तुम कहीं प्रेम से भरते हो, कहीं उडेलते हो। तुम जाग कर नहीं जी रहे हो। तुम आज क्रोधित होते हो, साल भर बाद निकालते हो। भरा रहता है। भरते चले जाते हो।

मनस्विद् कहते हैं कि जो व्यक्ति रोज क्रोध कर लेते हैं, वे खतरनाक नहीं हैं क्योंकि उनका क्रोध छोटा छोटा होता है। छोटा सा बादल आया, बरसा, चला गया। लेकिन जो लोग क्रोध को इकट्ठा करते चले जाते हैं और शांत बने रहते हैं, वे बड़े खतरनाक हैं। जिस दिन उनका बादल आयेगा उस दिन वे किसी की हत्या करेंगे, इससे कम नहीं। वे किसी दिन किसी का प्राण लेंगे। ऐसे आदमी से जरा बच कर रहना, जो रोज-रोज क्रोध न करता हो। क्योंकि वह किसी दिन---जिस दिन फूटेगा तो विस्फोट होगा।

तुम्हारा मन तो मूर्छित है। इस मन से तो परमात्मा की रटन न लगेगी। मन को चित बनाना पड़ेगा। चित का अर्थ है, कॉंससनेस, चैतन्य। मन को पहले जगाओ।

बुद्ध से कोई पूछता था, हम परमात्मा को कैसे खोजें? वे कहते, यह बात ही मत करो। परमात्मा का तुमसे क्या लेना-देना! तुम्हारा परमात्मा से क्या लेना-देना! तुम चित को जगाओ। बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की। वे कहते, तुम चित को जगाओ, फिर शेष अपने से होगा। एक बार तुम जाग कर देखने लगो जीवन को, थोड़ी-सी होश की किरण आ जाय, थोड़ी सी तुम्हारी आँखों में देखने की क्षमता आ जाय, कानों में सुनने की क्षमता आ जाय, हाथ में छूने की क्षमता आ जाय, तो खुद ही पाओगे, कि यह जीवन कुछ भी नहीं है। तुम किसी और जीवन की खोज से भर जाओगे।

"मन चित चातक ज्यूं रटै"—और जैसे चातक रटता ही रहता है, अपने प्यारे को ही पुकारता रहता है, "पिऊ पिऊ" की आवाज लगाये रखता है और प्रतीक्षा करता है, ऐसा यह मन चित-चातक अब एक ही रटन से भर गया है—"पिव पिव लागी प्यास।"

"दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।"

कुछ चाहिए नहीं, सिर्फ दर्शन के कारण, सिर्फ दर्शन की इच्छा है। कुछ चाहिए नही। परमात्मा की तरफ अगर तुम कुछ मांगते गये तो तुम गये ही नहीं। क्योंकि तुम्हारी सब मांग संसार की माग होगी। तुम मांगोगे कि बेटा बीमार है, ठीक हो जाय। अदालत मे मुकदमा है, जीत जाऊं। बेटा पैदा नही होता, पैदा हो जाय। तुम कुछ भी मांगते जाओगे, तुम परमात्मा को नही मांग रहे। तुम्हारी हर मांग संसार की मांग होगी।

परमात्मा को मांगने वाला तो कुछ भी नही मांगता। वह तो कहता है, दर्शन काफी है। तुम दिख जाओ, बस, इतना पर्याप्त है। तुम दिख गये फिर और बचता भी क्या है? तुम्हे देख लू भर आख—पर्याप्त है। इससे ज्यादा की कोई आकांक्षा नही है। "दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस। बस, मेरी एक आस है, एक ही आकांक्षा है, कि तुम्हे देख लू। सत्य को देख लू।

क्यों? इतनी-सी आस पर क्यों रुक जाता है भक्त? क्योंकि भक्तों ने जाना है सदियों में निरन्तर अनुभव से, कि जिसका दर्शन हो गया परमात्मा से, दिखाई पड गया, वह उसके साथ एक हो जाता है। जान लिया जिसने सत्य, वह सत्य हो जाता है। परमात्मा को देख लिया जिसने, वह परमात्मा हो जाता है। उस दर्शन के बाद कोई लौटता नही है। उस दर्शन के बाद तुम बचते नहीं। वह दर्शन इतनी महाअग्नि है, कि वह तुम्हें समाहित कर लेती है अपने में। तुम अपने घर वापिस लौट जाते हो। इसलिए दर्शन की बात मागनी काफी है; बाकी शेष अपने आप हो जाता है।

"दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।"
दादू विरहिन दुख कासनि कहे कासनि देइ संदेस।
पंथ निहारत पीव का विरहिन पलटे केस।"

कहते हैं, कि मै किससे कहूँ अपना दुःख? विरहन दुःख कासनि कहे? दुःख मैं किससे कहूँ? क्योंकि मेरा दुःख दूसरे लोग समझ भी न पायेंगे। वे तो समझेंगे कि तुम दीवाने हो गये, पागल हो गये। अगर तुमने किसी से कहा...।

बैठे रो रहे हो; अगर तुम किसी से कहो—किसलिए रो रहे हो? और तुम कहो कि तिजोड़ी खो गई, वह समझ लेगा, कि बात ठीक है। वह भी रोता अगर तिजोड़ी खो जाती है। तुम कहो कि पत्नी मर गई, वह कहेगा बिल्कुल ठीक है। हम भी रोते अगर पत्नी मर जाती। लेकिन तुम अगर कहो कि परमात्मा का दर्शन नही हो रहा है इसलिए रो रहे हैं, तो वह तुम्हारी तरफ देखेगा इस तरह, जैसे तुम पागल हो गये हो। तिजोड़ी की बात समझ में आती है, दीवाला निकल गया, रो रहे हो, समझ मे आता है; पत्नी जल गई, रो रहे हो, समझ में आता है; हार गये जीवन मे, समझ मे आता है। लेकिन परमात्मा के दर्शन के लिए रो रहे हो, किसी की समझ मे न आयेगा। वह प्यास जिनको समझ मे आती है, उनको ही वह भाषा भी समझ मे आयेगी।

दादू विरहिन दुःख कासनि कहे? किससे कहूँ यह अपना दुःख? किससे कहूँ यह विरह? किससे कहूँ यह पीड़ा?

और "कासन देई संदेस"—और किसके हाथ संदेश भेजूं? परमात्मा के पास कैसे संदेशा जाये? कैसे परमात्मा को खबर करूं, कि मेरी पीडा का अब अंत करो? कोई उपाय नही दिखाई पड़ता। संदेश भेजने की कोई सुविधा नही है। अपने दुःख को किसी से कहने का उपाय नही है।

"पंथ निहारत पीव का"—इसलिए भक्त क्या करे? वह राह देखता है प्रेमी की, परमात्मा की।

"पंथ निहारत पीव का विरहिन पलटे केस।"

और तैयार करता रहता है अपने को, कि पता नही तुम किसी भी क्षण मे आ जाओ। ऐसा न हो, कि तुम मुझे गैर-तैयार पाओ। तो अपने केस को सम्हालती जाती है और राह को देखती रहती है। विरहन केश को सम्हालती जाती है। यह बड़ी प्यारी बात है। सारा संन्यास केश का सम्हालना है परमात्मा के लिए। सारी साधना स्वयं को तैयार करना है उस घड़ी के लिए, कि अगर वह आ ही जाय, तो ऐसा न हो, कि वह मुझे गैर-तैयार पाये।

रवीन्द्रनाथ की एक बड़ी महत्वपूर्ण कविता है। एक बड़ा मंदिर है, जिसमें सौ पुजारी है। प्रधान पुजारी को स्वप्न आया है, कि परमात्मा ने कहा, कि कल मैं आता हूँ। हजारों साल पुराना मंदिर है। हजारों साल से पूजा-अर्चना हुई है। ऐसा कभी हुआ नही, कि परमात्मा आया हो। वह पत्थर की मूर्ति की ही पूजा चलती रही है। पुजारी भी थोड़ा चौंका। उसको भी सपने पर

भरोसा न आया। फिर भी उसे डर लगा सुबह, कि अगर कहीं ऐसा हो कि यह हो ही जाय, तो फिर मैं ही फसूंगा।

तो उसने सब पुजारियों को इकट्ठा कर लिया और कहा, कि ऐसा सपना आया है। भरोसा मुझे है नही, यह मैं कहे देता हूँ। मैं कोई पागल नहीं हूँ, कि सपने पर भरोसा करूं। लेकिन तुमसे सपना भी कहे देता हूँ। अब तुम जैसा सब सोचो वैसा हम कर करें। सभी ने कहा कि कहीं आ जाय, तो फिर सब क्या करेंगे? इसलिए तैयारी तो कर लेनी चाहिए। हर्ज कुछ भी नही है। अगर न आया तो जो भोग के लिए तैयार करेंगे वह हम ही प्रसाद ले लेंगे। और ऐसे भी मंदिर की सफाई नही हुई बहुत दिन से, सफाई हो जायेगी।

तो दिन भर मंदिर की सफाई की गई, भोग तैयार किया गया, फूल सजाये गये, धूप बारी गई, मगर भरोसा तो किसी को था नही। मंदिर के पुजारियों से ज्यादा कम भरोसेवाले आदमी और कही पाना भी मुश्किल है। पुजारी तो भलीभांति जानता है कि यह सब ढोंग है, धंधा है। वह तो जानता है, यह पत्थर की मूर्ति है, इसमें कुछ सार नही है। अगर वह उसके सामने आरती भी झुलाता है, तो वह पत्थर की मूर्ति को प्रसन्न करने के लिए नही, वे जो पीछे खडे भक्तगण हैं जिनसे उनकी तनखाह मिलती है, उनको प्रसन्न करने के लिए। उसकी आरती समाज की आरती है, सत्य की नही। वह तुम्हारी पूजा कर रहा है क्योंकि तुमसे नौकरी पा रहा है। वह तो भलीभांति जानता है कि सब सपने सपने है।

लेकिन तैयारी की, सब तरफ आयोजन किया। साझ होने लगी, परमात्मा सांझ तक न आया। फिर शक-शुब्बा पैदा हो गया। लोगो ने कहा, हम पहले ही जानते थे यह सपना है। फिजूल हमने मेहनत की। पर अब जो हुआ, हुआ। दिन भर के थके-मांदे का प्रसाद लगा लिया, फिर सब गहरी नीद में सो गये।

रात आधी रात एक पुजारी ने घबड़ा कर नीद मे कहा, मुझे रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। दूसरे पुजारी चिल्ला पड़े, नाराज हुए, और उन्होने कहा, बंद करो बकवास। एक के सपने के पीछे दिन भर परेशान हुए, अब तुम्हे सपने मे रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। शांति से सो जाओ। अब नींद खराब मत करो, बहुत हो गई प्रतीक्षा। न कोई है, न कोई आने वाला है। लेकिन तब दूसरे पुजारी ने कहा, नहीं, लेकिन गड़गड़ाहट तो मुझे भी सुनाई पड़ती है। रथ आता मालूम होता है। तो तीसरे ने कहा, यह रथ की गड़गड़ाहट नही है, आकाश में बादलों का गर्जन है।

फिर वे सो गये। फिर रथ द्वार पर आकर रुका, ऐसा किसी को लगा कोई सीढ़ियां चढ़ने लगा, ऐसा किसी को लगा। फिर किसी ने द्वार पर दस्तक दी। तब कोई चौंक कर बैठ गया और उसने कहा, कि, मुझे लगता है, कि उसने द्वार पर दस्तक दी। अब तो बाकी लोग बहुत नाराज हो गए। उन्होंने कहा, रात भर सोने न देंगे। तुम सभी पागल हो गए? हवा का झोंका है, द्वार को थपथपा रहा है। न कोई है, न कोई आने को है। और अब किसी को कुछ भी सुनाई पड़े, वह अपने मन में भीतर रखे। कहने की जरूरत नहीं। हमारी नींद खराब मत करो।

फिर वे सब गहरी नींद में सो गये। सुबह उठे तब देखा, कि द्वार पर रथ आया था। क्योंकि चाक के चिन्ह थे। सीढ़ियों पर कोई चढ़ा था क्योंकि सीढ़ियों की धूल पर पदचिन्ह थे। द्वार पर किसी ने दस्तक दी थी लेकिन अब बड़ी देर हो गई थी। अवसर चूक गया था।

और ऐसा तुम्हारे जीवन में भी हो सकता है। यह रवीद्रनाथ की कविता सिर्फ कविता नहीं है। एक बहुत गहरे सत्य का दर्शन है। बहुत बार परमात्मा ने तुम्हारे द्वार पर भी दस्तक दी है। बहुत बार उसकी छाया ने तुम्हारे सपनों को घेरा है। बहुत बार, बहुत-बहुत बार, अनत-अनत यात्राओं में तुम उसके बहुत करीब आ गये हो, लेकिन पहचान नहीं पाये। कभी तुमने कहा, बादलों की गडगड़ाहट है। कभी तुमने कहा, हवा का झोंका है।

जिन्होंने जाना है वे तो बादलों की गडगडाहट में भी उसी का गर्जन सुनते हैं। जिन्होंने नहीं जाना है, वे उसकी वाणी में भी बादलों की गडगड़ाहट पहचानते हैं। जिन्होंने जाना है, उन्होंने तो हवा की थपकी में भी उसी की थपथपाहट सुनी है, उसकी ही खटखटाहट सुनी है। और जिन्होंने नहीं जाना उन्होंने उसके द्वार पर आकर थपथपाने भी पर कहा है, कि हवा का झोंका है।

व्याख्या तुम्हारी है। जो जानता है, वह परमात्मा को सब जगह पाता है। सभी जगह उसका रथ है। और सभी जगह उसके रथ के चिन्ह हैं। सभी तरफ से वह आता है। सभी तरफ उसके पदचिन्ह हैं। सब तरफ से तुम्हें ठकठकाता है, पर तुम सोये हो। और अगर तुम्हारे मन का कोई कोना कहता भी है कि जागो, तो तुम कहते हो, सोओ। नींद खराब मत करो। हवा का झोंका है। आया है, चला जायेगा। कहीं कोई परमात्मा है आने को!

दादू कहते हैं, "पथ निहारत पीव का विरहिन पल्टे केस।" अपने बाल भी संभालती जाती है, लौट-लौट कर राह पर भी देखती जाती है। आते हो, तो कम से कम बाल तो संवारे मिल जायें। कहीं ऐसा न हो, कि वह आ जाय और विरह की उदासी से ही स्वागत हो।

इसलिए संत की अवस्था को तुम ठीक से समझने की कोशिश करो। वह तुम्हे बाहर से बिलकुल प्रसन्न और आनंदित दिखाई पड़ता है—केश संवारे। लेकिन भीतर एक गहन पीड़ा और गहन रुदन भी है। वह प्रभु के लिए पुकार रहा है। भक्त तुम्हे बाहर से तो बड़ा प्रसन्न दिखाई पड़ता है। नाचता हुआ दिखाई पड़ता है। भीतर उसके एक काटा भी चुभा है। वह नाच रहा है किसी के लिए कि वह आये, तो उदास न पाये, नाचता हुआ पाये। लेकिन भीतर वह पुकारे जा रहा है—

'मन चित्त चातक ज्यू रटै पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।
(दादू) विरहित दुःख कासनि कहै कासन देइ सदेस।
पथ निहारत पीव का विरहिन पलटे केस।
ना बहु मिले न मै सुखी, कहु क्यू जीवन होई।
जिन मुझको घायल किया मेरी दारु सोई।"

"ना वह मिलै न मै सुखी"—जीवन मे सिर्फ एक ही सुख है। वह है परमात्मा से मिल जाना। शेष सब कितना ही सुख दिखाई पड़े, दुःख ही है। आज नही कल—

हर सुख को तुम पलटोगे और दुःख छिपा हुआ पाओगे। हर सुख को उघाडोगे और दुःख को छिपा हुआ पाओगे। सुख तो केवल घूघट है दुःख का। बस, जब तक घूघट पडा है तब तक ठीक। घूघट उठाया, कि दुःख से मिलन होगा। दुःख असलियत है, सुख सिर्फ घूघट है। और ऐसा तुम्हे भी रोज-रोज अनुभव होता है, मगर तुम अपने अनुभव से सीख नही पाते।

मनुष्य के जीवन का सबसे बडा दुर्भाग्य यही है कि वह अपने अनुभव से भी सीख नही पाता। अनुभव तो होते है, लेकिन सीख नही निचोड़ पाता। अनुभव ऐसे पडे रह जाते है, जैसे माला न हो, तो मनके पड़े रह जायें अलग-अलग। सीख का अर्थ है जिसने मनके पिरो कर माला बना ली; एक एक धागा पिरो लिया।

तुमने भी अनुभव किए है। तुम्हारे अनुभव मे और दादू के अनुभव में, कोई फर्क नही है। फर्क इतना ही है, तुम्हारे पास मनको का ढेर लगा है लेकिन हर मनका स्वतत्र मालूम पड़ता है। तुम मनको के बीच एक धारा को जोड़ने मे समर्थ नही हो पाये। अनुभव तो तुम्हारे पास है, लेकिन सिखावन नही है। तुम सीख नही हो पाये। अनुभव तो तुम्हारे पास है, लेकिन सिखावन नही है। तुम सीख नहीं पाये अनुभव से। एक अनुभव हुआ, गया.

दूसरा हुआ गया; लेकिन दोनों के बीच से तुम निचोड़ न पाये सार। ऐसे करोड़-करोड़ अनुभव तुम्हें हुए हैं, लेकिन तुम उनसे सीख नहीं ले पाये। सीख का मतलब है, सभी अनुभवों का सार। सीख इत्र है—हज़ार फूलों को निचोड़ कर जो बनता है, हजार अनुभव को निचोड़ कर जो बनता है। तुमने फूलों के तो ढेर लगा लिए हैं—लेकिन इत्र नहीं निकाल पाये। और इत्र ही असली बात है।

"ना वहु मिले न मैं सुखी कहु क्यों जीवन होई।"

और अगर उससे मिलन न हो, तो मुझे जीवन की कोई आकांक्षा नहीं। फिर जीवन न हो, यही अच्छा।

दादू यह कह रहे हैं, कि अगर परमात्मा नहीं है और परमात्मा से मिलन नही है, तो जीवन से मौत भली। कम से कम विश्राम तो होगा। व्यर्थ की आपाधापी तो बचेगी। नाहक की दौड़-धूप से तो छूटेंगे। फिर जीवन का कोई अर्थ नही। जीवन का एक ही तो अर्थ हो सकता है और वह है, परमात्मा से मिलन। समग्र से एक हो जाऊं, तो ही जीवन में अर्थ हो सकता है। अलग-अलग तुम खड़े रहो, तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा। अर्थ का अर्थ ही होता है, समग्र के साथ तुम्हारी संगति बैठ जाये।

तुम ऐसा समझो, कि एक कविता की एक पंक्ति को फाड़ कर मैं दे दूं; उस पंक्ति में कुछ ज्यादा अर्थ न होगा। लेकिन वही पंक्ति पूरी कविता में बड़ी सार्थक थी। फिर ऐसा समझो, कि पंक्ति को भी फाड़ कर एक शब्द ही तुम्हारे हाथ में दे दूं; उसमें और भी कम अर्थ रह जायेगा। पंक्ति में थोड़ा-बहुत अर्थ भी था।

फिर तुम ऐसा समझो, कि शब्द को भी तोड़ कर बचे हुए वर्णों को तुम्हे दे दू, तब तो और भी अर्थ हो जायेगा। "अ ब स ड" इनमें क्या अर्थ हैं? लेकिन इसी बारहखड़ी से कालीदास के सारे ग्रंथ निर्माण होते हैं, शेक्सपियर का सारा काव्य निर्मित है। इन्ही शब्दो से बुद्ध के वचन निर्मित हैं कृष्ण की गीता, मुहम्मद का कुरान। तब बड़े अर्थपूर्ण है वे।

अब यह बड़े आश्चर्य की बात है। वर्णों में तो कोई अर्थ नहीं होता, अल्फाबेट तो अर्थशून्य होती है। फिर दो वर्ण मिलते है, शब्द बनता है। शब्द में थोड़ा अर्थ होता है। फिर शब्द मिलते हैं, पंक्ति बनती है; पंक्ति में और भी थोड़ा अर्थ होता है। फिर पंक्तियां मिलती है और गीत निर्मित होता है; फिर गीत में और भी अर्थ होता है।

तुम अभी वर्णाक्षरों की भांति हो। अकेले अकेले खड़े अ ब स ड—कुछ अर्थ नही। शब्द बनो, पंक्ति में जुड़ो, फिर उसके महाकाव्य के हिस्से हो जाओ। तब तुम्हारे जीवन में अर्थ आयेगा। अर्थ सदा परमात्मा का है। परमात्मा का अर्थ है, पूरे का। व्यक्ति का कोई अर्थ नही है, अर्थ समष्टि का है।

"ना बहु मिले न मै सुखी"—और बिना अर्थ के कभी कोई सुखी हुआ? व्यर्थ जीकर कभी कोई सुखी हुआ? सुख तो अर्थपूर्ण जीवन की सुगंध है। जहां अर्थ होता है जीवन में, वहाँ सुख की सुगंध पैदा होती है। वह सुवास है।

> "ना वहु मिले न मै सुखी कहु क्यू जीवन होई।"
> उसके बिना तो जीवन का कुछ होने का अर्थ नही है।
> "जिन मुझको घायल किया मेरी दारू सोई।"

कहते है दादू—और जिसने मुझे घायल किया है, वही मेरी दवा है। परमात्मा से कम दवा पर वे राजी नही है। शास्त्र से उन्हे तृप्ति नही होती। सिद्धांत से उन्हें प्यास नहीं बुझती। कितना ही प्रत्यय और धारणाओं का जाल खड़ा कर दिया जाय, उसमे कुछ राहत नही आती। वे तो कहते है, जिन मुझको घायल किया—जिसने मुझे घायल किया है, मेरी दारू सोई; वही मुझे दवा दे। वही मेरी दवा बने।

परमात्मा से कम पर जो राजी होने को राज़ी है, वह कभी परमात्मा तक नही पहुँच जायेगा।

रास्ते में बड़े प्रलोभन हैं। बहुत चीजें रास्ते में आती है। पहले तो संसार है खड़ा हुआ। उसमे बड़े प्रलोभन है कामवासना के, पद-वासना के, धन-वासना के बड़े प्रलोभन है।

किसी तरह उनसे छूटो, सत्य की यात्रा पर चलो, तो भीतर की जगत् की शक्तियां हाथ में आनी शुरू हो जाती है। तुम कुछ ऐसा कर सकते हो जिससे लोग चमत्कृत हो जायें। डर है, कि कही तुम मदारी बन कर समाप्त न हो जाओ।

अगर तुम्हारी आकांक्षा परमात्मा के लिए ही नहीं है, तो तुम कही न कहीं रुक जाओगे; कहीं न कहीं पड़ाव को मंजिल समझ लोगे। रात रुकने के लिए ठीक था, लेकिन सदा वहीं रह जाने के लिए ठीक न था। और आगे जाना है। वहां पहुंचना है जिसके आगे "और आगे" समाप्त हो जाता है। उसके पहले नहीं रुकना है।

"जिन मुझको घायल किया मेरी दारू सोई।
दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारे खेंचि कसीस।
लागी चोट सरीर में नख सिख साले सीस।"

न तो उसके हाथ है, न उसके हाथों में कमान है, न कमान पर कोई तीर है,—दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारे खींच कसीस; लेकिन फिर भी उसने ऐसा खीच कर निशाना मारा है। हाथ नही, हाथ में कमान नही, कमान पर तीर नही, फिर भी उसने ऐसा खींच कर निशाना मारा है— "लगी चोट शरीर मे नख सिख साले सीस।" और ऐसी चोट लगी है कि नाखून से लेकर पैर के और सिर तक पीड़ा ही पीड़ा हो गई है। पूरा हृदय तन, मन, देह सब एक ही ज्वाला से जल रहे हैं।

"मन चित चातक ज्यू रटै पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।
विरह जगावै दरद को दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति को पंच पुकारै पीव।"

चोट लग जाय उसकी, तो विरह पैदा होता है। विरह पैदा हो जाय तो दर्द पैदा होता है। दर्द पैदा हो जाय तो जीवन में जागरण आने लगता है। जागरण आ जाय तो सुरति सधती है। और सुरति सध जाय तो फिर न केवल आत्मा उसको पुकारती है, पच तत्व भी, शरीर के पाच तत्व भी उसी की पुकार मे भर जाते है। तब समग्र तन प्राण उसी को पुकारने लगता है।

"विरह जगावे दरद को"—तो पहली बात है, विरह। वहाँ से सूत्रपात है, वहाँ से यात्रा का प्रस्थानबिंदु,। जिनको विरह ही नही है, उनके लिए तुम लाख समझाओ, कि जागो, वे जगेगे न। उनको तुम लाख समझाओ कि परमात्मा की प्यास से भरो, वे सुनेगे, लेकिन उनकी समझ मे कुछ भी न आयेगा, कि कैसी प्यास! किसकी प्यास! उनको लगेगा सब बाते हवाई है, हवा मे हो रही हैं।

दर्द की बात है। और दर्द तो पैदा होता है विरह से।

मिश्र मे एक पुरानी कहावत है कि इसके पहले कि तुम परमात्मा को चाहो, परमात्मा तुम्हे चाहता है। अन्यथा विरह कैसे पैदा होगा? विरह तो कोई पैदा नही कर सकता। वही पैदा कर सकता है। इसके पहले कि तुम उसकी तरफ जाओ, वह तुम्हे बुलाता है।

और यह ठीक भी है, कि पहले वही बुलाये, पहले उसी का निमंत्रण आवे; क्योंकि उसी का सब कुछ है। तुम भी उसी के हो। तुम अपने तईं उसको

खोज भी कैसे पाओगे, अगर वह मिलने को राजी ही न हो? उसका मिलने के लिए राजी होना पहली घटना है। जब वह मिलने को राजी होता है तभी तुम्हारे जीवन में विरह उठता है।

(और विरह उठ जाय--विरह का अर्थ है, एक गहरा आकर्षण। सब फीका फीका लगने लगता है। यह दुनिया सपना और माया जैसी लगने लगती है। करते हो, उठते हो, काम-धाम है। सब निपटाना है, कर्तव्य है; पर नाटक हो जाता है। रस खो जाता है। एक तटस्थता बनने लगती है। बाहर की तरफ से एक गहन उदासीनता आ जाती है। ठीक है! हो तो ठीक, न हो तो ठीक। चलते हो, क्योंकि चलना है। लेकिन अब पैरों में कोई पागलपन नहीं रह जाता चलने का। किसी भी क्षण राजी हो इस राह से उतर जाने को। जब मौका मिलेगा तभी उतर जाओगे। संसार एक बडा नाटक, एक बड़ा अभिनय हो जाता है। विरह के जगते ही, होते यहाँ हो, यहाँ होते नहीं। खड़े होते हो बाजार मे, बाजार मे नहीं खड़े होते। याद उसकी ही सताये चली जाती है। पुकारता वही रहता है। जहाँ कहीं हो, सोओ, जागो तो भी उसकी पुकार लगी रहती है।)

ऐसा हुआ कि, स्वामी राम अमरीका से वापिस लौटे। उनके एक मित्र सरदार पूर्णसिंह उनके पास ठहरे। पुराने बचपन के साथी थे। टिहरी गढ़वाल में दूर पहाड़ी में बने एक छोटे से मकान में थे। आसपास कोई भी न था, मीलों तक सन्नाटा था पहाड़ों का। रात दोनों सोये। पूर्णसिंह को नींद न लगी क्योंकि कुछ आवाज सुनाई पड़ने लगी। थोड़े हैरान हुए। गौर से सुना तो आवाज समझ आने लगी, "राम-राम-राम" की कोई धुन लगा रहा है। कौन यहां राम की धुन लगा रहा होगा? उठ कर बाहर आये, बरामदे मे चक्कर लगाया, दूर-दूर तक सन्नाटा है। कहीं कोई नही दिखाई पड़ता।

और हैरानी हुई, कि जितने कमरे से दूर गये उतनी ही आवाज धीमी सुनाई पड़ने लगी। कमरे में वापिस आये, आवाज तेजी से सुनाई पड़ने लगी। और राम तो सो रहे हैं। राम के पास गये तो आवाज और और जोर से सुनाई पडने लगी। बहुत हैरान हुए। पैर की तरफ कान रखा, हाथ की तरफ कान रखा, सिर की तरफ कान रखा, पूरे तन-प्राण से राम की एक ही आवाज उठ रही है--राम-राम-राम। घबड़ा गये, कि यह हो क्या रहा है? यह तो संभव नहीं मालूम होता। जगाया, राम से पूछा, क्या मामला है?

राम ने कहा, होता है; कुछ दिनों से होता है। पहले तो मै राम की याद करता था, वह सिर में ही गूंजती थी। मेरी वाणी पर ही उतरती थी। कंठ तक रह जाती थी। फिर गहरी उतरी। हृदय तक पहुँची। फिर धीरे-

धीरे मुझे कहने की जरूरत ही न रही, वह अपने आप गूंजने लगी। मैं सुननेवाला हो गया। फिर दिन में होती थी, रात नहीं होती थी। फिर धीरे-धीरे रात भी समा गई। अब चौबीस घंटे मेरे बिना किए चल रही है-- अहर्निश!

ऐसी स्थिति को संतों ने अजपा जाप कहा है--जब तुम करते नहीं और होता है। ऐसी घड़ी के बाद ही उस परम से मिलन की संभावना बनती है। यह तुम्हारी तैयारी हो रही है। यह तुम्हारा संगीत सध रहा है। तुम लय-बद्ध हो रहे हो।

लेकिन ध्यान रखना, वही जगाता है। पहले वही उठाता है। धन्यभागी हैं वे, जिनके जीवन की विरह की बूंद आ गई। उसका मतलब है, सागर का निमंत्रण आ गया। धन्यभागी हैं वे, जिनके मन में पीड़ा उठने लगी--अज्ञात की पुकार। धन्यभागी हैं क्योंकि परमात्मा ने उन्हें चुन लिया। तुम तो बाद में ही चुनोगे पहले वह तुम्हें चुन लेता है।

(और फिर जब दर्द से भर जाती है जीवन-धारा, तो, तो तुम जागोगे ही। सुख में तो आदमी सो जाय, दर्द में कैसे सोयेगा? सुख सुलाता है। इसलिए भक्तों ने कहा है, सुख मत देना, दुःख देना।

जुनैद एक सूफी फकीर हुआ। वह रोज परमात्मा से प्रार्थना करता था, कि दुःख देना जारी रखना; सुख मत देना। एक दिन उसके भक्त ने सुन लिया, वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, इसका राज बताओ। यह तो तुम पागल हो, या मैंने गलत सुना। क्या तुमने यही कहा, कि सुख मत देना, दुःख देना? यह कैसी प्रार्थना!

जुनैद ने कहा, धीरे धीरे समझे हम, तब से यही प्रार्थना करते हैं क्योंकि दुःख जगाता है, सुख सुला देता है। सुख तो एक तरह की तन्द्रा है। इसीलिए तो लोग सुख में परमात्मा की याद भूल जाते हैं। बस, दुख में ही याद आती है।

"विरह जगावे दरद को दरद जगावे जीव"--तब जागरण सधने लगता है।

"जीव जगावे सुरति को"--और जब जागरण बहुत गहन हो जाता है तो उसी जागरण की गहनता से स्मरण आता है परमात्मा का; सुरति जगती है।)

"पंच पुकारे पीव"--और फिर आत्मा ही नहीं पुकारती, फिर तो शरीर का रोआं-रोआं भी, यह पंच तत्वों से बनी देह भी उसी को पुकारने लगती है। है तो यह भी उसी की। छिपा तो इसमें भी वही है। यह देह भी तो

कभी न कभी उस तक पहुँच ही जायेगी। सभी उसकी यात्रा पर हैं। कोई थोड़ा आगे है, कोई थोड़े पीछे हैं। तुम थोड़े आगे, तुम्हारी देह थोड़ी पीछे; लेकिन है तो उसी की यात्रा; पहुँचना तो वहीं है। सारा अस्तित्व अंततः तो उसी में लीन होना है, जहां से स्रोत है। वही नियति है अंतिम।

लेकिन दर्द चाहिए, विरह चाहिए। तुम्हारे जीवन मे कई बार विरह उठती है, तुम उसे सम्हाल लेते हो। तुम कहते हो, पागल थोड़ी होना है! रोक लेते हो, थाम लेते हो अपने हृदय को। मौका चूक जाते हो। वह बुलाता है, तुम बहरे हो जाते हो। वह पुकारता है, तुम अपने को सम्हाल लेते हो। तुम कहते हो, पागल थोडे ही होना है!

अब जब दुबारा वह पुकारे, अब जब दुबारा, "दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारै खींच कसीस"--अब जब वह बिना हाथों के, बिना धनुष के, बिना बाण के खींचे और मारे तीर को और निशाने को, तो लग जाने देना चोट को। पागल होना हो, तो पागल हो जाना। क्योंकि अभी तुम्हारा जो जीवन है, वह पागलपन है। अभी तुमने जिसे प्रकाश समझा है वह अंधकार है और जिसे जीवन समझा है, वह सिर्फ मृत्यु का आवरण है।

ऐसी घटना मैंने सुनी है। अमीर खुसरो एक बहुत अद्भुत कवि हुआ। वह साधारण कवि न था, ऋषि था। उसने जाना था, वही गाया है। और खूब गहराई से जाना था। उसके गुरु थे निजामुद्दीन औलिया, एक सूफी फकीर। निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु हुई, तो हजारों भक्त आये। अमीर खुसरो भी गया अपने गुरु को देखने। लाश रखी थी, फूलो से सजी थी। अमीर खुसरो ने देखी लाश, और कहा,

"गोरी सोवत सेज पर मुख पर डारे केश। चलें खुसरो घर आपने रैन भई यह देश।"

खुसरो ने कहा, "गोरी सोवत सेज पर मुख पर डारे केश।' यह गोरी सो रही है सेज पर। मुख पर केश डाल दिये गए। 'चल खुसरो घर आपने —अब यह वक्त हो गया, अब रोशनी चली गई इस संसार से, अब यहाँ सिर्फ अंधकार है। 'चल खुसरो घर आपने रैन भई यह देश। यह देश अब अंधेरा हो गया, रात हो गई।

और कहते हैं, यह पद कहते ही खुसरो गिर पड़ा और उसने प्राण छोड़ दिए। बस, यह आखिरी पद है, जो उसके मुह से निकला। तुमने जिसे रोशनी जानी है, वह रोशनी नहीं है। खुसरो ने रोशनी देख ली थी निजामुद्दीन औलिया की। उस रोशनी के जाते ही सारा देश अंधकार हो गया— रैन

गई यह देह। चल खुसरो घर आपने। अब हम भी अपने घर चलें, अब वक्त—अब यहाँ कुछ रहने को बचा न।

खुसरो ने निजामुद्दीन औलिया मे जीवन का दीया पहली दफा देखा। जाना कि जीवन क्या है! पहचाना, प्रकाश क्या है! होश मे आया, कि होना क्या है! उस दीये के बुझते ही उसने कहा, अब हमारे भी घर जाने का वक्त आ गया।

तुम जिसे अभी प्रकाश समझ रहे हो, वह प्रकाश नही है। और तुम जिसे अभी जल समझ रहे हो, वह जल नही है। और जिससे तुम अभी प्यास बुझाने की कोशिश कर रहे हो, उससे प्यास बुझेगी नही, बढ़े भला!

एक ही बात का खयाल रखो और प्रतीक्षा करो, कि उसका तीर तुम्हारे हृदय मे बिंध जाय। और तुम्हारे नख से लेकर सिर तक विरह की पीडा मे तुम जल उठो। एक ही प्रार्थना हो तुम्हारी अभी, कि तेरा विरह चाहिए। तेरा निमत्रण चाहिए। तू बुला। तेरी पुकार चाहिए। एक ही प्रार्थना और एक ही भाव रह जाय, कि उससे मिले बिना कोई सुख, कोई आनद संभव नही है।

तो फिर देर न लगेगी बिना हाथो के, बिना प्रत्यचा और तीर के—उसका तीर सदा ही तैयार है। सदा सधा है, तुम इधर हृदय खोलो, उधर से तीर चल पडता है। तुम इधर राजी होओ, उसकी पुकार आ जाती है। कहना मुश्किल है कि उसकी पुकार पहले आती है, कि तुम पहले राजी होते हो।

यह वैसा ही है, जैसे मुर्गी-अडे का सबध है। कौन पहले? मुर्गी या अडा? भक्त पहले, कि भगवान पहले? बहुत मुश्किल है। पर तुम इतना तो करो ही, कि अपने हृदय को खोल दो। तुम राजी रहो। वह जब तुम्हे पुकारे तो तुम चल पडने को राजी रहो, पागल होने को राजी रहो। उस राजीपन मे ही तुम्हारे जीवन मे रूपातरण होगा, महाक्राति होगी।

ध्यान पर मेरा सारा जोर सिर्फ इसलिए है, कि तुम्हारा हृदय अवरुद्ध न रहे, खुल जाय। दीवाल हट जाय, तो जब वह तुम्हे पुकारे, तुम सुन लो। जब उसका हाथ बढे, तो तुम अपने हाथ को बढाकर उसके हाथ को पकड़ लो। जब वह तुम्हे अनन्त की यात्रा पर ले चले, तो तुम चल पडने को राजी हो जाओ।

"मन चित चातक ज्यू रटै पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने पुरवहु मेरी आस।"

ऐसी चातक जैसी पुकार तुम्हारे हृदय में भी भरे। तुम भी जलो उस विरह की अग्नि में। इसे ही तुम सौभाग्य समझना। अभी तुम्हारी जो सुख-सुविधा की जिंदगी है, वह झूठ है। वह सिर्फ एक मीठा सपना है, जो कभी भी टूट जायेगा।

जितने जल्दी तुम जाग जाओ, उतना अच्छा। ऐसे ही बहुत समय जा चुका है। और अब जब उसकी रथ की गडगड़ाहट सुनाई पड़े तो मत कहना, कि आकाश में बादल का गर्जन है। अब जब आकाश में बादलों का गर्जन सुनाई पड़े तो सुनना कि उसका रथ आ रहा है। और जब तुम्हारे द्वार पर थपथपाहट हो उसकी, तो मत कहना, कि हवा ने धक्का दिया है। अब तो जब हवा धक्का दे द्वार पर, तो उसके हाथों को पहचानने की कोशिश करना। हवा में उसी के हाथ हैं। आकाश मे उसी की गड़गड़ाहट है, फूलों मे उसी की गंध है। चारो तरफ उसी की चर्चा है। तुम नाहक ही बहरे बने बैठे हो।

जगाओ प्यास को। प्यास ही प्रार्थना बनती है। और प्यास की पूर्णता ही फिर परमात्मा बन जाती है।

"पिव पिव लागी प्यास।"

जिज्ञासा-पूर्ति : पांच

प्रवचन दस' दिनांक २०-७-१९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना



पहला प्रश्न : दादू और कबीर जिस गुरु-महिमा की चर्चा करते हैं, उसे हम आपमें पा लिए हैं। किंतु जब लोग आपके विषय में या आपकी तत्वचिंतना के विषय में पूछते हैं, तो हम अपने को असमर्थ पाते हैं। और तत्व-चिन्तना के विषय में बोलते हुए निरन्तर डर लगता है कि कहीं तार्किक या पंडित न हो जाये। कृपया निर्देश दें कि हम लोगों से क्या कहें?

पहली बात: जिस व्यक्ति को तुम प्रेम करते हो उसके संबंध में कुछ भी न कह सकोगे। प्रेम के संबंध में वाणी सदा असमर्थ है। प्रेम नहीं कर सकते हो, नहीं करते हो, तब बोलना सदा आसान है। तब तुम कुछ कह सकते हो—पक्ष में, विपक्ष में, समर्थन में, विरोध में। लेकिन प्रेमी तो गूंगा हो जाता है—"गूंगे केरी सरकरा"। स्वाद तो उसे मिलता है लेकिन कह नहीं पाता। और जितना गहन प्रेम होगा उतना ही मुश्किल हो जाता है। क्योंकि तब जो भी वह कहता है, पाता है, वह थोड़ा है। उससे उसके प्रेमी के संबंध में कुछ ठीक-ठीक पता नहीं चलता, तो उसे अपराध की प्रतीति होती है। तब वह सोचता है, बेहतर होता चुप ही रह जाते। कम से कम अधूरा तो न कहा होता।

तो यदि तुम मेरे प्रेम में हो, तब तो असमर्थ पाओगे ही। कोई उपाय नहीं है। तुम कुछ न कह सकोगे। पर कहने की कोई जरूरत भी नहीं है।

तुम्हारा होना ही तुम्हारा कहना होना चाहिए। तुम्हारे जीवन की सुगंध ही तुम्हारा वक्तव्य होना चाहिए। अगर तुम्हारे होने में कुछ रूपान्तरण हुआ है तो वही मेरे संबंध में खबर होगी। अगर नहीं हुआ है तो कह कर भी क्या करोगे? कहने से भी क्या होगा? अगर तुम्हारा आनंद स्वयं प्रमाण नहीं है, और तुम्हारी शांति की स्वयं कोई क्षमता नहीं है, और तुम्हारा ध्यान किसी

तरह के संगीत को पैदा नहीं किया है तो तुम कह कर भी क्या करोगे? कहोगे भी क्या ? तुम जो कहोगे उसे ही तुम्हारा होना गलत सिद्ध कर देगा।

कहने की कोई जरूरत नहीं है, होने की जरूरत है। और यहाँ तुम मेरे पास कहना सीखने को नहीं हो, होना सीखने को हो। जब भी ऐसी घड़ी आये कि तुम्हें लगे कुछ कहना है, तब एक ही स्मरण करना कि अपने होने से ही कहना। तुम्हारा मौन भी तब सार्थक हो जायेगा। तब तुम चुप भी रहोगे, तो तुम्हारी चुप्पी भी कुछ कहेगी। और वह गुफतगू ज्यादा गहरी है। कोई चिल्ला कर थोड़े ही कहने की बात है। प्रेम कोई बाजार तो नहीं है। प्रेम का कोई विज्ञापन थोड़ी होता है। प्रेम को प्रमाणित करने के लिए कोई भी तो तर्क संसार में नहीं है।

तुम अगर एक स्त्री के प्रेम में पड़ गये, या एक पुरुष के प्रेम में पड़ गये, तो क्या तुम दुनिया को समझा पाओगे, जो तुम्हारे प्रेम की प्रतीति है? कोई भी नहीं समझा पाया है; न मजनू समझा पाता है, न फरिहाद समझा पाता है, न रांझा समझा पाता है। कोई भी नहीं समझा पाता। प्रेमी सदा असमर्थ रहा है। क्योंकि प्रेम शब्द से बड़ा है।

और जब संसार का ही साधारण प्रेम शब्द में नहीं समाता, तो शिष्य का जो प्रेम गुरु के प्रति पैदा होता है, उसके समाने का तो कोई भी उपाय नहीं है। वह तो सुगंध और लोक की है। वह तो रोशनी ही किसी और लोक की है। इस संसार के किसी भी दीये में तुम उसे समा न सकोगे। समाने की कोशिश में तुम हमेशा हारोगे।

और अच्छा है कि तुम हारते हो, उससे ज्योति का बड़ा होना सिद्ध होता है। जो लोग अपने गुरु के संबंध में कुछ कहने में समर्थ हैं, वे शिष्य बड़े हैं, गुरु छोटा है। जो अपने गुरु के संबंध में कहने में सिर्फ असमर्थ पाते हैं, उनका गुरु बड़ा है। उन्हें कठिनाई होती है।

शब्द तो एक-आयामी है, प्रेम बहु-आयामी है। शब्द तो ऐसा है, जैसे घर का आंगन; और प्रेम ऐसा है, जैसे मुक्त आकाश। माना कि घर के आंगन में भी आकाश ही है, लेकिन बड़ी सीमा से बंधा है। और जिसने मुक्त आकाश जाना है वह इस सीमा की तरफ इशारा न करेगा।

तो तुम अपने होने से ही खबर देना। अगर कोई मेरे संबंध में तुमसे पूछे, तो या तो मौन रहना—लेकिन वह मौन तुम्हारा मुखर हो। वह मौन उदासी का न हो। वह मौन निषेधात्मक न हो। वह मौन न बोलने जैसा न

हो। वह मौन इतना गर्भित हो, वह चुप्पी इतनी गहरी हो, कि बोले। वह सन्नाटा इतना परिपूर्ण हो, कि इस सन्नाटे की चोट हो, आवाज हो। तुम चुप रह जाना। तुम आँख बंद कर लेना। तुम गीत गा सकते हो, तुम नाच सकते हो, लेकिन तुम कुछ होने से कहना।

और शब्द की झंझट मे तुम पड़ना मत, क्योंकि सभी शब्द खंडित किए जा सकते है। तर्क में तुम पड़ना मत क्योंकि तर्क तो दुधारी तलवार है। जिस तर्क से तुम सिद्ध करते हो, उसी तर्क से असिद्ध किया जा सकता है। तर्क का कोई भी मूल्य नही है। तर्क देकर तो तुम झंझट में पड़ोगे। तर्क देने का मतलब ही हुआ कि तुमने दूसरे को मौका दिया, कि वह तुम्हें खंडित कर सकता है।

जिन्होंने ईश्वर के लिए प्रमाण दिए है, वे ईश्वर के जाननेवाले लोग नही है। जो ईश्वर के सबंध मे चुप रह गये है उन्होने ही एकमात्र प्रमाण दिया है, कि वह है। क्योंकि जिन्होंने भी तर्क दिए हैं ईश्वर के होने के लिए, वे सभी तर्क नास्तिकों के हाथ में सहारा बने है। जितने तर्क दिए गये हैं सभी खंडित कर दिए गये है। नास्तिक से आस्तिक जीत नहीं पाता। अगर तर्क देता है तो निश्चित हार जाता है। क्योकि तुम अतर्क को सामने की कोशिश करते हो तर्क में। वही तुमने भूल कर दी।

तुम कहते हो, असीम है परमात्मा; और फिर आँगन की तरफ बताते हो। तुम हारोगे। क्योंकि वह नास्तिक तुम्हे दीवार बता देगा, कि यह, कैसा असीम है तुम्हारा परमात्मा! दीवार से घिरा है। तुमने तर्क दिया, कि तुम नास्तिक के हाथ में पड़े। इसलिए परम ज्ञानियों ने परमात्मा के लिए तर्क नही दिया है।

एक ईसाई फकीर हुआ, तर्तूलियन उसका नाम है, वह बेजोड़ है। उससे किसी ने पूछा कि तुम ईश्वर को क्यों मानते हो? उसने कहा, "बिकॉज ही कैन नॉट बी प्रूव्ड-" क्योंकि उसे सिद्ध नही किया जा सकता। उसने लिखा है, "आई बिलीव इन गॉड बिकॉज ही इज एबसर्ड-" मेरा परमात्मा में भरोसा है क्योंकि वह तर्कातीत है। यह भरोसा किसी अनुभव से आ रहा है। यह भरोसा किसी तर्क की निष्पत्ति नही है।

यूनान में महापंडित हुआ : प्लेटो। उसने अपने स्कूल के दरवाजे पर एक वचन लिख छोड़ा था। वचन था, कि जो लोग तर्क नही जानते, गणित नहीं जानते हैं, वे कृपा करके यहाँ प्रवेश की कोशिश न करें।

अगर मुझे लिखना पड़े अपने द्वार पर कुछ, तो मैं लिखूगा, "जो लोग गणित जानते है, तर्क जानते है, वे कृपया यहाँ आने की कोशिश न करें।" यह द्वार उनके लिए नही है। यहाँ तो दीवानो की जमात है। यहाँ तो जो पागल है, उनका जलसा है। जो तर्क से ऊब गये है और तर्क को देख लिया, जी लिया और व्यर्थ पाया है, उनके लिए निमत्रण है। यह बुलावा हृदय के लिए है, मस्तिष्क के लिए नही।

कैसे तुम कह पाओगे हृदय की बाते मस्तिष्क मे? यह तो ऐसे ही होगा' जैसे सोने को कसने का पत्थर होता है, उस पर कोई फूल को कसने लगे। तो फूल तो सदा ही गलत सिद्ध होगा, क्योकि फूल कोई सोना थोडी है। तुम मस्तिष्क से ही तो कह सकोगे। हृदय की बात जब भी मस्तिष्क मे कहोगे, फूल मस्तिष्क तक आते आते कुम्हला जाता है, जल जाता है।

तो जहाँ दो प्रेमी मिले, वहाँ तुम चाहे मेरी चर्चा कर लेना, लेकिन जहाँ तर्क की सभावना हो, वहाँ तुम चुप रह जाना। प्रेम की चर्चा प्रेमियो के बीच हो सकती है। जहाँ दो प्रेमी मिल बैठते है जहा दो मतवाले मिल बैठते है, वहाँ फिर वे अपनी चर्चा कर सकते है, क्योकि उनकी चर्चा कोई तर्क नही है। वह एक तरह का गुणगान है वह एक तरह का गीत है। वे दोनो उसमे सम्मिलित है। वे अकेले अकेले नही गा रहे है, इकट्ठे गा रहे है। वह एक कोरस है।

और मेरा कोई तत्वचिन्तन है नही। मेरी कोई फिलासॉफी नही है। इसलिए तुम मुश्किल मे पड़ोगे ही। अगर मेरी कोई सुनिश्चित तर्क-व्यवस्था होती, तो तुम कुछ कह भी सकते थे। अगर तुम्हे महावीर के सबध मे कुछ कहना है, तो तुम निश्चित कह सकते हो। भला महावीर के सबध मे न कह सको, लेकिन महावीर के विचार के सबध मे कह सकते हो। वह साफ-सुथरा है। महावीर का विचार राजपथ जैसा है। उस पर मील के पत्थर लगे है, नक्शा साफ है, भूल-चूक का उपाय नही है। गणित की पूरी व्यवस्था से बात कही गई है।

अगर तुम्हे जीसस के सबध मे कुछ कहना हो तो जीसस के सबध में कहना मुश्किल हो, लेकिन जीसस के वचन सीधे-साफ है। पतजलि तो बिलकुल गणित जैसे है।

मेरे सबध में अड़चन आयेगी क्योकि मै कोई सीधे साफ-सुथरे राजमार्ग पर नही चल रहा हूँ। यह रास्ता ऊबड़-खाबड है। यह रास्ता ही नही है; चलते है, उतना ही बनता है। पहले से तैयार नही है। यह तो बीहड जगल

में प्रवेश है। यह तो अनछुई जमीन में जाना है। यह तो कुंआरे लोक में प्रवेश है। इसलिए अड़चन है।

मैं रोज बदल जाता हूँ। तो मेरे तत्व-चितन के संबंध मे कहोगे कैसे? तुम जो भी कहोगे वह बासा मालूम पड़ेगा। जब तुम लौट कर मेरे पास आओगे, मैं जा चुका हूँ। गगा रोज बही जाती है। तुम जहाँ उसे कल छोड़ गये थे, वहीं तुम उसे आज न पाओगे।

हेराक्लतु तो ठीक कहता है, एक ही नदी में दुबारा उतरना असंभव है। मुझसे भी तुम दुबारा नही मिल सकते। मुझमें तुम दुबारा नही उतर सकते। कल भी तुम आये थे, तब रंग और था, तब सुबह ही और थी। आज भी तुम आये हो, आज रंग और है। इसलिए तुम गणित न बिठा सकोगे। मै रोज बदलता जाऊँगा। तुम कैसे पक्का कर पाओगे, कि जो तुम कह रहे हो, मैं उससे अब भी राजी हूँ? नही, मुश्किल पडेगी।

और फिर मै बुद्ध पर बोलता, पतंजलि पर बोलता, लाओत्से पर बोलता महावीर पर, मुहम्मद पर बोलता, जीसस पर। इस जगत में जिन्होंने भी जाना है उन सबके सबध मे बोलता हूँ। उन सबकी विचार धारायें बडी भिन्न भिन्न है। भिन्न भिन्न ही नही, बड़ी विपरीत है। तो मेरे भीतर तो तुम बडी असंगतियां पाओगे, बडे विरोधाभास पाओगे। तुम मुझसे एक ही बात सगत पा सकते हो और वह मेरी असगति। उसमे मै कभी नही चूकता। उस मामले मे तुम हमेशा राजी रह सकते हो, कि यह आदमी असंगत है। खुद कहता है, खुद गलत सिद्ध कर देता है।

करना ही पडेगा मुझे। क्योंकि जब मैं पतंजलि पर बोल रहा हूँ, तो कैसे महावीर को सही कह पाऊँगा? और जब महावीर पर बोल रहा हूँ, तो कैसे बुद्ध को सही कह पाऊँगा? और जब बुद्ध पर बोलूगा तो कैसे महावीर को सही कह पाऊगा? और वे सब सही हैं।

सत्य सभी वक्तव्यो से बडा है। सत्य के संबंध में जो भी कहा गया है सत्य उस सबसे बड़ा है। मैं तुम्हें सत्य के बहुत पहलू दिखला रहा हूँ। और मेरा कोई चुनाव नही है। मेरा कोई पक्षपात नही है। इसलिए जिस पहलू को मै दिखलाता हूँ, मै तुम्हें पूरे हृदय से दिखलाता हूँ। उस क्षण मैं चाहता हूँ कि तुम और सब पहलू भूल जाओ, ताकि इस पहलू को तुम पूरा जी लो और पूरा जान लो। इस पहलू से पूरे परिचित हो जाओ। उस क्षण वही पहलू तुम्हे मैं पूरे सत्य की तरह प्रगट करता हूँ। लेकिन वह भी एक पहलू है। और जब तुम मेरी सारी चर्चाओं को सुन लोगे, समझ लोगे, तो

तुम अड़चन में पड़ जाओगे, कि क्या मानना? इसमें से क्या चुनना? अगर तुम समझदार हो, तो तुम चुनोगे नहीं। अगर तुम समझदार हो, तो तुम समझ लोगे, कि इस सबके पार हो जाना है। ये सभी दृष्टियां हैं। और दर्शन दृष्टियों के पार है। ये सभी देखने के ढग हैं। जो देखा गया है, वह किसी ढंग से बंधा नहीं है।

सुबह ही सुबह एक आदमी---दुकानदार---बगीचे मे आ जाता है। वह फूलों को देखता है---उन्हीं फूलों को, जिनको दूसरे देखते हैं। लेकिन वह तत्काल सोचता है, कि इतने गुलाब अगर बेचे जा सके, तो कितने पैसे मिलेंगे! गुलाब तत्क्षण रुपयों में बदल जाता है। गुलाब नहीं लगते पौधो पर, रुपये लग जाते हैं। वह रुपये गिनने लगता है।

मैं जबलपुर वर्षों रहा, तो मैंने बगीचे में बहुत फूल लगा रखे थे। जिनका बंगला था वे व्यवसायी थे। कभी-कभी आते थे, तो वे मुझसे कहते, ये फूल देखो, झाड़ों पर कुम्हलाये जा रहे हैं, झाड़ो पर ही सूख जाते हैं। इनको अगर तोड़ कर बिकवा दो, तो हजारों रुपये साल की आमदनी हो सकती है।

मगर मैं उनसे कहता, कि फूलों के बेचने की हिम्मत मेरी नहीं होती। बेचना हो, तो दुनिया में और बहुत चीजें हैं। कम से कम फूल को तो छोडो। बेचने के लिए काफी हैं चीजें। एक फूल को छोड़ दो बाजार के बाहर।

लेकिन उनकी समझ में न आती बात। वे कहते, लाखों रुपये ऐसे ही गंवा जायेंगे। ये सब फूल तोड़ कर बिकवा देने चाहिए। आखिर ये कुम्हला तो जाते ही हैं। सांझ को गिर ही जाते हैं। जब गिर ही जाना है तो सुबह बेच ही लेना चाहिए। कम से कम रुपया तो हाथ में रहेगा।

दुकानदार बगीचे में भी आता है तो दुकान के बाहर नहीं जा सकता। उसकी अपनी दृष्टि है।

फिर एक कवि आता है बगीचे में, तो उसे फूलों मे रुपये दिखाई नहीं पड़ते। वह फूलों में कभी अपनी प्रेयसी की आंखें देख लेता है, कभी प्रेयसी की कोमल त्वचा देख लेता है। वह प्रेयसी के गीत गाने लगता है फूलों को देखकर।

और फिर एक संत अगर फूलों के बगीचे मे आ जाय तो उसे हर फूल में परमात्मा के हस्ताक्षर दिखाई पड़ते है।

और वे सभी सही हैं। दुकानदार भी बिलकुल गलत तो नहीं हैं। उसकी बात में भी इतनी सचाई तो है ही। फूल के संबंध में वे सभी दृष्टियां हैं।

एक वैज्ञानिक आ जाय, वनस्पतिशास्त्री हो, तो वह फूल में न तो सौंदर्य देखेगा, न प्रेयसी देखेगा, न परमात्मा देखेगा, न रुपये देखेगा। उसे फूल में तत्क्षण दिखाई पड़ेंगे—रस, द्रव्य, खनिज, किन किन से मिलकर बना है। वह फूल को तोड़ कर ले जाना चाहेगा प्रयोगशाला में। जाँचना चाहेगा, तोड़ना चाहेगा, कि ये फूल किन किन रसों से बना है, किन द्रव्यों से बना है। वह भी गलत नहीं है।

अगर ठीक से तुम देखो, तो इस संसार मे कोई भी गलत नही है। और कोई भी पूरा सही नही है। सभी थोड़े थोड़े सही है। और जिसने भी ज़िद की कि मेरा थोड़ा सा सच पूरा सच है, बस वही भ्रांत है। जिसने यह जान, लिया, कि मेरा थोड़ा सा सच थोड़ा सच है, उसने यह भी जान लिया, कि मेरे से विपरीत जो है, उसके लिए भी सत्य में जगह है। मै भी समा जाऊँगा, विपरीत भी समा जायेगा। सत्य मे सभी विरोधाभास समा जाते है। सत्य विराट है।

जिस दिन तुम मेरी सारी बाते सुनते जाओगे, तो मेरी चेष्टा ही यही है, कि तुम किसी दृष्टि से न जकड़ जाओ। इसके पहले कि तुम जकड़ने लगते हो, मै दूसरी दृष्टि की चर्चा शुरू कर देता हूँ। अगर तुम मेरे आयोजन का अर्थ समझो, तो इतना ही है कि मैं तुम्हें सभी दृष्टियों से मुक्त कर देना चाहता हूँ। मेरा कोई तत्वदर्शन नहीं है। मै तुम्हें तत्वदर्शनों से मुक्त कर रहा हूँ।

और एक दिन जिस दिन तुम्हें समझ आयेगी, तुम हँसोगे। उस दिन तुम कहोगे, सभी ठीक है। और कोई भी ठीक नही है। उस दिन तुम कहोगे कि किसी को गलत कहने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन किसी को सही होने का दावा करने का भी कोई कारण नहीं है। उस दिन तुम शब्दों के पार उठोगे और शब्दातीत सत्य को समझ पाओगे।

तत्वदर्शन मेरा कोई भी नहीं है। मैं सत्य का सीधा साक्षात् चाहता हूँ। तुम सीधे सत्य के आमने-सामने खड़े हो जाओ। तुम्हारी आँख पर कोई भी पर्दा न रहे, कोई भी धुआं न रहे। किसी विचारधारा का, किसी सम्प्रदाय का, किसी शास्त्र का तुम्हारी आँख पर कोई भी धुआं न हो, कोई भी रंग न हो। तुम्हारी आँख नग्न हो, शुद्ध हो, स्वच्छ हो, कुंआरी हो। बस, इतनी मेरी चेष्टा है। तुम्हारी आँख के सारे जाले कट जायें। किसी की आँख पर

जैन का जाला है, किसी की आँख पर बौद्ध का जाला है, किसी की आँख पर हिंदू का जाला है, वे सब जाले कट जायें। तुम्हारी आँख निर्मल हो जाय।

मैं तुम्हें दर्शनशास्त्र नहीं दे रहा हूँ। मैं तुम्हे देखने की क्षमता दे रहा हूँ। मैं तुम्हे कोई चश्मा नही दे रहा, मैं तुम्हारी आँख को स्वस्थ करने की चेष्टा कर रहा हूँ। इसलिए तुम मेरे दर्शनशास्त्र के संबंध मे किसी से कुछ न कह पाओगे। कोई जरूरत भी नही है। व्यर्थ की बातो मे पडने का कोई प्रयोजन भी नही है।

तुम तो हँसना। मै चाहूँगा, कि जिन्हें मुझसे प्रेम है वे उनकी हँसी से जाने जाये। तुम मुस्कुराना, तुम नाचना, तुम गीत गाना। मैं चाहता हूँ, कि जो मुझसे जुड़े है, वे उनके गीत और उनके नृत्य से पहचाने जायें। मैं चाहता ही यह हूँ कि जो मुझसे जुडे है, वे पागलो की तरह जाने जायें, समझदारों की तरह नही। क्योकि समझदारो ने दुनिया को इतनी नासमझी मे डाल दिया है, कि अब उनकी और कोई भी ज़रूरत नही है।

शास्त्र काफी हो गये, अब तुम उनकी होली मना लो। शब्दों का बोझ काफी है, तुम उसे पटको और भाग खडे होओ और लौट कर मत देखना।

और इसकी बिलकुल फिक्र न करना कि दूसरे क्या सोचते है। जिसने यह फिक्र की, कि दूसरे क्या सोचते है, वह कभी आनन्दमग्न न हो पायेगा। वह दूसरों से डरा ही रहेगा। और दूसरो का डर इस जगत मे बडे से बडा डर है। मृत्यु के बाद वही सबसे बडा डर है। दूसरो का डर—कोई क्या कहेगा।

हम यहाँ किसी की अपेक्षाये पूरा करने को नही है। कोई भी किसी की अपेक्षायें पूरा करने को नही है। दूसरों का कोई प्रयोजन नही है। तुम किसी के प्रति उत्तरदायी नही हो। अगर परमात्मा तुम्हें किसी दिन मिलेगा तो वह यह न पूछेगा, कि दूसरे तुम्हारे संबंध मे क्या सोचते है? वह तुमसे पूछेगा, कि तुम अपने संबंध मे क्या सोचते हो?

एक यहूदी फकीर मर रहा था, उसका नाम था झुसिया। मरते वक्त लोग इकट्ठे हो गये थे। गाव का जो पंडित था, जो रबी था, वह भी आ गया था। उस रबी ने झुसिया को कहा, "झुसिया, मोजेज़ के साथ अपनी सुलह कर ली?"—मोजेस—यहूदियो का पैगम्बर, तीर्थंकर—उसके साथ सुलह कर ली?

झुसिया ने आँखें खोली और उसने कहा कि परमात्मा मुझसे यह न पूछेगा कि झुसिया, तू मोजेज क्यों न हुआ? वह मुझसे यही पूछेगा, कि ऐ झुसिया!

तू झुसिया हो सका कि नहीं? मोजेज से मेरा क्या लेना-देना! मोजेज का होना मोजेज और परमात्मा के बीच; मेरा होना मेरे और परमात्मा के बीच। मैं मोजेज के प्रति उत्तरदायी नहीं हूँ। परमात्मा मेरी तरफ देखेगा और पूछेगा, झुसिया हो सका या नहीं?

यहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वयं होने को है। तुम होने का फिक्र करो। दूसरे क्या सोचते हैं, इसकी चिंता छोड़ो। अगर तुमने उनकी चिंता रखी तो वे तुम्हें कभी मुक्त न होने देंगे। इस जगत में सबसे बड़ी गुलामी है, वह है, दूसरों के विचारों की गुलामी—कौन क्या सोचता है! और कई बार होता है जिससे तुम डरे हो, वे तुमसे डरे हैं।

बहुत अद्भुत दुनिया है। तुम अपने पड़ोसियों से डरे हो, तुम्हारे पड़ोसी तुमसे डरे हैं। क्योंकि तुम उनके पड़ोसी हो। वे तुमसे भयभीत हैं, कि ये क्या सोचेंगे। तुम उनसे भयभीत हो, कि वे क्या सोचेंगे।

दूसरे के भय के कारण मत जीना। अपने आनंद से जीना। और तुम पाओगे कि आनंद इस जगत में इतनी अनूठी घटना है, कि आज नहीं कल पड़ोसी उससे राजी हो जाते हैं। निश्चित ही पहले वे विरोध करेंगे। क्योंकि कोई भी यह मान नहीं सकता, कि उसके पहले तुम कैसे आनन्दित हो गये? कोई भी तुम्हे प्रतियोगिता में इतने आगे स्वीकार नहीं कर सकता।

फिर वे तुम्हारी उपेक्षा करेंगे। अगर तुम्हारे विरोध से तुम्हारे आनन्द को खंडित न कर पाये तो फिर वे तुम्हारी उपेक्षा करेंगे, कि होगा। जैसे कुछ हुआ ही नहीं, टालो। अगर तुम उनकी उपेक्षा से भी न मरे और उनकी उपेक्षा के पार भी जीते रहे, तो एक दिन वे ही तुम्हारी पूजा करेंगे।

तीन ढंग अख्तियार करते हैं पड़ोसी। पहले विरोध, फिर उपेक्षा, फिर पूजा। या तो वे पहले ही हमले में तुम्हें मिटा देते हैं, जब विरोध करते हैं। अगर उसमें न मिटा पायें, तो दूसरे हमले में मिटा देते हैं। क्योंकि विरोध से भी ज्यादा जहरीली बात उपेक्षा है। विरोध भी नहीं मारता है इतना, क्योंकि विरोधी भी तो कम से कम रस तो लेता है। स्वीकार तो करता है, कि कुछ हुआ है तुम्हें। कुछ गड़बड़ी हो गई है माना, लेकिन कुछ हुआ है। कुछ गलत रास्ते पर चले गये, लेकिन कहीं गये हो। तुम पर ध्यान तो देता है। लेकिन उपेक्षावाला ध्यान भी नहीं देता। वह ऐसे गुजर जाना चाहता है जैसे तुम हो ही नहीं; जैसे तुम्हारे जीवन में कोई घटना ही नहीं घटी। अगर तुम उपेक्षा से भी बच गये, तो यही व्यक्ति तुम्हारी पूजा करेंगे।

यह सदा की कथा है। यही बुद्ध के साथ होता है, यही महावीर के साथ होता है, यही कबीर के साथ होता है, यही दादू के साथ होता है।

दूसरा प्रश्न : जीवन प्रतिपल बीत रहा है, ऐसा लगता है। सद्गुरु भी मिल गये, फिर भी अगला कदम अस्पष्ट क्यों है?

अगला कदम है ही नहीं। अगले कदम की सोच क्यों रहे हो?

अगले कदम की सोचने का अर्थ है, कि यह कदम आनन्दपूर्ण नहीं है, अगला चाहिए। यह क्षण काफी नही है, अगला चाहिए। आज पर्याप्त नहीं है, कल चाहिए। वर्तमान में कही पीड़ा है, भविष्य चाहिए।

अगला कदम दुःखी आदमी के मन की चिन्तना है। सुखी आदमी के लिए यही कदम आखिरी कदम है। सुखी आदमी के लिए मार्ग ही मजिल है। अगर तुम प्रसन्न हो मेरे साथ, बात बद कर दी अगले कदम की। अगला कदम होता ही नही। अगला कदम रुग्ण चित्त की दशा से पैदा होता है। जब तुम आज सुखी नही हो, तब तुम कल का विचार करते हो। आज के दुःख को भुलाने के लिए कल का विचार करते हो, कल की आशा बांधते हो, कल का सपना संजोते हो, कल में तल्लीन हो जाते हो, ताकि आज का दुख भूल जाय।

ऐसे ही तो तुमने जन्म-जन्म गंवाये है अगले कदम के पीछे। अब तुम कृपा करो। अब तुम अगले कदम की बात मत उठाओ। यह कदम काफी नहीं है? यह क्षण पर्याप्त नहीं है? कमी क्या है? इस क्षण क्या है कमी? सब पूरा है। बस, इस क्षण की मौज में उतर जाने की जरूरत है।

तो मैं तुमसे कहता हूं, एक ही कदम है। और वह यही कदम है। दूसरा कोई कदम नहीं है। दूसरे की बात ही मन का जाल है।

मन या तो सोचता है अतीत की, जो जा चुका; या सोचता है भविष्य की, जो आया नही। मन कभी यहाँ और अभी नहीं होता। और यही अस्तित्व है—अभी और यहां। जो बीत गया, वह जा चुका। जो आया नही, आया नही। यह छोटा-सा संधि का क्षण है, संध्या का काल है, जहाँ अतीत और वर्तमान मिलते हैं, जहाँ वर्तमान और भविष्य मिलते है। इस बीच के मिलन-बिंदु पर ही अस्तित्व है। यही से तुम अगर डूब सको, तो डूब जाओ। द्वार खुला है परमात्मा का। लेकिन अगर तुमने भविष्य की बात की, तुम चूक गये। फिर चूक गये।

तुम कहते हो, "जीवन पल-पल बीत रहा है।" नहीं, तुमने सुन लिया होगा किसी को कहते हुए। अगर सच में तुम्हें ही लग गया है कि जीवन

पल-पल बीत रहा है, तो तुम फिर पलों का उपयोग करना शुरू कर दोगे। तुम फिर इस पल को पूरा का पूरा आत्मसात कर लेना चाहोगे। तुम इस पल को इस तरह निचोड़ लेना चाहोगे, इस तरह जी लेना चाहोगे, जैसे कोई आम को चूस लेता है, फिर गुठली को फेंक देता है। फिर तुम फिक्र करते हो गुठली की, कहाँ गई?

अतीत की तुम्हें याद आती है क्योंकि तुम आम ठीक से चूस नही पाये। गुठली में रस लगा रह गया। अन्यथा कोई याद करता अतीत की! कल जा चुका है। अगर तुमने जी लिया था तो बात खत्म हो गई। लेकिन वह तुमने जिया नही। जब वह चल रहा था, तब तुम आज की सोच रहे थे। और जब आज आ गया, तो वह जो कल बीत गया, जो अब हाथ में नहीं है, जिसके संबंध मे अब भी नही किया जा सकता, अब तुम उसकी सोच रहे हो। तुम्हारी मूढ़ता की कोई सीमा है!

संसार मे दो ही चीजें अनन्त है, एक परमात्मा और एक मूढता। उनका कोई अंत नही आता मालूम पडता। जो भूल तुमने कल की थी, वही तुम आज कर रहे हो। फिर कल जब "आज" आ जायेगा, जब आनेवाला कल आज बन जायेगा तब तुम फिर पछताओगे। क्योंकि फिर गुठली में रस लगा रह गया। ऐसे कब तक चूकते चले जाओगे? आज ही है, जो कुछ है।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, एक जंगल के मार्ग से गुजरते हुए, कि देखो लिली के फूलो को। ये कल की चिंता नहीं करते। इनका सौंदर्य कैसा अपरम्पार है! सोलोमन सम्राट भी अपनी महामहिम अवस्था में इतना सुंदर न था।

तुम भी कल की चिंता मत करो। कल कल की फिक्र कर लेगा। तुम लिली के फूलों की भांति इसी क्षण जी लो। और मैं तुमसे कहता हूँ, जीने के लिए और कोई योग्यता नही चाहिए। सिर्फ इतनी ही योग्यता चाहिए; कि तुम इसी क्षण में डूबने की क्षमता जुटा लो, बस! यही ध्यान है, यही पूजा है। इसी को दादू कहते हैं—"सुख-सुरति सहजे सहजे आव।" इस क्षण मे ही डूब जाना सहज स्मरण है।

अगर तुम इस क्षण में ठीक से डूब जाओ, तो तुम इतने सिक्त हो जाओगे आनन्द से, कि परमात्मा के लिए धन्यवाद का स्वर अपने आप उठने लगेगा। वही प्रार्थना है। प्रार्थना के लिए कोई मंदिर की जरूरत थोड़ी है। उसके लिए क्षण में प्रवेश पाने की जरूरत है। उसके भीतर समय की धारा में डुबकी

लगाने की ज़रूरत है। वहीं से उठता है अहोभाव और तब तुम्हारे सारे जीवन के दिग-दिगन्त को घेर लेता है।

नहीं, तुम यह पूछो ही मत, कि अगला कदम क्या है? अगला कदम है ही नहीं। एक ही कदम है। अभी उठाओ यही कदम कल भी उठाओगे, यही कदम परसों भी उठाओगे। कल की राह मत देखो। आज ही दिल खोल कर उठा लो। अगर आज का कदम ठीक उठ गया, तो इसी कदम से कल का कदम भी निकलेगा। और कहां से आयेगा?

तुममें ही तुम्हारा भविष्य निकलता है। जैसे बीज से वृक्ष निकलता है, ऐसे तुमसे तुम्हारा भविष्य निकलता है। अगर इस क्षण में तुम आनन्दित हो, तो आनेवाला कल भी आनन्दित होगा। फिक्र छोड़ो उसकी। उसकी बात ही मत उठाओ। उसकी बात क्या करनी! उसकी बात में भी समय मत गंवाओ। क्योंकि उतना समय गवाया, उतना ही आम अनचूसा रह जायेगा। फिर कल तुम पछताओगे।

पीते हो जल, पूरा पी लो। भोजन करते हो, पूरा कर लो। सोते हो, दिल खोलकर सो लो। सुनते हो, मन भर के सुन लो। क्षण से यहां-वहां मत डांवाडोल होओ। घड़ी के पेंडुलम मत बनो। रुको। उस रुकने का नाम ही ध्यान है।

क्या कमी है इस क्षण में, मैं पूछता हूं? पक्षी गीत गा रहे हैं, तुम नहीं गा पाते। क्योंकि पक्षियों को अगले कदम की चिंता नहीं है। फूल खिल रहे हैं, तुम नहीं खिल पाते। क्योंकि फूलों को अगले कदम की चिंता नहीं है। आदमी को छोड़कर सब प्रसन्न मालूम पड़ता है। आदमी विषाद में है। अगला कदम जान ले रहा है।

भविष्य से मुक्त जो हो जाये, वही संसार से मुक्त हो जाता है। वर्तमान में है, संन्यास, भविष्य में है संसार।

तो मैं तुमसे नहीं कहता, घर द्वार छोड़कर भाग जाओ। मैं तुमसे कहता हूं, घर-द्वार में। यह छोड़ कर भागने की बात ही फिर भविष्य को बीच में ले आना है। तुम जहां हो—घर में हो, द्वार में हो, बाजार में हो—वहीं तुम उस क्षण को पूरा जीना सीख जाओ। तुम तत्क्षण पाओगे घर भी गया, द्वार भी गया, संसार दूर रह गया, तुम परमात्मा में उतर गये।

संन्यास, संसार से भागना नहीं है—संन्यास, संसार में परमात्मा को खोज लेना है।

तुम समय की धार पर ऐसे बहते रहते हो, डुबकी नही लेते। और फिर धीरे धीरे यह बहने की आदत मजबत हो जाती है। फिर तुम कभी भी डुबकी न ले पाओगे। फिर तुम हमेशा कल पर टालते रहोगे। और एक दिन कल आयेगा और मौत लायेगा; और कुछ भी न लायेगा। मौत से आदमी इसीलिए इतना डरता है। मौत के डरने का और कोई कारण नही है।

पहली तो बात, मौत को तुम जानते नही, डरोगे कैसे? डर उससे पैदा होता है जिसका कोई अनुभव हो। मौत से तुम्हारा कोई अनुभव नही है। याद भी नही है, कभी अनुभव हुआ हो। हुआ भी हो, तो भी स्मृति नहीं है, तुम डरोगे कैसे? और कौन कह सकता है निर्णीत रूप से कि मौत के बाद जीवन इससे बेहतर न होगा? कोई भी लौटकर तो खबर देता नही, कि जीवन मौत के बाद बुरा हो जाता है। भय का कोई कारण नही है।

लेकिन कारण कही दूसरा है। और वह दूसरा यह है, कि तुम कल पर स्थगित करके जीने की आदत बना लिए हो। मौत कल को मिटा देगी। जिस दिन मौत आती है, उसके बाद फिर कोई कल नही है। और तुम पूरे जीवन कल पर ही आधार बना कर जिये हो। तुम्हारा जीवन सदा एक पोस्टपोन्मेंट था। और मौत सब पोस्टपोन्मेंट तोड देती है। मौत कहती है, आ गई। और मौत हमेशा आज आती है, कल नही। मौत जब आयेगी तब इस क्षण मे आयेगी। फिर उसके बाद एक क्षण भी नही रहेगा। मौत एक ही कदम उठाती है, दो नही उठाती। उसका कोई अगला कदम नही है।

और जो मौत के सबध मे सही है, वही जीवन के संबंध मे सही है। जीवन भी एक ही कदम उठाता है—यही क्षण। तुम अगर टालते रहे कल पर, तो तुम मौत से डरोगे क्योंकि मौत कहती है, अब कोई कल नही है। और तुम जिंदगी भर टालते आये। तुम जिये ही नही। तुमने हमेशा सोचा, कल जियेंगे।

बद करो यह आदत। यह आदत ही संसार है। यह क्षण सब कुछ है। इस क्षण मे सारी शाश्वतता है। इस कदम मे ही छिपी है मंजिल।

और अगर तुम इसे समझ लो, तो तुम जिसे खोजने जा रहे हो, तुम उसे अपने भीतर पा लोगे। खोजनेवाले में ही छिपा है गतव्य। फिर वह मिलता उसे है, जो अतीत और भविष्य की बात छोड कर क्षण मे खड़ा हो जाता है। क्योंकि फिर अपने को देखने के सिवाय और कोई उपाय नहीं रहता। न तो भविष्य है सोचने को, न अतीत है सोचने को। न कोई स्मृति है अतीत की, न कोई कल्पना है भविष्य की। तब तुम अपना साक्षात्कार करते हो। वह आत्मसाक्षात्कार ही मुक्ति है।

एक ही कदम है। मत पूछो, कि अगला कदम स्पष्ट क्यों नहीं है? है ही नहीं। स्पष्ट होगा कैसे?

तीसरा प्रश्न : जिस शोले को आपने मेरे भीतर से कुरेद कर जला दिया, क्या वह संसार में वापिस जाने पर फिर राख से नहीं ढक जायेगा?

संसार नहीं ढाँकता है। अगर संसार ढाँकता होता, तब तो फिर कोई भी व्यक्ति संसार में ज्ञान को कभी उपलब्ध न हो सकता था। मैं भी तुम्हारे बीच बैठा हूँ, किसी हिमालय पर नहीं भाग गया हूँ।

नहीं, संसार नहीं ढाँकता है, ढाँकती है मूर्च्छा।

तो अगर तुम्हें ऐसा लग रहा है कि वापिस लौट कर कहीं संसार ढाँक तो न लेगा मेरी आग को, अंगारा कहीं छिप तो न जायेगा राख में—तब तुम ठीक से समझ लो, अंगारा जला ही नहीं है। जैसे अंगारा अपनी ही राख में ढकता है, किसी और की राख नहीं ढाँकती—ऐसे ही तुम्हारी चेतना भी अपनी ही मूर्च्छा से ढकती है, किसी और की मूर्च्छा तुम्हें नहीं ढाँकती लेकिन आदमी का मन सदा दूसरे पर जिम्मेदारी फेंकना चाहता है।

अब तुम्हारी बेहोशी होगी तो भी संसार जिम्मेदार है। तुम्हारे तथाकथि-साधु-महात्मा संसार को गाली दिये चले जाते हैं, जैसे संसार की कोई जिम्मेदारी है उनको भ्रष्ट करने में। कौन किसको भ्रष्ट करेगा? तुम भ्रष्ट होना चाहते हो, तो संसार आयोजन जुटा देता है। तुम मुक्त होना चाहते हो, तो संसार आयोजन जुटा देता है।

संसार तो सिर्फ आयोजन है, उपयोग तुम पर निर्भर है।

अगर मेरी बातों से तुम्हारे भीतर की आग तुम्हें जलती हुई लग रही है, तो गलती हो रही है कहीं। तुम्हारे ध्यान से जलती हुई होनी चाहिए मेरी बातों से नहीं। मेरी बातें तुम्हें ध्यान पर ले जा सकती हैं। ध्यान से तुम्हारे भीतर का अंगारा जलेगा। लेकिन अगर तुमने समझा कि मेरी बातों से तुम्हारे भीतर की आग जल रही है, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। किसी और की बातों से राख पड़ जायेगी। तब तुम मुझ पर निर्भर हो। मुझ पर निर्भर होने का मतलब है, तुम्हारी निर्भरता तुमसे बाहर है। तब तो फिर संसार तुम पर राख जुटा देगा। तुम बुनियाद में ही भूल कर गये।

मेरी बातों से तुम्हारे भीतर की आग नहीं जलेगी। हाँ, मेरी बातों से तुम ध्यान को समझ लो। ध्यान से जलने दो तुम्हारी आग को; फिर तुम्हारी आग को कोई भी न बुझा सकेगा। तब तुम्हें आग को बुझाना हो तो ध्यान छोड़ना पड़ेगा।

लेकिन यह मेरा अनुभव है, जिसने एक बार ध्यान का रस जान लिया, उसने कभी छोड़ा नहीं। रस को कोई कभी छोड़ता है? और जो छोड़ दे, समझना कि उसने रस नहीं जाना है।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। भारत में तो लाखों लोग कभी न कभी ध्यान करते ही हैं। जिंदगी में ऐसा मौका कम ही आता है, कम ही लोग होंगे, जिनको कभी न कभी ध्यान की धुन न चढ़ी हो। आते हैं, वे कहते हैं, कि पंद्रह साल पहले ध्यान करता था, फिर फिर छूट गया। मैं उनसे पूछता हूं आनंद आ रहा था? वे कहते हैं, बड़ा आनंद आ रहा था। झूठ की भी कोई सीमा है! आनंद कभी छूटता है? तो मैं उनसे पूछता हूँ, छूट कैसे गया? वे कहते हैं, कि घर-गृहस्थी, काम-धाम। मैं पूछता हूँ, घर-गृहस्थी और काम-धाम में ज्यादा आनंद आ रहा है? वे कहते हैं, "आनंद कहाँ, महाराज! दुख ही दुख है।

बड़ी आश्चर्य की बात है, कौन-सा गणित चल रहा है? दुःख के कारण आनंद छूट गया है इनका। दुख के लिए आनंद छोड़ दिया, इनसे बड़े त्यागी तुम खोज सकते हो कहीं?

इनको आनंद कभी मिला नहीं। यह झूठ है। और हो सकता है इन्हें पता भी नहीं हो, कि ये झूठ बोल रहे हैं। झूठ कभी-कभी इतना गहरा हो जाता है व्यक्तित्व में, कि सत्य जैसा मालूम पड़ता है। इनको पता भी न हो, कि ये झूठ बोल रहे हैं। ये सिर्फ एक सामाजिक धारणा बोल रहे हैं। ध्यान से आनंद मिलना चाहिए, सो इन्होंने ध्यान किया था; आनंद मिला होगा। और कैसे कहो, ऋषि-मुनियों के वचन गलत हैं, कि ध्यान से आनंद नहीं मिला। यह तो निश्चित सिद्धांत है, कि ध्यान से आनंद मिलता है। इसलिए उसमें तो शक-शुबा नहीं उठाते हैं।

इन्हें ध्यान से आनंद मिला ही नहीं। इस जगत् में आनंद जिसको मिल जाय जिस चीज से, वह छूटती ही नहीं। शराब नहीं छूटती आदमी से, अगर उसे आनंद मिलने लगे। सारे चिकित्सक चिल्लाये जाते हैं, कि मरोगे, बीमार हो रहे हो, रुग्ण हो रहे हो। वह कहता है, सब ठीक है।

मुल्ला नसरुद्दीन पीता है। अस्सी साल की उम्र, कान बहरे हुए जाते हैं, कुछ सुनाई नहीं पड़ता। डाक्टर ने उससे कहा, कि बड़े मियां, अब बंद करो। अन्यथा बिलकुल कान से कुछ भी सुनाई न पड़ेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन ने क्या कहा पता है? उसने कहा, डाक्टर साहब, अस्सी साल का हो जाने के बाद अब सुनने को बाकी भी क्या रह गया!

जीवन खोता है आदमी, लेकिन शराब नहीं छोड़ता; और आनंद छोड़ देता है। ध्यान छोड़ देता है।

ऐसे ऐसे नासमझ मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, समाधि तक लग चुकी; फिर छूट गयी। चमत्कारी पुरुष हैं ये। समाधि किसी की लगी और छूटी? तो फिर ऐसा हुआ कि मोक्ष पहुँच गये लेकिन लौट आये; क्या करें! संसार का दुःख बुलाता रहा।

अपने ध्यान पर ही भरोसा रखना, मेरे वचनों पर नहीं। मेरे वचन का इतना ही उपयोग कर लेना, कि वे तुम्हें ध्यान में लगायें। लेकिन वहाँ भी मन बड़े धोखे देता है। मेरी बात सुनकर अच्छी लगती है। इससे जरूरी नहीं है कि वह अच्छा लगना बहुत देर टिकेगा। वह तो तुम मुझे सुनते रहोगे, तो अच्छा लगता रहेगा।

वह तो ऐसे ही है, जैसे की कोई वीणा बजा रहा है; अच्छा लगता है। मगर वीणा बजाने से कहीं कुछ होनेवाला है! घड़ी टल जाएगी मनोरंजन में, सुखपूर्वक, घर पहुँच कर तुम वही के वही हो जाओगे। तो वीणा बजाने से कोई जीवन का संगीत थोड़ी ही पैदा हो जायेगा।

मैं तुमसे बोल रहा हूँ, एक वीणा बजाता हूँ, एक गीत गा रहा हूँ, वह तुम्हें अच्छा लगता है। उसको सुनते सुनते तुम संसार की चिंता भूल जाते हो। थोड़ी देर को बाजार विस्मृत हो जाता है। दुकानदारी, घर-गृहस्थी की उपद्रव है, वह भूल जाते हो। घड़ी भर को तुम मेरी बातों में लीन हो जाते हो और तुम्हें लगता है, एक अलग लोक का प्रारंभ हुआ।

लेकिन तुम फिर घर लौटोगे। मैं कोई चौबीस घंटे तुम्हें बात न करता रहूँगा। और अगर चौबीस घंटे बात करता हूँ, तो वह बात भी रसपूर्ण न रह जायेगी। तुम उससे भी ऊबने लगोगे। तुम उसके भी आदी हो जाओगे।

ऐसा हुआ, एक यहूदी कथा है, कि वारसा में एक यहूदी रबी था। बड़ा सरल हृदय था और इसलिए बड़ी मुसीबत में था। काफी यहूदियों की संख्या थी, बड़े उपद्रव थे और उनको हल करना, और सुलझाना और संगठन और मंदिर में पूजा और सबके लिए रुपया इकट्ठा करना, और मकान बनवाना, सब उपद्रव थे। वह बहुत परेशान था। सो न सके, काम ही काम, चिंता ही चिंता —— फिर उसे हार्ट-अटैक हुआ, तो उसके डाक्टर ने कहा कि आप इतनी चिंता में पड़े हैं यहाँ। मैंने सुना है, कि एक दूसरे नगर में पोलैंड में जगह खाली हुई है रबी की। छोटी जगह है, शांत एकांत स्थान है, आप

वहां चले जायें। यह उपद्रव यहां का छोड़ें। यह राजनीति, यह चक्कर, यह सारा ज्यादा हो रहा है आपके सिर पर। आप सीधे-साधे आदमी हैं, आप वहां चले जायें।

उस रबी ने कहा, तो सुनो। मैं बहुत परेशान था, जब मैं विद्यार्थी था और अपने गुरु के पास पढ़ता था, कि भगवान ने सात नर्क क्यों बनाये? एक से काम न चला? तो मैंने अपने गुरू से पूछा, कि भगवान ने सात नर्क क्यों बनाये? तो मेरे गुरु ने कहा, कि ऐसा है, भगवान बहुत न्यायपूर्ण है। कोई पाप करता है, उसको पहले नरक में डालता है। लेकिन महीने दो महीनों में वह उस नरक का आदी हो जाता है, फिर उसे तकलीफ ही नहीं होती वहां, तो उसको फिर दूसरे नर्क में डालता है। फिर नई जगह दो चार महीने तकलीफ पाता है, तब तक वह फिर आदी हो जाता है, फिर उसको तीसरे नरक में डालता है।

उस डाक्टर ने कहा, मैं समझा नही कि यह बात आप मुझसे क्यों कह रहे हैं?

तो उसने कहा, कि इससे क्या फर्क पडता है? इस नरक का — वारसा के नरक का तो मैं आदी हो गया; अब तुम और पोलैण्ड के नरक मे मुझे भेज रहे हो। इन दुष्टों से तो किसी तरह सबंध बन गया है, किसी तरह नाव चल रही है। ज़िंदा तो हूं! माना कि हार्ट-अटैक हुआ है, मगर अब इस बुढापे मे इस कमजोर हालत को लेकर नये नरक मे जाना! यही वहाँ दुहराया जायेगा। क्योकि जहां आदमी है, वहाँ आदमी के उपद्रव हैं, वह आदमी की राजनीति है।

अगर मैं चौबीस घटे, तुमसे बोलता रहूं, तो तुम उसके भी आदी हो जाओगे। शायद उससे तुम्हें नींद आने लगे। मोनोटोनस् हो जाएगा, एकरस हो जायेगा। नहीं, उससे भी कोई हल नही होगा। और तुम थोडे ही उससे जागोगे। संभव है, तुम सो जाओ। मेरे बोलने पर इतना ज्यादा भरोसा मत करना। मेरे बोलने का उपयोग करना, लेकिन मेरे बोलने को सब कुछ मत समझ लेना।

मेरे पास बहुत लोग आते हैं। वे कहते हैं, आपको सुनकर ही काफी आनंद आता है, ध्यान वगैरह क्या करना! मुझे सुनकर जो आनंद आता है वह मुझ पर निर्भर है, तुम पर निर्भर नहीं है। तुम्हे उसमें कुछ भी नहीं करना पड़ रहा है, तुम सिर्फ बैठे हो, निष्क्रिय हो। ध्यान में तुम्हें करना पड़ेगा। प्रमाद गहन है। उतना भी करने की आकांक्षा नही है। तुम चाहते हो,

मै बोलता रहू, तुम सुनते रहो, लेकिन उससे क्या हल होगा? उससे कोई हल नही हो सकता ।

ध्यान रखो, अगर मेरे बोलने से तुम्हें लगता है अग्नि जल गई, तो झूठी अग्नि है। बोलने से कही सच्ची अग्नि जलती है ! हाँ, बोलने से तो सिर्फ आयोजन का पता चलता है कि मैं तुम्हे बता देता हू, कि देखो ये चकमक पत्थर है, इनको रगडने से अग्नि जलती है। तुम मेरे शब्दो की मत रगडना। उनसे नही जलेगी। बोलना तो फार्मूले की तरह है। जैसे कि, कोई कह देता है, "एच् टू ओ" से पानी बनता है। अब तुम एच् टू ओ को कागज पर लिख कर मत गटक जाना। उससे प्यास न बुझेगी ।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे की परीक्षा ले रहा था। उसने कई सवाल पूछे, कोई सवाल का जबाब न आया। फिर उसे अखीर मे पूछा, अच्छा, अब मैं तुझसे आखिरी और रसायन शास्त्र का सवाल पूछता हैं, 'एच् एन् ओ थ्री' का क्या मतलब होता है? वह लडका सिर खुजलाने लगा। उसने कहा, कि बिलकुल पापा जबान पर रखा है। नसरुद्दीन ने कहा, कि नालायक ! थूक, जल्दी थूक । नाइट्रिक एसिड है, मर जायेगा।

कोई फार्मूले से थोडी मर जाता है ! न कोई जीता है। मेरी बातो से आग को जला हुआ मत समझ लेना। वह केवल बुद्धि मे जलेगी, हृदय मे नही। वह केवल शब्दो की होगी। वह कितने दूर ले जाएगी। शब्दो की नाव से उस पार जाने का सोचते हो? शब्दो की नाव तो कागज की नाव है। कितनी ही नाव जैसी लगती हो, नाव नही है।

हाँ, कागज की नाव को देख कर तुम असली नाव बना लेना। उससे यात्रा करना। कागज की नाव तो मॉडेल है। उसको अगर तुम समझो, तो उसको देख कर तुम असली नाव बना सकते हो। वह असली नाव तो ध्यान की होगी।

शब्द तो इशारे है। असली नाव ध्यान की है। और उससे जो आग जलेगी, फिर उसे कोई ससार नही बुझा सकता है ।

<u>चौथा प्रश्न</u> आपने कहा कि थोडी भी प्यास जगी हो और थोडा सा भी साहस हो तो प्रभु को समर्पण कर दो। लेकिन भय से किया गया समर्पण निर्भयता को कैसे उपलब्ध होगा ?

पहली तो बात, समर्पण ही जब कर दिया तो क्या उपलब्ध होगा, क्या न होगा यह हिसाब तुम क्यो रखोगे ? यह भी उसी पर छोड़ दो। हिसाब तुम रखोगे तो समर्पण हुआ ही नही ।

और समर्पण तो तुम जब भी करोगे, वह अधूरे आदमी से ही निकलेगा। उसमें कुछ कमी तो रहेगी। क्योंकि अगर तुम पूरे ही आदमी होते, तो समर्पण की जरूरत ही क्या थी। तुम अधूरे हो, कमियां हैं, भय है, चिंता है विषाद है, वासना है, सब है। इन सबके रहते ही यह करोगे। तुम कोई परमात्मा से यह थोड़े ही कह रहे हो, कि मुझे स्वीकार करो। देखो, मैं बिलकुल निर्वासना से भर गया; कि देखो मेरे भीतर अब कोई तृष्णा नही है, कि देखो मेरे भीतर कोई भय न रहा, मैं अभय को उपलब्ध हो गया!

नही, समर्पण करनेवाला तो कहता है, कि देखो मेरे भीतर सारे संसार की वासना है। देखो, मै मोह से भरा हूँ, लोभ से भरा हूँ, पात्रता मेरी कुछ भी नही है। तुम मुझे न स्वीकार करोगे, तो मै शिकायत न करूंगा। क्योंकि स्वाभाविक है, कि मेरी पात्रता ही नहीं है। तुम मुझे स्वीकार कर लोगे, तो वह प्रसाद है। वह मेरी पात्रता नही है। मेरी योग्यता नही है, मेरा दावा नही है। भय है, और यह समर्पण आधा-आधा है। इसमें भी पूरा मेरा हृदय नही है। करना भी चाहता हूँ, नही भी करना चाहता। यह मेरी दशा है। इस मेरी रुग्ण चित्त-दशा को तुम स्वीकार करो।

समर्पण कोई योग्यता का दावा थोड़ी है! समर्पण तो अपनी सहजता का — जैसे भी तुम हो, बुरे-भले, शुभ-अशुभ, वैसे के वैसे तुम प्रभु के चरणों मे अपने को रख देते हो। समर्पण का अर्थ है, कि मैंने तो अपने को बदलने की सब चेष्टा कर ली, कुछ होता नही। सब उपाय देख लिए, निरुपाय पाता हूँ। सब तरफ से छलांग लगाई, कहीं से भी कही पहुचता नहीं। सब तरफ असफल हो गया हूँ।

समर्पण का अर्थ तो है, निरुपाय, बेसहारा, असहाय अवस्था की स्थिति। तुम कोई पात्रता का दावा थोड़े ही कर रहे हो! प्रभु स्वीकार कर लेगा तो तुम धन्यभागी होओगे। अस्वीकार कर देगा तो तुम जानोगे, कि बिलकुल स्वाभाविक है। मैं योग्य ही नहीं हूँ, स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं है।

और अगर सोचते हो, पहले अपने को पूर्ण कर लेंगे फिर समर्पण करेंगे, तो फिर समर्पण की जरूरत क्या है? फिर तो तुम बिना उसके ही, पूर्ण हो गये। समर्पण का अर्थ ही तुम नहीं समझ पा रहे हो। समर्पण का अर्थ, कि जैसा मैं हूँ, वैसा का वैसा तेरे चरणों में रखता हूँ, बिना किसी दावे के।

और अगर तुम पूरा का पूरा अपने को पूरा उघाड़ कर, नग्न, निर्वस्त्र होकर, कुछ भी न छिपाते हुए सारी दशा को उघाड़ कर रख दिए, तो तुम स्वीकृत

हो जाते हो। क्योंकि स्वीकार का अर्थ केवल इतना ही होता है, जिसने अपना उपाय छोड़ दिया और परमात्मा के हाथों में पूरी बागडोर सौंप दी।

रामकृष्ण कहते थे, नाव दो ढंग से चल सकती है। एक तो पतवार से और एक पाल से। नासमझ पतवार से चलाते हैं, समझदार पाल से। समझदार तो पाल को खोल देता है, बैठ जाता है। हवा ले चलती है। नासमझ को पतवार चलानी पड़ती है। नाहक मेहनत करनी पड़ती है।

परमात्मा भी दो तरह से पाया जाता है, संकल्प से और समर्पण से। संकल्प से पाना पतवार चलाना है। और नदी तो पार भी हो जाए, यह भवसागर का बड़ा विस्तार है। इसमें पतवार चला चला कर पार होना बड़ी मुश्किल है। इसमे डूबने की सभावना ज्यादा है, उबरने की संभावना कम है। इसमे पहुंचने का उपाय कम है, समाप्त हो जाने की सभावना ज्यादा है।

पाल से —— तुम पाल खोल देते हो। हवा का रुख देख लेते हो, पाल खोल खोल देते हो। बस, हवा का रुख देखने की कला आनी चाहिए। फिर पाल पाल खोल दिया, नाव चल पड़ती है। पतवार चलाने की जरूरत नही पड़ती। पर इसके लिए बड़ी बुद्धिमानी चाहिए, परख चाहिए, हवाये किस तरह बह रही है — बस, उतना ही काफी है। ध्यान तुम्हे इतनी बुद्धिमानी दे देगा कि तुम पहचान लोगे हवा किस तरफ बह रही है। कब किस तरह बह रही है ? तब तुम तन कर बैठे रहोगे, जब तक हवा विपरीत बह रही है। जब हवा अनुकूल हो जाती है, तुम पाल छोड़ देते हो। तुम यात्रा पर निकल जाते हो।

समर्पण कला है। और पूर्ण होने की कोई आकाक्षा समर्पित भाव मे है ही नही। इसलिए तुम यह तो सोचो ही मत, कि अभी मैं निर्बल; न होते तो काहे के लिए समर्पण करते ? मत सोचो, कि अभी भयभीत हूँ; भयभीत न होते तो क्या समर्पण की जरूरत थी ? अभय तो तभी उपलब्ध होगा, जब परमात्मा उपलब्ध होगा। उसके पहले तो तुम भयभीत रहोगे ही। क्योंकि परमात्मा को बिना पाये कैसे कोई व्यक्ति अभय को उपलब्ध हो सकता है ? और सौभाग्य है, कि परमात्मा को बिना पाये कोई अभय को उपलब्ध नही होता। नही तो फिर परमात्मा तक जाने की जरूरत ही समाप्त हो जायेगी।

तुम अधूरे रहोगे ही। यह तुम्हारे हित मे है। तुम पूरे तो उससे मिल कर ही होओगे। तुम छोटी नदी की धार रहोगे। जब तुम सागर से मिलोगे, तभी

विराट शुरू होगा। लेकिन यह नदी जा सकती है विराट तक, और समर्पित हो सकती है, सागर में गिर सकती है।

अगर तुम बहुत ज्यादा समझदारी बरते—नदी भी अगर समझदारी बरते, तो तालाब बन जायेगी, नदी नही रहेगी। क्योंकि तालाब मे अपना सब अपने पास है। कहीं जा नहीं रहा, कही कुछ खो नही रहे। लेकिन यही तो दुनिया की बड़ी तकलीफ है, कि यहाँ जो खोते है, वे पा लेते हैं और यहाँ जो बचाते हैं, वे नष्ट हो जाते है।

तालाब सड़ता रहता है। नदी रोज नई होती रहती है। नदी खो कर भी कहाँ समाप्त होती है। क्योंकि रोज उसके बादल उसे भरते रहते हैं। तुम जितना समर्पण करोगे उतने ही पाओगे, तुम्हारे पास समर्पण करने को आ गया। तुम जितना उलीचोगे उतना ही अपने को भरा हुआ पाओगे। और जितना अपने को बचाओगे, उतना ही तुम पाओगे कि सड़ गये। कृपण की आत्मा सड़ जाती है।

उलीचो। और इसकी फिक्र मत करो, कि हम बहुत सुन्दर होंगे तभी उसके सामने जायेंगे। तब तो तुम कभी भी न जा पाओगे। उसके सौंदर्य के मापदंड को तो तुम कभी भी पूरा न कर पाओगे। योग्यता की बात ही छोड़ दो। असहाय होओ। छोटा बच्चा है, प्यासा है, भूखा है, चिल्लाता है, रोता है। माँ दौड़ी चली आती है। अगर वह छोटा बच्चा भी सोचने लगे, कि मेरी पात्रता है, योग्यता है ? क्या मैं इस योग्य हूँ, कि मुझे दूध पिलाया जाये ? मुझे बचाया जाय, मुझे जीवन दिया जाय?—तो संकट में पड़ जायगा।

मैंने एक कहानी सुनी है, कि कृष्ण भोजन को बैठे है स्वर्ग में, बैकुण्ठ में। रुक्मिणी ने थाली लगाई है। वह पंखा झलने बैठी है। उन्होंने एक या दो कौर ही लिए है और एकदम उठकर खड़े हो गये और भागे दरवाजे की तरफ। रुक्मिणी ने पूछा, "कहां जाते हैं? क्या हुआ ?" लेकिन कुछ इतनी जल्दी है, कि उन्होंने हाथ से इशारा कहा, कि लौट कर—लेकिन दरवाजे पर जाकर ठिठक गये। एक क्षण रुके, वापिस लौट कर बैठ गए थाली पर, भोजन करने लगे।

रुक्मिणी ने कहा, बेबूझ हो गई बात। मेरी कुछ समझ में नही आती। क्यों भागे ? क्या कारण था ? दरवाजे पर कोई कारण नही है। और फिर क्यों लौट गये ? इतनी तेजी में गये ?

तो कृष्ण ने कहा, मेरा एक प्रेमी एक राजधानी की सड़क से गुजर रहा है। लोग उसे पत्थर मार रहे हैं, लहूलुहान है। उसके सिर से खून की धारायें

बह रही है, लेकिन वह प्रसन्न है, मस्त है। और वह कहता है, मुझे क्या फिक्र! जिसने दिया है शरीर, वही चिंता करेगा। मैं कौन हूँ बीच में आने वाला! तू जान, तेरा काम जान! तेरे ही हाथ उस तरफ से पत्थर मार रहे हैं, तेरा ही सिर इस तरफ टूट रहा है। तेरी जैसी मर्जी! वह खड़ा हंस रहा है, लोग पत्थर मार रहे हैं। तो मुझे भागना पड़ा। जब किसी का समर्पण ऐसा हो, तो भागना ही पड़े। मैं उसे बचाने जा रहा था।

रुक्मिणी ने कहा, फिर आप लौट क्यों आये? फिर क्या हुआ? उसने कहा, जब तक मैं द्वार पर पहुँचा, उसका भाव बदल गया। उसने अब खुद पत्थर उठा लिया है। वह जबाब दे रहा है। मेरी कोई जरूरत न रही। वह अब खुद ही समर्थ है।

(समर्पण का अर्थ है, तुम असहाय हो, असमर्थ हो। तुम उसके हाथों में छोडते हो अपनी नाव, वह जहाँ ले जाये। फिर तुम यह भी नही पूछते, कहाँ ले जा रहे हो? क्योंकि यह पूछने का मतलब हुआ, कि समर्पण किया ही नहीं। फिर तुम यह भी नहीं पूछते, कि क्या परिणाम होगा? समर्पण मे सभी छोड दिया। वह डुबाये, तो वह डूबना ही तट पर पहुँच जाना है। वह मिटाये, तो मिटाना ही सौभाग्य है। उसके हाथ में बागडोर सौप दी, वह मिटाये, तो मिटाना ही सौभाग्य है। उसके हाथ मे बागडोर सौप दी, फिर हिसाब-किताब तुम्हे अपना रखने की जरूरत नही।

संकल्प कंजूस चित्त की चेष्टा है। समर्पण बडी भिन्न बात है। संकल्प तो अहंकार के आसपास खड़ा होता है। और सकल्प से कभी कभी एकाध व्यक्ति पहुँच पाया है। पहुँच जाता है संकल्प से भी; लेकिन आखिरी क्षण में उसको अपने विराट अहंकार को गिराना पड़ता है। वह बहुत कठिन मामला है।)

कोई महावीर कभी सफल हो पाता है। इसलिए मैं कहता हूँ, महावीर को महावीर नाम देना ठीक है। क्योंकि मुश्किल से कभी उस यात्रा में कोई सफल होता है। बड़ी कठिन है। कठिन इस लिहाज से है, कि पहले तुम अहंकार को निर्मित करते हो, शुद्ध करते हो। सब अपने हाथ मे ले लेते हो और आखिरी घड़ी में जब कि सब परिपक्व हो जाता है, अहंकार सूक्ष्मतम रूप से निर्मित हो जाता है, हीरे की तरह कठोर हो जाता है, कि सारी दुनिया की चीजें काट दो और चीज उसको न काट सके, उस क्षण फिर तुम्हें समर्पण करना पड़ता है। उस क्षण फिर तुम छोड़ देते हो अस्तित्व में। कोई बहुत ही बहुत प्रज्ञावान पुरुष ऐसा कर पायेगा। अधिक तो मध्य में ही खो जायेंगे। अपने-अपने अहंकार का डेरा जमा लेंगे। परमात्मा तक नही पहुँच पायेंगे।

समर्पण से बहुत लोग पहुँचे हैं। वह सरल उपाय है। वह सहज भाव है। मीरा नाचते हुए पहुँच जाती है, चैतन्य गीत गाते हुए पहुँच जाते हैं। और जिनको भी चलना हो उस यात्रा पर, यही उचित है, कि पहले ही अहंकार छोड़ दो। पहले बनाना, फिर छोड़ना – मुश्किल पड़ेगा।

छोड़ना तो पड़ता ही है क्योंकि बिना अहंकार को छोड़े कोई कभी परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता। संकल्पवाला व्यक्ति अंत में छोड़ता है, समर्पणवाला पहले से छोड़ देता है; तुम्हारे हाथ में है। लेकिन जो भी करो, पूरा पूरा करो।

अगर संकल्प ही करना है, तो फिर फिक्र ही छोड़ दो परमात्मा की। महावीर ने तो कहा, परमात्मा है ही नहीं। वह सकल्प का ठीक वक्तव्य है। क्योंकि अगर है तो फिर सकल्प नही चल सकेगा। फिर वह बीच में बाधा डालेगा और वह खड़ा रहेगा सामने। फिर शक्ति उसके हाथ में है। इसलिए महावीर ने कहा, कोई परमात्मा नही है। बस, तुम्हारा संकल्प ही परमात्मा है।

भक्त कहते हैं, तू ही है, हम नही हैं। साधक कहते हैं, मैं ही हूँ, तू नहीं है। साफ कर लो अपने मन में। अगर संकल्प से जाना हो, तो परमात्मा की बात ही छोड़ दो। फिर न कोई भक्ति है, न कोई भगवान है, फिर तुम हो अकेले। और तुम्हारी ही बुद्धि है, जो तुम्हें करना हो, करो। लम्बी यात्रा है। कभी कभी कोई पहुँच भी गया है। नही पहुँचा, ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। लेकिन सौ चलते हैं, एक पहुँच पाता है। निन्यान्नबे भटक जाते हैं। रास्ता उपद्रव का है। लेकिन जिनको शौक हो उपद्रव के रास्ते पर चलने का, उनका स्वागत है। समर्पण के मार्ग सौ चलते है, तो मुश्किल से एक भटक पाता है, निन्यान्नबे पहुँच जाते है। क्योंकि वह सरल भाव की बात है, वह प्रेम की बात है। उसमें बहुत आयोजन नहीं है, बहुत साधना नही है। इतना ही है, कि तुम पूरा का पूरा परमात्मा के चरणों मे रख दो।

सोच लो। अगर रखना है, तो पूरा रख दो, फिर कुछ बचाओ मत। अगर बचाना हो, तो कृपा करके पूरा बचा लो, फिर कुछ रखो मत। अगर दोनों के बीच डांवाडोल रहे, तो तुम दो नावों पर सवार हो जाओगे। तुम कहीं पहुँच न पाओगे। तुम बड़ी दुविधा में जियोगे।

और ऐसी ही हालत अधिक लोगों की मैं देखता हूँ। अहंकार को छोड़ना भी नहीं चाहते; तो अहंकार को बचा लेते हैं, और मुफ्त से पहुँचना भी चाहते हैं। कुछ करना भी न पड़े। तो जाकर सिर भी टिका देते हैं। मंदिरों

में जाओ, गौर से खड़े हो जाओ। आदमी की खोपड़ी को झुकते पाओगे, अहंकार को खड़ा हुआ पाओगे।

अगर किसी दिन फोटोग्राफी और थोड़ी कुशल हो गई, जो हो जायेगी; क्योंकि रूस में एक फोटोग्राफर किरलियान बड़े अद्भुत प्रयोग कर रहा है; उससे तुम्हारे व्यक्ति का ऑरा, तुम्हारे व्यक्तित्व के प्रतिमा के चित्र आ जाते हैं। आज नही काल हर मंदिर मे एक कैमेरा लगा कर जाँचा जा सकेगा कि आदमी सच में झुका? क्योंकि शरीर तो झुक जायेगा, तुम्हारा जो ऑरा है व्यक्तित्व का वह खडा रहेगा, अगर अहंकार नहीं झुका है। तुम्हारी भीतरी प्रतिमा खडी रहेगी। तुम्हारा असली प्रकाश-शरीर खडा रहेगा। सिर्फ यह मिट्टी की देह झुकेगी।

इसको भी क्या झुकाना। इसको तो मौत झुका देगी, मिट्टी में मिला देगी। इसको तुम झुका कर किसी पर कोई कृपा नही कर रहे हो। अगर झुकाता हो, तो भीतर अंतर्भाव झुके। न झुकाना हो, कोई हर्ज नही है। वह भी रास्ता है, उससे भी लोग पहुँचे हैं। मगर साफ हो जाना चाहिए।

झुकना है, पूरे झुक जाओ। अकडे रहना है, पूरे अकडे रहो। समझौता मत करो। समझौता महंगी बात है।

पांचवां प्रश्न: प्रवचन के समय आपकी कोई कोई ध्वनि सुन कर मैं कांप जाता हूँ, डर जाता हूँ। भाग खडे होने को जी चाहता है; ऐसा क्यों? क्या मैं डरपोक, कायर होता जा रहा हूँ?

जिसने मृत्यु को पार नही किया, वह सिर्फ समझता है, कि भयभीत नही है; होता तो भयभीत ही है। धोखा देता है अपने को, कि मैं अभय हूँ। मृत्यु के पार जाकर ही, मृत्यु से गुजर कर ही, मृत्यु के अनुभव से ही, अमृत को पहचान कर ही कोई अभय को उपलब्ध होता है।

लेकिन हर आदमी "मैं भयभीत नहीं हूँ", इस तरह की आत्मवंचना करता है। इस तरह की खोल खड़ी कर लेता है, कि मैं डरता नहीं हूँ। जब तुम मेरे पास आओगे और मैं तुम्हारी परतों को उघाड़ने लगूंगा और तुम्हारे वस्त्र गिरने लगेंगे, तो तुमने जो भीतर छिपाया है वह प्रगट होना शुरू हो जायेगा।

नही, मेरी बात सुनकर तुम्हें भय पैदा नही होता, मेरी बात से तुम्हारे भीतर जो भय सदा से था, वह तुम्हें दिखाई पडता है। और भाग खड़े होने का जी चाहता है क्योंकि भाग खड़े होकर फिर तुम अपने कपड़े वगैरह पहन कर, सज-संवर कर खड़े हो जाओगे। फिर तुम्हारी असलियत तुम्हें भूल जायेगी।

सत्य को जानना पीड़ादायी है क्योंकि तुमने बहुत-से असत्य अपने चारों तरफ बांध रखे हैं। सत्य को जानना पीड़ादायी है क्योंकि तुमने अपनी प्रतिमा बिलकुल ही असत्य कर रखी है, झूठी कर रखी है।

तुम्हारी हालत वैसी है जैसे कि चेहरे को पाउडर इत्यादि से पोती हुई स्त्री वर्षा में बाहर जाने से डरती है। वर्षा हो गई, पाउडर बह गया। उनका सब सौंदर्य गया। वह सौंदर्य पोता हुआ था। तो स्त्रियों को हैण्डबैग लटका कर रखना पड़ता है। उसमें सब साज-सामान रखना पड़ता है। वर्षा का क्या भरोसा! धूप का क्या भरोसा! धूप आ जाय, पसीना बह जाय, लकीरें पड़ जाती हैं सौंदर्य पर। तो जल्दी से निकाल कर अपने बैग से आईना वगैरह पोत-पात कर फिर ठीक-ठाक कर लिया।

लेकिन जिसके पास अपना सौंदर्य हो, वह क्या वर्षा से डरेगा? वर्षा उसके सौंदर्य को और निखार जायेगी। धूल वगैरह जम गई होगी, तो बह जायेगी। और निर्मल सौंदर्य प्रगट हो जायेगा।

बासा है, उधार है तुम्हारा सौंदर्य, तो मेरी चर्चा से टूटेगा। टूटने से तुम्हें लगेगा, मैं कितना कुरूप हूँ। कुरूप होने से भय होगा। लगेगा, भाग खड़े हो। यहाँ कहाँ आ गये? हम तो और सुंदर होने की तलाश में आये थे और यहाँ कुरूप हुए जा रहे हैं। हो नहीं रहे हो, तुम हो।

भय तुम्हारे भीतर छिपा है। तुमने अपने को किसी तरह सम्हाल कर खड़ा रखा है। तुम भूल ही गए हो, कि तुम्हारी असलियत क्या है। तुम वस्त्रों में खो गये हो। और धीरे-धीरे तुमने मान लिया है, कि तुम्हारे वस्त्र ही तुम हो। और जब मैं तुम्हारे वस्त्रों को उतार डालूंगा, जो कि उतारना ही पड़ेगा; क्योंकि जब तक तुम अपने निज सत्य को न जान लो, तब तक जीवन से परिचित होने की कोई संभावना नहीं है। घबड़ाओ मत। जो भी है, उसे जानो।

रोज ऐसा होता है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, यह बड़ी अजीब बात है। हम तो शांति की तलाश में आये थे, और ध्यान करने से और अशांति बढ़ती है।

ध्यान करने से अशांति बढ़ती नहीं, ध्यान करने से तुम्हारा होश बढ़ता है। होश बढ़ने से जो अशांति तुम्हें कभी दिखाई नहीं पड़ती थी, वह दिखाई पड़ने लगती है।

जैसे एक आदमी घर में सोया है, नशे में धुत पड़ा है। और घर में कूड़ा करकट भरता जा रहा है। लेकिन नशे में धुत पड़े आदमी को कुछ पता नहीं चलता,

मकड़ियां जाले बुनती हैं, सांप-बिच्छू घर बनाते हैं, कोई मतलब नहीं है उसे; वह मस्त पड़ा है। सब स्वच्छ है। फिर होश आता है, नींद टूटी, नशा उतरा, चारों तरफ देखता है। शायद वह भी यही कहे, कि यह होश तो बड़ी बुरी बात है। बेहोशी में तो सब साफ-सुथरा था। होश में सब गंदा हुआ जाता है।

तुम भीतर बेहोश पड़े हो। वहां जन्मों-जन्मों में कितने मकड़ियों के जाले भर गये हैं, उसका तुम्हें पता नहीं है। वहां कितना कूड़ा-कर्कट इकट्ठा हो गया है। शरीर का तो तुम ऊपर से स्नान भी कर लेते हो, भीतर का तो तुम्हे पता ही नहीं। उस स्नान का नाम ही तो ध्यान है। जब तुम भीतर थोड़े जागोगे, तो तुम्हें बहुत-सी बातें दिखाई पड़ने लगेगी।

तुम आये तो थे मेरे पास शांति खोजने, लेकिन पहले तो तुम्हें अपनी अशांति से परिचित होना होगा। क्योंकि अशांति से परिचित होना शांति की तरफ बुनियादी कदम है। अपने रोग को ठीक से जान लेना आधा निदान है और आधी चिकित्सा है। और निदान ठीक से हो जाये, कि रोग क्या है, तो चिकित्सा हो ही गई। चिकित्सा तो गौण बात है। वह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।

इसलिए अगर तुम जाओगे, कोई निदान करनेवाला डाक्टर हो, तो उसकी फीस बहुत होगी। फिर प्रेस्क्रिप्शन तो कोई भी केमिस्ट दे देता है, उसमे कोई बहुत बड़ा मामला नहीं है। एक दफा पक्का पता चल जाय; बीमारी क्या है, फिर सब हल हो जाता है। असली सवाल पक्का पता चलने का है, कि बिमारी क्या है? वह पता न चले, तो केमिस्ट की दुकान पर लाखों दवायें रखी हैं, वे किसी काम की नहीं हैं।

तुम्हे मैं धीरे-धीरे-धीरे तुम्हारी बीमारी से परिचित कराता हूं। भय है, अशांति है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, सब तुम्हे घेरे है। और तुम उनको दबा कर बैठे हो। उनका दावानल तुम्हारे नीचे जल रहा है। उसको दिखाना पड़ेगा तुम्हें। जब तुम उसे पूरी तरह देखोगे, तभी तुम छलांग लगा कर उसके बाहर निकलोगे।

शांत होना हो, अशांति जाननी जरूरी है। अभय को उपलब्ध होना हो, भय से परिचित होना जरूरी है। स्वस्थ होना हो, तो स्वस्थ होने का एक ही उपाय है कि बीमारी से ठीक से परिचित हो जाओ।

और मजा यह है, कि शरीर की बीमारी से परिचित होने पर इलाज की अलग जरूरत पड़ती है। लेकिन मन की बीमारी कुछ ऐसी बीमारी है, कि परिचित होना ही इलाज है। जो व्यक्ति ठीक से अपने मन के प्रति जाग

गया, इलाज हो गया। वहां निदान और औषधि दो नहीं हैं। वहां निदान ही औषधि है।

छठवां प्रश्न : आपने कहा है, जब तक मिटना है, खोना है, जीवन का परिवर्तन है, तब तक होना, शाश्वत होना संभव नहीं है। अभी हम हैं आपके सामने, वह क्या एक लंबा सपना है ?

तुम्हारी तरफ से लंबा सपना है, मेरी तरफ से नहीं। तुम्हारे लिए सपने से ज्यादा नहीं है। क्योंकि तुम सोये हुए हो। तुम जागोगे, तभी सपना टूटेगा।
तुम जाग कर मुझे देखोगे तो तुम कुछ और ही पाओगे। तुम सो कर मुझे देखते हो, तो कुछ और ही पाते हो। तुम जाग कर मुझे सुनोगे, तुम्हें कुछ और ही सुनाई पड़ेगा। तुम सोये-सोये मुझे सुनते हो, तुम्हें कुछ और ही सुनाई पड़ता है। तुम्हारी नींद बीच में खड़ी है एक पर्दे की तरह। और तुम्हारी नींद हर चीज को विकृत करती है।

तुम्हारे लिए तो एक सपना है। लेकिन चाहो, और जागना चाहो, तो तुम्हारे लिए भी सत्य हो सकता है।

बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों की कथायें कही हैं। उसमे उन्होंने कहा है, कि मैं जब अज्ञानी था तब एक बुद्धपुरुष के पास गया था। मैंने झुक कर उनके चरण छुए। मैं उठ कर खड़ा भी न हुआ था, कि मैं अचंभे से भर गया क्योंकि उन्होंने भी झुक कर मेरे चरण छुए। मैं घबड़ा भी गया, भयभीत हो गया, कि यह तो पाप है, कि बुद्धपुरुष मुझ अज्ञानी के चरण छुएं ?

मैंने उनसे कहा, रुकिये, रुकिये। यह आप क्या करते हैं? लेकिन मैं रोक भी न पाया और मैंने उनसे पूछा, कि मैं अज्ञानी हूँ, आपके पैर छूता, समझ में आती है बात, आप परम ज्ञानी—आप मेरे पैर क्यों छूते हैं ?

तो उन बुद्धपुरुष ने मुझसे कहा था, कि यह तेरी भूल है। यह तेरा सपना है, कि तू समझता है, तू अज्ञानी है। जिस दिन मेरा सपना मेरे लिए टूट गया, उसी दिन मेरे लिए सबका सपना टूट गया। मैं तो तेरे भीतर उस प्रकाश को देखता हूँ, जिसको अज्ञान ने कभी घेरा नहीं। तू भ्रांति में पड़ा है। लेकिन तेरी भ्रांति तेरी है, मेरी नहीं। किसी दिन तू जागेगा तब तेरी भ्रांति भी टूट जायेगी। तब तू समझेगा, कि मैंने तेरे चरण क्यों छुए थे।

निश्चित ही, जो मैं तुमसे कह रहा हूँ, तुम्हारे लिए तो एक सपना है, एक मधुर सपना। सुखद है, सुनना प्रीतिकर है; लेकिन यह जागरण भी बन सकता है। मैं इसीलिए बोल रहा हूँ। इसलिए नहीं, कि तुम्हें एक सुखद

सपना चलता रहे। मैं तो इसीलिए बोल रहा हूँ ताकि तुम्हारी नींद में आवाज अगर पहुँच जाय, तो तुम जाग जाओ।

मैं तो इस तरह बोल रहा हूँ, जैसे अलार्म घड़ी बोलती है। वह तुम्हारी नींद में सपना देने के लिए नहीं। कभी तुमने ख्याल किया? पांच बजे उठना है तुम अलार्म भर कर सो गये हो, दो घटनायें संभव हैं। एक तो यह घटना है, कि अलार्म घड़ी को तुम सुन लो, जाग जाओ। दूसरी घटना यह है, कि तुम अलार्म घड़ी के आसपास भी एक सपना बुन लो। और करवट लेकर सो जाओ। अक्सर ऐसा होता है कि जब अलार्म की घंटी बजती है, तब तुम एक सपना देखते हो, कि मंदिर में बैठे हैं, घंटा बज रहा है। तुमने अलार्म घड़ी के बीच, अपने बीच एक सपना खड़ा कर लिया। अब कोई डर न रहा। अलार्म घड़ी को तुमने गलत कर दिया। अब कोई भय नहीं है। अब वह तुम्हें उठा न सकेगी। तुमने उसे अपने सपने में ही समाविष्ट कर लिया। अब तुम सपना देख रहे हो कि मंदिर में घंटा बज रहा है। लोग पूजा कर रहे हैं। जब तक वह घड़ी अलार्म बजती रहेगी, तब तक तुम सपना देखते रहोगे। फिर घड़ी बंद हो गई, सपना बंद हुआ। करवट लेकर तुम गहरी नींद में सो गये। तुमने घड़ी को व्यर्थ कर दिया।

मैं तो ऐसे ही बोल रहा हूँ जैसे अलार्म घडी। मेरी तरफ से तो कोशिश यही है, कि तुम जागो। तुम्हारी तरफ से बहुत संभावना यह है, कि तुम एक सपना देखोगे। तुम मुझे भी अपने सपने में संम्मिलित कर लोगे। तुम मेरे शब्दों को भी अपने सपने में समाविष्ट कर लोगे। तुम करवट लेकर फिर सो जाओगे।

लेकिन अगर सौ में से एक भी जाग जाय, तो भी श्रम सार्थक है।

आखिरी सवाल: दादू ने दादू होने के बाद कहा है, पिव पिव लागी प्यास? क्या दादू ने दादू होने के पहले भी कहा था, पिव पिव लागी प्यास?

दादू दादू ही न होते, अगर पहले न कहा होता। "पिव पिव लागी प्यास"— यही रटन तो दादू को दादू बना दी। इसी रटन ने, इसी प्यास ने, तो इसी पुकार ने तो परमात्मा तक पहुँचाया। दादू तो पहले ही कहे हैं, तभी दादू बने हैं। अगर पहले न कहा होता, तो दादू का जन्म ही न होता। वह तो हमने पीछे सुना है, जब दादू दादू हो गये।

इसे थोड़ा समझ लेना। दादू ने तो पहले ही कहा है, हमने पीछे सुना है। दादू ने तो प्यास का जीवन ही जीया है, तभी तो तृप्ति का क्षण आया। रोये, तभी संतुष्टि। लेकिन हमें तब नहीं सुनाई पड़ा, जब दादू रो रहे थे।

वह रोना तो उनका निजी था, एकांत में था। वह तो उनका अपना था। तुमने तो तभी सुना, जब दादू हो गये; जब उनका प्रकाश-स्तंभ प्रगट हुआ।

मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, वह मैंने अपने होने के बहुत पहले बहुत बार अपने से कहा है। उस दिन तुमसे नहीं कहा था, उस दिन तुम सुनते भी नहीं। आज भी तुम सुन लो, तो बहुत है। उस दिन तो तुम सुनते ही कैसे! पर मैंने बहुत बार उसे अपने से कहा है, तभी वह घड़ी आई, जहां जागरण हुआ। और अब मैं तुमसे कह सकता हूँ।

बढ़ने दो रटन को, प्यास को, सागर दूर नहीं है। बस, प्यास की कमी ही एकमात्र दूरी है। उतरने दो तुम्हारे हृदय में भी इस रटन को —"पिव पिव लागी प्यास-" और मंजिल दूर नहीं है। मंजिल बिलकुल आँख के सामने है। थोड़ी सी आँख खोलनी है। थोड़ी सी आंख खोल कर देखनी है। फासला नहीं है, कि यात्रा करनी हो। तुम तीर्थ में ही खड़े हो, मगर शराब पीये खड़े हो।

मैंने सुना है, एक शराबी एक रात अपने घर आया। ज्यादा पी गया था। पहचान में नहीं आता था, अपना घर कौन सा है? पुराने अभ्यासवश पहुँच तो गया, पैर चलाकर ले गये, लेकिन द्वार पर खड़े होकर सोचने लगा यह घर मेरा! समझ में नहीं आता कभी देखा हो। दरवाजा पीटने लगा। उसकी मां बाहर निकल कर आ गई। उसने उस मां के पैर पकड़ लिए और कहा, कि ऐसा कर; मुझे मेरे घर पहुँचा दे। मेरी मां मेरी राह देखती होगी।

वह मां उसे समझाने लगी, कि नासमझ! मैं तेरी मां हूँ। वह कहने लगा, मुझे समझाने से कुछ न होगा। मुझे बातों में मत उलझाओ। मुझे मेरे घर पहुँचा दो। मेरी बूढ़ी मां मेरी राह देखती होगी।

पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। लोग हंसने लगे। लोग हैरान हुए। लोग उसे समझाने लगे, यही तेरा घर है। जितना लोग समझाने लगे उतना ही वह शराबी ज़िद करने लगा, कि अगर यह मेरा ही घर होता, तो किसी को समझाने की जरूरत ही क्या थी? मैं खुद ही समझ लेता। क्या मुझे अपना घर पता नहीं? क्या तुमने मुझे इतना मूढ़ समझा है? मैं पागल हूँ?

एक दूसरा शराबी जो यह सब बात सुन रहा था, वह बैलगाड़ी जोत कर आ गया। और उसने कहा, तू बैठ; मैं तुझे तेरे घर ले चलता हूँ। उसकी मां ने उसके पैर पकड़ लिए कि तू इसकी गाड़ी में मत बैठ, अन्यथा घर से बहुत दूर निकल जायेगा। और यह भी पीये है। मगर कौन सुने!

तुम घर के सामने ही खड़े हो। इसलिए जो गुरु तुमसे कहते हों, बैठो हमारी गाड़ी में, हम तुम्हें तीर्थयात्रा पर ले चलते है, जरा सम्हल कर बैठना। घर से दूर निकल जाओगे। वे भी पीये बैठे हैं।

मैं तुम्हें किसी यात्रा पर नही ले जा रहा हूँ। मैं तुमसे यह कह रहा हूँ, तुम जाग कर देखो। तुम जहा खड़े हो, वह तुम्हारा घर है। यह अस्तित्व तुम्हारा घर है। चारों तरफ परमात्मा ने तुम्हे घेरा है। उसके अतिरिक्त और तुम्हें कोई भी घेरे हुए नहीं है। उसी की हवायें हैं, उसी का आकाश है, उसी की पृथ्वी है, उसी के तुम हो। सब उसी का खेल है।

लेकिन प्यास जगे, तो उसी प्यास मे से दर्द, पीड़ा उठेगी। उसी पीड़ा मे से होश आयेगा। उसी होश मे से सुरति जागेगी। गूजने दो तुम्हारे हृदय में यह धुन—

"पिव पिव लागी प्यास!"

